मधुकर

नवीन मनोविज्ञान

नवीन मनोविज्ञान

लेखक

मधुकर, एम० ए०

इस पुस्तक के रेखा-चित्र लेखक ने स्वयं बनाए हैं

प्रथम प्रकाशित १९५४

प्राक्कथन

हिन्दी माध्यम से मनोविज्ञान पढ़ाने में मुझे तद्विषयक जितनी हिन्दी पुस्तकें देखने को मिलीं उनसे घोर निराशा हुई क्योंकि उनमें मनोविज्ञान जैसे महत्वपूर्ण विषय की व्याख्या शरीर-विज्ञान और समाज-विज्ञान के आधार पर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है जिससे विभिन्न मानसिक क्रियाओं का अन्तर्सम्बन्ध तथा उनकी एकता स्पष्ट नहीं होती और पूरा विषय असम्बद्ध और विकृत बन जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक में नवीनतम प्रयोगात्मक खोजों के आधार पर मनोविज्ञान को शरीर-विज्ञान और समाज-विज्ञान के धरातल पर प्रतिष्ठित करके विभिन्न मानसिक क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध पर समीचीन प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, इसलिए पाठकों को इस पुस्तक में वे निरर्थक बातें नहीं मिलेंगी जो सदा के लिए रद्दी की टोकरी में फेंकी जा चुकी हैं और जिनका उल्लेख हिन्दी की अन्य पुस्तकों में निस्संकोच किया गया मिलता है।

मनोविज्ञान के हिन्दी-लेखक आज तक 'कल्पना' और 'आदत' पर अलग अध्याय लिखते हैं जो अनर्गल है। कल्पना करना और सोचना एक ही मानसिक क्रिया है इसलिए मैंने उनका उल्लेख प्रतीकात्मक क्रिया के वर्णन में एक साथ किया है। आदत पड़ना सीखना ही है इसलिए 'आदत' पर कोई अलग अध्याय नहीं दिया गया है।

मनोविज्ञान के अध्ययन में मानसिक क्रियाओं के पक्ष पर जोर देने के लिए मैंने मानसिक क्रियाओं की ओर संकेत करने वाले क्रिया वाचक हिन्दी शब्दों को ही अपनाया है, संज्ञावाचक शब्दों

को नहीं। उदाहरण के लिए 'प्रत्यक्ष' शब्द की जगह 'संज्ञा' शब्द व्यवहृत किया गया है क्योंकि अँग्रेजी शब्द *perception* मानसिक क्रिया के जिस संगठन का बोधक है उसकी निकटतम अभिव्यक्ति 'प्रत्यक्ष' की अपेक्षा 'संज्ञा' शब्द से ही होती है।

हिन्दी के अधिकांश पाठकों में पुस्तक के महत्व का अनुमान उसकी मोटाई से करने का एक असाध्य रोग भी पाया जाता है। पुस्तक मोटी तब बनती है जब एक ही बात को अनावश्यक ढंग से घुमा फिरा कर कई बार कहा गया हो या जो बात एक वाक्य में सुन्दरतापूर्वक कही जा सकती हो उसे भाषा पर अधिकार न होने के कारण दस वाक्यों में भद्दे ढंग से कहा गया हो। माना कि हिन्दी में विज्ञानीय शब्दों की कमी है किंतु भाषा पर अधिकार होने से कम शब्दों से भी अत्यधिक अभिव्यक्ति की जा सकती है। मैंने इस पुस्तक में आए अँग्रेजी संज्ञावाचक शब्दों क [illegible] मरोड़ हिन्दी अनुवाद करने की धृष्टता नहीं की है जिसके लिए मैं हिन्दी के ठेकेदारों से क्षमा चाहता हूँ।

मैं उन सब लेखकों के प्रति अत्यन्त ऋणी हूँ जिनकी पुस्तकों और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से मैंने इस पुस्तक को लिखने में सहायता ली है। सच तो यह है कि लिखने और विषय की व्याख्या अपने ढंग से करने के अतिरिक्त इस पुस्तक में मेरा अपना कुछ भी नहीं है। मैं अपने विद्यार्थियों का चिरन्तर आभारी हूँ जिनका अनुरोध और सहयोग सदा मेरी प्रेरणा रहा है। मैं कुमारी रीता रुद्रा का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनके सत्परामर्श से पुस्तक के अनेक स्थल उन्नत बन सके।

इलाहाबाद
मार्च, १९५४

मधुकर

विषयकी

१

परिचय

व्यवहार के बिना जीवन नहीं चलता इसलिए संसार के प्रत्येक प्राणी को व्यवहार करना पड़ता है। प्राणी के सामने कुछ ऐसी आवश्यकताएँ और समस्याएँ होती हैं जिनको पूरा करने और सुलझाने के लिए वह अपने व्यवहार द्वारा निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। अन्य प्राणियों की भाँति मनुष्य का भी सारा शारीरिक और मानसिक व्यवहार अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने और अपनी समस्याओं को सुलझाने का एक अविकल प्रयत्न है।

व्यवहार के अध्ययन के विभिन्न प्रसंग

व्यवहार का अध्ययन अनेक प्रसंगों में किया जा सकता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और सामाजिक प्राणी होने के नाते वह समाज के अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क रखता है और सामाजिक आवश्यकताओं के अनु-रूप व्यवहार करता है। सामाजिक व्यवहार में मनुष्य की अपनी आवश्य-कताएँ और समस्याएँ उतनी प्रमुख नहीं रहती जितनी कि उसकी सामाजिक आवश्यकताएँ और समस्याएँ। मनुष्य समाज के प्रसंग में किस तरह व्यव-हार करता है? सामाजिक व्यवहार की उत्पत्ति और उसका विकास कैसे होता है? किसी समाज की मानसिक विशेषताएँ क्या होती हैं? समाज का प्रभाव लोगों पर कैसे और किस रूप में पड़ता है? इन बातों का अध्ययन समाजशास्त्र (Sociology) में किया जाता है। समाजशास्त्र विभिन्न देशों, जातियों और लोगों की परम्पराओं, प्रथाओं, जीवन शैलियों और

रुचियों का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र इस बात का ज्ञान कराता है कि समाज के साँचे में ढलकर मनुष्य जो कुछ है वह कैसे और क्यों बन जाता है।

व्यवहार शरीर के माध्यम द्वारा ही होता है इसलिए व्यवहार का अध्ययन शारीरिक प्रसंग में भी किया जा सकता है। शरीर और उसके विभिन्न अंगों का निर्माण और विकास कैसे होता है? विभिन्न शारीरिक अंगों के काम क्या हैं और वे उन कामों को कैसे करते हैं? अंगों को काम करने के लिए शक्ति कहाँ से और कैसे मिलती है? व्यवहार करते समय प्राणी की शारीरिक स्थिति क्या होती है? शारीरिक स्थिति का व्यवहार पर कैसा प्रभाव पड़ता है और व्यवहार और शारीरिक स्थिति में क्या सम्बन्ध है? इन बातों का अध्ययन शरीर विज्ञान (Physiology) में किया जाता है।

व्यवहार का अध्ययन व्यवहार में सन्निहित आदर्शों के प्रसंग में भी किया जा सकता है। मनुष्य प्रकृति का एक अविभाज्य अंग और प्राकृतिक उद्देश्यों का अन्धानुसरण करने वाला प्राणी ही नहीं है। उसे प्रकृति का अंग होने और प्राकृतिक नियमों द्वारा शासित होने की चेतनता और अपने और अपनी परिस्थितियों के बीच के सम्बन्ध का ज्ञान भी होता है। इस ज्ञान के आधार पर वह अपने कर्मों पर निर्णय देता है, उनको शोभन और अशोभन, उचित और अनुचित ठहराता है। मानवी व्यवहार की परख और मूल्यांकन किसी आदर्श या मापदंड की तुलना में किया जा सकता है। शोभन और अशोभन क्या हैं? उचित और अनुचित क्या है? मानवी व्यवहार में व्याप्त आदर्श क्या हैं? उनका उच्चतम रूप क्या है? इन बातों का विवेचन नीतिशास्त्र में किया जाता है। नीतिशास्त्र में व्यवहार के स्वाभाविक रूप का अध्ययन नहीं किया जाता बल्कि व्यवहार को होना कैसा चाहिए यह देखा जाता है। नीतिशास्त्र मानवी व्यवहार को

किसी आदर्श के अनुसरण के रूप में देखता है और व्यवहार के मापदंडों का निश्चय करता है। नीतिशास्त्र मनुष्य और प्रकृति के अंगांगिभाव सम्बन्ध को देखने से ही सन्तुष्ट नहीं होता, वह मनुष्य को इस सम्बन्ध के जानने वाले के रूप में भी देखता है। नीतिशास्त्र व्यवहार का नैतिक मूल्यांकन करता है।

प्राणी और परिवेश

व्यवहार का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि प्राणी व्यवहार किसी समस्या को सुलझाने के लिए करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक प्राणी के सामने कोई न कोई समस्या किसी न किसी रूप में सदा रहती है और प्राणी व्यवहार द्वारा उस समस्या का समाधान करने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। विज्ञानीय भाषा में समस्याओं की उपस्थिति को परिवेश (environment) कहा जाता है। परिवेश में रहने से प्राणी को हर समय कुछ न कुछ संघर्ष करना ही पड़ता है।

परिवेश के दो पक्ष होते हैं, आन्तरिक और वाह्य। प्राणी के शरीर के अन्दर जो शक्तियाँ काम करती हैं वे उसका आन्तरिक परिवेश होती हैं और जिन शक्तियों का दबाव प्राणी पर वाह्य जगत से पड़ता है वे उसका वाह्य परिवेश होती हैं। प्राणी को प्रतिक्षण इन दोनों परिवेशों की शक्तियों से संघर्ष करके अपना संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता पड़ती रहती है क्योंकि संतुलन के भंग होते ही जीवन में व्यतिक्रम और अव्यवस्था आ जाती है। प्राणी और परिवेश में एक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। प्राणी अपनी रक्षा के लिए कठोर परिवेश से या तो बचने की चेष्टा करता है या फिर वह अपने हित के लिए परिवेश के विरुद्ध लड़ता है और उसे बदल कर अपने अनुकूल बना सकने की कोशिश करता है। परिवेश एक तरह की शक्ति या दबाव होता है जो प्राणी को कुछ न कुछ करने को विवश करता रहता है। परिवेश की विवशता के कारण ही प्राणी व्यवहार

करता है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि प्राणी पूरी तौर से परिवेश के हाथ का कठपुतला है। निस्सन्देह वह एक सीमा तक परिवेश पर अधिकार कर सकता है, उसमें रूप परिवर्तन कर सकता है, किन्तु उसकी उपेक्षा कदापि नहीं कर सकता।

परिवेश पर अधिकार करके उसे अपने अनुकूल बना लेना उसे मिटा देना नहीं है। परिवेश जन्य परिस्थितियाँ सदा रहीं हैं, हैं और रहेंगी। परिस्थितियाँ प्राणी के सामने आदिम काल में भी थीं, आज भी हैं और कल भी रहेंगी। हाँ, उनका रूप बदलता रहा है और बदलता रहेगा। आदिम काल में मनुष्य के पास भूख थी, अन्न नहीं था; आज अन्न होते हुए भी मनुष्य भूखा है। आदिम काल में मनुष्य के पास आग नहीं थी लेकिन खून की गर्मी थी; आज आग है लेकिन ख़ून की गर्मी नहीं है। आदिम काल में मनुष्य के पास वस्त्र नहीं थे किन्तु लज्जा थी; आज वस्त्र हैं किन्तु लज्जा नहीं है। आदिम काल में जीवन निर्वाह की सुविधाएँ न होते हुए भी मनुष्य उतना बर्बर नहीं था जितना आज है।

उत्तेजना और प्रतिक्रिया

प्राणी के हर व्यवहार के पीछे किसी न किसी परिवेश की शक्ति रहती है जो उस पर दबाव डालकर उसे कुछ न कुछ करने को लाचार करती रहती है। प्राणी और परिवेश के सम्बन्ध के दो पहलू हैं। एक ओर तो परिवेश प्राणी पर दबाव डालता है और दूसरी ओर प्राणी अपने प्रयत्नों द्वारा परिवेश के उस दबाव का सामना करता है। परिवेश के दबाव को विज्ञानीय भाषा में उत्तेजना कहा जाता है। परिवेश दबाव डालकर प्राणी को कुछ न कुछ करने को उत्तेजित करता है।

और परिवेश द्वारा उत्तेजना पाने पर प्राणी कुछ न कुछ करता है। परिवेश से उत्तेजना पाकर प्राणी जो कुछ करता है उसे विज्ञानीय भाषा में

प्रतिक्रिया कहा जाता है। परिवेश प्राणी को उत्तेजना देता है और प्राणी उस उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया करता है। मनुष्य की सभ्यता का इतिहास परिवेशों की उत्तेजनाओं के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं की ही एक लम्बी कहानी है।

प्रतिक्रिया में कुछ न कुछ आयास रहता है। जिस काम में आयास न हो उसे प्रतिक्रिया नहीं कहा जा सकता। प्रतिक्रिया को केवल कर्मेन्द्रियों तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। पक्षियों का कलरव सुनना, किसी चीज़ को देखकर बीती बातों की याद आ जाना, खिले फूलों को देखकर प्रसन्न होना आदि भी प्रतिक्रियाएँ हैं।

क्षीण या नीरस उत्तेजना का व्यवहार पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। उत्तेजना का प्रभाव व्यवहार पर अनेक प्रकार से पड़ सकता है। मान लीजिए कि आप टहलने जा रहे हैं; सहसा पीछे से किसी गाड़ी की आवाज़ सुनकर आप तत्काल दौड़कर सड़क छोड़ एक किनारे हो जाते हैं। गाड़ी की आवाज टहलने की क्रिया में उद्दीपन कर देती है। आप धीरे धीरे चले जा रहे हैं, सहसा एक धमाके की आवाज़ सुनकर आप जहाँ के तहाँ ठिठक जाते हैं और आपकी चलने की क्रिया का अवरोध हो जाता है। उत्तेजना में उद्दीपन और अवरोध दोनों रहते हैं।

प्राणी और प्रतिक्रिया

प्राणी की प्रतिक्रिया उसकी उत्तेजना पर अवश्य निर्भर होती है किंतु पूरी तरह से नहीं। प्रतिक्रिया में उत्तेजना के अतिरिक्त अन्य बातों की प्रधानता भी रहती है। बीस प्राणी एक ही उत्तेजना के प्रति बीस तरह की प्रतिक्रियाएँ करते हैं। प्रतिक्रिया को समझने के लिए उत्तेजना के साथ साथ प्राणी को समझना भी आवश्यक है।

प्राणी की सारी प्रतिक्रियाएँ उसकी आदतों, रुचियों, संस्कारों और शिक्षा आदि स्थायी विशेषताओं पर आधारित रहती हैं। एक ही उत्तेजना

के प्रति शिक्षित और अशिक्षित मनुष्य की प्रतिक्रियाओं में आकाश पाताल का अन्तर हो सकता है। संगीत में रुचि रखने वाले प्राणी की प्रतिक्रिया उस प्राणी की प्रतिक्रिया से अलग होगी जो संगीत में रुचि नहीं रखता।

प्रतिक्रिया पर प्राणी की आन्तरिक अवस्था का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। खाना देखकर भूखे और भरे पेट प्राणी की प्रतिक्रिया में बड़ा अन्तर होता है। भूखा प्राणी खाने पर टूट पड़ता है किन्तु जिसे भूख नहीं है वह खाने पर 'टूटता' नहीं। नशे या बीमारी की हालत में भी प्राणी की प्रतिक्रियाओं में बड़ा फर्क हो जाता है।

प्राणी की प्रतिक्रिया उसके लक्ष्य पर भी निर्भर होती है। परीक्षा का समय निकट आने पर खेलकूद में अत्यन्त रुचि रखने वाला विद्यार्थी किसी के बार बार बुलाने पर भी खेलने को नहीं जाता और पढ़ता ही रहता है। अब उसका लक्ष्य परीक्षा में सफल होना रहता है जिसके कारण उसकी अब तक की सारी प्रतिक्रियाएँ बदल जाती हैं। निर्वाचन के दिनों में नेताओं का व्यवहार भी बदल जाता है और वे हर व्यक्ति से इस तरह बातें करते हैं मानों वे उसके घर के पुश्तैनी नौकर हों।

इस प्रकार प्रतिक्रियाएँ प्राणी की स्थायी विशेषताओं (आदतों, रुचियों संस्कारों, शिक्षा आदि), उसकी आन्तरिक अवस्था (क्रोध, घृणा, दुख, हर्ष आदि) और उसके लक्ष्य पर निर्भर होती हैं। किसी प्रतिक्रिया में इन तीनों बातों में से किसकी प्रधानता रहती है इसे बता सकना कठिन है। उनकी प्रधानता अवसर अवसर पर निर्भर होती है। पत्नी के तेवर के सामने बड़े बड़े शूरवीरों के भी छक्के छूट जाते हैं, क्रोधोन्मत्त व्यक्ति न्यायोचित मार्ग को भूल बैठता है, दिल की ठेस या ज़िन्दगी की ठोकर बहुत से लोगों का लक्ष्य बदल देती है। तुलसी-

दास अपनी पत्नी द्वारा धिक्कारे जाने पर ही राम की भक्ति में अनुरक्त हो सके थे।

ग्राहक और प्रभावक

प्राणी उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया अपनी स्थायी विशेषताओं, आन्तरिक अवस्था और लक्ष्य के अनुसार ही करता है। किन्तु कैसे ? परिवेश की शक्ति या दबाव का असर प्राणी की बोधेन्द्रियों (आँख, कान इत्यादि) पर पड़ता है। उत्तेजना प्राणी को अपनी बोधेन्द्रियों द्वारा मिलती है। प्राणी वाह्य जगत से मिलने वाली उत्तेजनाओं को अपनी बोधेन्द्रियों द्वारा ग्रहण करता है इसलिए बोधेन्द्रियों को ग्राहक (ग्रहण करने वाली) कहा जाता है।

उत्तेजना को ग्रहण करने पर प्राणी कुछ प्रतिक्रिया करता है। प्रतिक्रिया वह अपनी कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर इत्यादि) द्वारा करता है। कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रतिक्रिया कर प्राणी परिवेश पर प्रभाव डालता है और परिवेश से अपने पहले के सम्बन्ध को बदल देता है। कर्मेन्द्रियों को प्रभावक कहा जाता है क्योंकि प्राणी उनके द्वारा ही परिवेश पर प्रभाव डालता है। प्राणी अपने ग्राहकों द्वारा उत्तेजना किस तरह ग्रहण करता है और प्रभावकों द्वारा परिवेश पर प्रभाव किस तरह डालता है इसका विस्तृत वर्णन शरीर रचना सम्बन्धी अध्याय में किया जायगा।

मनोविज्ञान की परिभाषा तथा क्षेत्र

प्राणी को उसके व्यवहार द्वारा ही समझा जा सकता है। व्यवहार का सबसे साधारण रूप दो व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध में मिलता है। सुखमय दाम्पत्य या पारिवारिक जीवन दो व्यक्तियों के संतुलित सम्बन्ध पर ही आश्रित होता है। संतुलित सम्बन्ध के अभाव में पति-पत्नी में, पिता-पुत्र में तरह-तरह के पारिवारिक झगड़े होते रहते हैं। घर में या घर

के बाहर मनुष्य की सफलता और सुख बहुत बड़ी सीमा तक उसकी अन्य व्यक्तियों से संतुलित सम्बन्ध स्थापित कर सकने की क्षमता की अपेक्षा रखता है।

व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त मनुष्य को सामूहिक जीवन भी बिताना पड़ता है। घर से निकल कर सड़क पर आते ही मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन समाप्त होकर उसका सामूहिक जीवन प्रारम्भ हो जाता है। अपनी बिरादरी में, अपने विद्यालय में, अपने राजनीतिक सम्प्रदाय में मनुष्य का जीवन सामूहिक होता है। सामूहिक जीवन में सफल होने और संतुलित सम्बन्ध बनाए रखने के लिए मनुष्य को अपने समूह का साथ और सहयोग देना चाहिए। बन्दीघर ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण है जो अपने समूह से सफल सम्बन्ध स्थापित नहीं रख पाते।

हर समूह का अन्य समूहों से भी सम्बन्ध होता है और समूह-समूह में भी संतुलन की समस्याएँ रहती हैं। जब दो समूहों का संतुलन और सम्बन्ध सफल नहीं रह पाता तो युद्ध के बादल मँडराने लगते हैं। यही नहीं, बहुत से राष्ट्रीय झगड़े तो विभिन्न राजनीतिक सम्प्रदायों की आपसी अशांति के कारण होते रहते हैं। मजदूर और पूँजीवादी वर्ग का संघर्ष, साम्यवादियों, असाम्यवादियों और रूढ़िवादियों के राजनीतिक कलह, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की अन्यमनस्कता दो समूहों के असंतुलित सम्बन्धों का ही परिणाम है। मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि समूहों के असंतुलित सम्बन्धों का हल उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार व्यक्ति के असंतुलित सम्बन्धों का किया जाता है।

मनुष्य की सुख-समृद्धि मनुष्य-मनुष्य और मनुष्य-समूह के सफल सम्बन्ध के अतिरिक्त भौतिक जगत के नियंत्रण पर भी आधारित होती है। भौतिक जगत में होने वाले परिवर्तनों से मनुष्य के मानसिक दृष्टिकोण का भी परिवर्तन होता है और उसकी समस्याओं का रूप बदल जाता

है। हमारी आज की समस्याएँ वैदिक काल के लोगों की समस्याओं से अलग हैं क्योंकि हम स्वयं विज्ञानीय युग के प्राणी होने के कारण उन लोगों के मानसिक दृष्टिकोण से बहुत दूर हट चुके हैं। बीसवीं शताब्दी में व्यक्ति की सफलता और सुख इसी बात में है कि वह प्राचीनता का ढोल बजाना बन्द कर विज्ञानीय युग के भौतिक परिवेश के प्रत्येक परिवर्तन से अपना समुचित संतुलन कर अपने मानसिक दृष्टिकोण को बदल डाले।

मनोविज्ञान इन विभिन्न मानवी सबन्धों पर निर्भर मानवी व्यवहार-विभिन्नता के हर पक्ष के पीछे मनुष्य की क्षमताओं, योग्यताओं, उद्देश्यों, भावों और क्रियाओं का अध्ययन करता हैं और मनुष्य की व्यवहार विभिन्नता को समझने, उसकी व्याख्या करने और उसे वांछनीय दिशा की ओर अग्रसर कर नियंत्रित कर सकने की कोशिश करता है। मनोविज्ञान में मनुष्य को प्रधानतया एक प्रतिक्रियात्मक प्राणी मानकर विभिन्न उत्तेजनाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं के संतुलन पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

हर प्राणी का व्यवहार उत्तेजना और प्रतिक्रिया से निर्मित होता है। अतएव प्राणी के व्यवहार को समझने के लिए उसकी उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओं को उसके परिवेश के प्रसंग में जानना पड़ता है। प्राणी का संतुलन वाह्य शक्तियों द्वारा प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है और वह अपनी प्रतिक्रियाओं द्वारा निरन्तर नया संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न करता रहता है। संतुलन स्थापित करने के प्रयत्न में प्राणी के सभी अंग क्रिया करते हैं और उनकी क्रिया असम्बद्ध न होकर एक संगठित इकाई होती है। विभिन्न अंगों की क्रियाओं का संगठन मनस् (mind) द्वारा होता है, इसलिए विभिन्न अंगों की क्रियाओं के संगठन को मानसिक क्रिया कहा जा सकता है। मनोविज्ञान प्राणी की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है।

मनस् का जितना अच्छा विकास मनुष्य में हुआ है उतना संसार के अन्य प्राणियों में नही हुआ है इसलिए मनोविज्ञान के अध्ययन का केन्द्र मनुष्य ही है। मनोविज्ञान मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन मनुष्य के सामाजिक, नैतिक या शारीरिक प्रसंग में न कर उसके व्यक्तिगत प्रसंग में करता है। मनुष्य समाजशास्त्र और नीतिशास्त्र के क्षेत्रों से बाहर भी अनेक तरह के व्यवहार करता है और मनोविज्ञान में मनुष्य के उन व्यवहारों के महत्व को स्वीकार कर उनका अध्ययन किया जाता है।

मनुष्य के व्यवहार में बड़ी जटिलता होती है जिससे उसे समझने में कठिनाई पड़ती हैं। व्यवहार का अपेक्षाकृत सरल रूप जानवरों में मिलता है और पहले यदि व्यवहार के सरल रूप को समझ लिया जाय तो व्यवहार के जटिल और अधिक विकसित रूप को अच्छी तरह से समझ सकने में कुछ सुविधा और आसानी हो सकती है। इस दृष्टि से मनोविज्ञान में जानवरों के व्यवहार का भी अध्ययन किया जाता है किन्तु केवल एक साधन की भाँति, साध्य की भाँति नहीं। मनोविज्ञान का साध्य तो केवल मनुष्य के व्यवहार को समझना है और उसको समझने के लिए जिन जिन विज्ञानों से सहायता मिल सकती है मनोविज्ञान उस सब विज्ञानों की खोजों से लाभ उठाता हैं।

मनस् उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओं को विभिन्न प्रकार से संगठित करता है जिससे मानवी व्यवहार में अनेकरूपता और जटिलता आ जाती हैं। जिन मानसिक क्रियाओं को प्रत्यक्ष, संवेदन, एकाग्रता, सीखना, कल्पना, स्मृति, चिन्तन आदि नाम दिए जाते हैं वे मनस् द्वारा उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओं का एक विशेष तरह से संगठन मात्र ही हैं। मनस् अपने आप में कोई विशिष्ट वस्तु न होकर प्राणी और परिवेश के बीच होने वाली क्रियाओं की संज्ञा है। मनोविज्ञान का विषय प्राणी और परिवेश के बीच होने वाली क्रियाओं के विविध प्रकार के संगठन के

आधार, रूप, नियमों और उस संगठन के भेद के कारणों की खोज करना और उनको समझना है । मनोविज्ञान में आने वाले शब्द जैसे प्रत्यक्ष, कल्पना, स्मृति, बुद्धि, चेतनता, मनस् आदि यद्यपि संज्ञाओं की भाँति प्रयुक्त किए जाते हैं किन्तु वे वास्तव में संज्ञासूचक न होकर क्रियासूचक होते हैं।

मनुष्य का व्यवहार क्षेत्र बहुत बड़ा है और मनोविज्ञान मनुष्य के हर व्यवहार क्षेत्र का अध्ययन करने की कोशिश करता है, इसलिए मनोविज्ञान की अनेक शाखाएँ हैं। बाल-मनोविज्ञान बालकों के विकास और उनकी क्षमताओं का अध्ययन करता है। शिक्षा-मनोविज्ञान में बालकों के विकास और उनकी योग्यता के अनुकूल शिक्षा का प्रबन्ध करने की व्यवस्था पर विचार किया जाता है। सामाजिक-मनोविज्ञान में मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों के मनोविज्ञानीय आधार की खोज की जाती है। औद्योगिक मनोविज्ञान नौकरी के लिए चुनाव तथा चुने गए लोगों की कार्य-कुशलता बढ़ाने के उपायों का अध्ययन करता है। मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) मनुष्य के मानसिक विकार जन्य विलक्षण व्यवहारों का अध्ययन और उन विकृत व्यवहारों के अचेतन कारणों की खोज करने का प्रयत्न करता है। चिकित्सा मनोविज्ञान में मनुष्य के विकारपूर्ण व्यवहार को निर्विकार बनाकर उसे समाज के अनुरूप संयोजित कर सकने की कोशिश की जाती है।

और सामान्य मनोविज्ञान में निर्विकार वयस्क मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो प्रस्तुत पुस्तक का मुख्य विषय है।

अध्ययन-प्रणाली

विज्ञानीय अनुसन्धान में सामग्री की आवश्यकता होती है और विज्ञानीय सिद्धान्तों का निर्माण उसी सामग्री के आधार पर किया जाता है। मनोविज्ञान मनुष्य की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है इसलिए

प्रश्न उठता है कि मनोविज्ञान की अध्ययन सामग्री कहाँ से और कैसे उपलब्ध होती है ? हम दूसरे मनुष्य की मानसिक क्रियाओं को नहीं देख सकते, उनके व्यवहार का केवल वाह्य निरीक्षण ही किया जा सकता है। वाह्य निरीक्षण द्वारा यह देखा जाता है कि मनुष्य विभिन्न स्थितियों में किस तरह व्यवहार करता है ; दूसरी ओर यह भी जानने की कोशिश की जाती है कि विभिन्न प्रकार के व्यवहारों में मनुष्य की शारीरिक स्थिति, उसके हृदय की गति, साँस लेने आदि क्रियाओं में क्या परिवर्तन हो जाते हैं और उन परिवर्तनों का व्यवहार पर कैसा असर पड़ता है। किन्तु वाह्य निरीक्षण से मनुष्य की आन्तरिक अवस्था और उसकी मनोवृत्तियों का पता लगा सकना कठिन है।

आन्तरिक अवस्था तथा मनोवृत्ति का पता मनुष्य अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी करके ही चला सकता है। दृष्टि को अन्तर्मुखी करके मनुष्य अन्तर्निरीक्षण (Introspection) करता है। हर मनुष्य की भावनाओं, विचारों, इरादों आदि का ज्ञान उस मनुष्य के अन्तर्निरीक्षण से ही मिल सकता है। वाह्य और अन्तर्निरीक्षण दोनों ही अवलोकन पर निर्भर हैं, दोनों में भेद केवल इतना ही है कि अन्तर्निरीक्षण व्यक्तिगत होता है किन्तु वाह्य निरीक्षण अनेक व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है और उसमें उनकी सहमति का लाभ उठाया जा सकता है।

अन्तर्निरीक्षण करते समय व्यक्ति अपने बीते हुए अनुभव को अपने मनस् में फिर दोहराता है और विश्लेषण करके उसे समझने की कोशिश करता है। किन्तु अन्तर्निरीक्षण करना स्वयं एक मानसिक क्रिया है इस-लिये वह उस मानसिक क्रिया का रूप बदल देती है जिसका अन्तर्निरीक्षण किया जा रहा हो। यदि कोई व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण द्वारा अपने क्रोध या घृणा की मानसिक अवस्था का स्वरूप समझना चाहे तो अन्तर्निरीक्षण के समय क्रोध या घृणा का स्वरूप नष्ट हो जाने से आक्षेप उठाया जाता

है कि अन्तर्निरीक्षण से व्यक्ति अपनी आन्तरिक अवस्थाओं का प्रत्यक्ष निरीक्षण नहीं कर सकता।

अन्तर्निरीक्षण अपनी ही आन्तरिक अवस्था का किया जा सकता है और चूँकि मनुष्य मनुष्य की मानसिक क्रियाओं में भेद होता है इसलिए उस भेद की छाप अन्तर्निरीक्षण पर पड़े बिना नही रह सकती। बालक तथा विकारग्रस्त व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण नहीं कर सकते। अन्तर्निरीक्षण कर सकने के लिए कुशलता चाहिए इसलिए उसे कुशल व्यक्ति ही कर सकते हैं। अन्तर्निरीक्षण वर्णनात्मक विधि है और यदि अधिक गहराई तक जाकर कुछ जानने की आशा न की जाय तो अन्तर्निरीक्षण द्वारा उपलब्ध सामग्री पर विश्वास किया जा सकता है।

विज्ञानीय अध्ययन का उद्देश्य विभिन्न वस्तुओं और घटनाओं के आपसी सम्बन्ध को समझना होता है। प्रत्येक वस्तु का धर्म अलग अलग होता है और हर वस्तु का व्यवहार उसके अपने धर्म पर निर्भर होता है। वस्तुओं का धर्म किसी विशेष स्थिति में कुछ अपेक्षनीय साधनों के रहने पर ही प्रकट होता है। दूध का धर्म दही बनना है किन्तु दूध यदि कच्चा या फटा हुआ हो तो इन स्थितियों में वह दही नहीं बनेगा। अपेक्ष-नीय साधन (खटाई) के बिना भी दूध अपने स्वाभाविक धर्म (दही बन जाने) को प्रकट नहीं कर सकता। प्राणी का व्यवहार भी अपेक्षनीय साधनों द्वारा अनुकूल स्थिति में ही अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट होता है।

अन्य विज्ञानों की भाँति मनोविज्ञान भी अपने अनुसन्धान के लिए प्रयोगात्मक विधि (Experimental method) को अपनाता है। प्रयोग द्वारा किसी विज्ञानीय सिद्धान्त या मान्यता की परीक्षा की जाती है। मनोविज्ञानीय प्रयोग में प्राणी के व्यवहार की प्रासंगिक बातों का पता लगाया जाता है। प्रयोग करते समय स्थिति पर पूरा नियंत्रण रक्खा जाता है और तब पूरी स्थिति के किसी अंश को नियमित ढंग से परिवर्तित करके

उसके परिणाम को देखा जाता है और ऐसा बार-बार किया जाता है । यदि परिणाम बार-बार वही हो जो पहली बार के परिवर्तन से हुआ था तो सिद्धान्त या मान्यता का समर्थन हो जाता है। प्रयोगात्मक विधि की सत्यता का आधार यह है कि कुछ विशेष दशाओं में कोई विशेष घटना होगी और उसका वही परिणाम होगा जो होता रहा है। सिद्धान्त या मान्यता किसी प्रश्न का संभाव्य उत्तर होता है जिसकी सत्यता की परीक्षा प्रयोग द्वारा की जाती है ।

मनोविज्ञानीय प्रयोग में जिन दशाओं पर नियंत्रण रखना पड़ता है वे परिवेश और प्राणी दोनों में होती हैं। परिवेश की दशाओं पर तो नियंत्रण किया जा सकता है किन्तु प्राणी की दशाओं पर नहीं। प्रयोग के समय प्राणी चिंतित या उद्वेलित हो सकता है। किन्तु देखा गया है कि प्रयोगकर्त्ता के आदेशों और प्रयोगशाला के बार-बार के अनुभव से प्राणी बहुत बड़ी सीमा तक सुस्थिर हो जाता है जिससे प्रयोग के परिणामों में भी निश्चितता आ जाती है ।

किन्तु फिर भी प्रयोगात्मक विधि में कुछ दोष रह जाते हैं। प्रयोग में नीरसता आने से प्राणी शिथिल हो सकता है और गलत खबर दे सकता है। दूसरे वाह्य स्थितियों के प्रतिकूल होने पर प्राणी उनसे अपना समायोजन स्थापित करने की चेष्टा करके प्रयोग को दूषित कर सकता है। यदि प्राणी को प्रयोग का अभिप्राय पता चल जाय तो वह पक्षावलम्बी बनकर प्रयोग के उद्देश्य को पराजित कर सकता है। इन दोषों से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि प्रयोग भारी पैमाने पर अनेक व्यक्तियों के साथ विभिन्न स्थितियों में किए जाने चाहिए, तभी प्रयोगों द्वारा प्राप्त परिणामों में आपेक्षिक स्थिरता आ सकती है ।

मनोविज्ञान का महत्व

प्रत्येक मनुष्य के अनुभव और व्यवहार में बहुत समानता होती है ।

हर मनुष्य के सामने घर में और घर से बाहर अपना समुचित संतुलन बनाए रख सकने की समस्याएँ होतीं हैं। हर मनुष्य पथभ्रष्ट होने से बचना चाहता है, संतुलित सामाजिक जीवन बिताना चाहता है, अपने आप पर काबू रखना चाहता है और अपनी व्यक्तिगत दुविधाओं को सुलझाना चाहता है। इस दिशा में सफल होने के लिए उसे दूसरों को जान सकने से पहले अपने आप को जानना चाहिए। मनोविज्ञान ही एक ऐसा विज्ञान है जो आपकी मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। अतएव मनोविज्ञान का अध्ययन करने से आप किसी अन्य विषय का अध्ययन न कर अपना ही अध्ययन कर सकेंगे, अपने आप को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे और अपनी समस्याओं का समाधान अधिक सफलतापूर्वक कर सकेंगे। मनोविज्ञान किसी कल्पित मनुष्य की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन नहीं करता, वरन् आपकी और मेरी मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है।

एक पुरानी कहावत है कि मनुष्य अपना निर्माण स्वयं करता है। किन्तु जब तक आपको यह न मालूम हो कि आपको अपने अन्दर क्या निर्माण करना है, किस दिशा में करना है और कैसे करना है तब तक आत्म-निर्माण कर सकना एक कपोल कल्पना ही रहेगा। मनोविज्ञान आपको आपके आत्म-निर्माण सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देगा। आप अन्य विषयों का अध्ययन करते हैं। आप गणित, अर्थशास्त्र, रसायन, राजनीति, इतिहास आदि पढ़ते हैं किन्तु उन्हें न पढ़ने पर आप उनसे छुटकारा पा सकते हैं। किन्तु आपके लिए मनोविज्ञान से जीते जी छुटकारा पा सकना असम्भव है। मनोविज्ञान से छुटकारा पाने का अर्थ अपनी मानसिक क्रियाओं से और दूसरे शब्दों में जीवन से छुटकारा पाना है। अतएव मनोविज्ञान का महत्व स्वयंसिद्ध है, उससे इनकार करना अपने अस्तित्व से इनकार करना है, अपने आपको समझने से इनकार

करना है, 'आत्मानं विद्' (अपने को जानो) के आदर्श से इनकार करना है।

प्रश्न

१—परिभाषा देते हुए मनोविज्ञान का क्षेत्र निर्धारित कीजिए।

२—मनुष्य के व्यवहार के विभिन्न प्रसंगों का उल्लेख करते हुए यह बताइये कि मनोविज्ञान में मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन किस प्रसंग में किया जाता है।

३—व्यवहार का विश्लेषण करते हुए प्राणी, उत्तेजना और प्रतिक्रिया के आपसी सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।

४—मनोविज्ञान की विभिन्न अध्ययन प्रणालियों के गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।

५—आपकी दृष्टि में मनोविज्ञान का क्या महत्व है? क्या आपको मनोविज्ञान का अध्ययन करने से कुछ लाभ हुआ है?

२

शरीर-रचना

मनोविज्ञान में प्राणी के प्रतिक्रियात्मक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। प्राणी की प्रतिक्रियाओं का रूप अच्छी तरह समझने के लिये उसके प्रतिक्रिया करने के साधन और उन साधनों की सीमाओं पर विचार करना अपेक्षित है। प्राणी के पास उत्तेजना ग्रहण करने और प्रतिक्रिया कर सकने का साधन उसका शरीर होता है। प्राणी परिवेश में होने वाले परिवर्तनों को अपने शरीर द्वारा जान पाता है और शरीर द्वारा ही उन परिवर्तनों से अपना समायोजन करता है। "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।" शरीर रचना पर विचार करने से पहले शरीर का निर्माण करने वाले कोषों (cells) के विषय में जानना जरूरी है।

कोष

जीवन का आधार एक जीवित कोष होता है। वह इतना छोटा होता है कि उसे आँख से नहीं देखा जा सकता। कोष एक गाढ़ा-सा वर्णहीन द्रव्य होता है। कोष के बीच में अन्तर्बीज (nucleus) होता है जो कोष को जीवित रखता है (चित्र १)। अन्तर्बीज को यदि कोष से अलग कर दिया जाय (जो संभव हो सका है) तो कोष उसी समय मर जाता है। कोष में एक साथ ही हजारों रासायनिक क्रियाएँ होती रहती हैं।

प्रत्येक कोष में सुविकारिता (irritability) होती है। कोष अपनी सुविकारिता के कारण अनुकूल या प्रतिकूल उत्तेजनाओं के प्रति भावात्मक या अभावात्मक प्रतिक्रिया कर सकने में समर्थ होता है। कोषों की सुविकारिता के

कारण ही प्राणी का शरीर परिवेश से समायोजन करता है। यदि कोषों में सुविकारिता न होती तो शरीर वाह्य आघातों को नहीं सह पाता और जल्द ही नष्ट हो जाता। अधिक विकसित प्राणियों के कोषों में सुविकारिता उनके विकास के अनुपात से होती है।
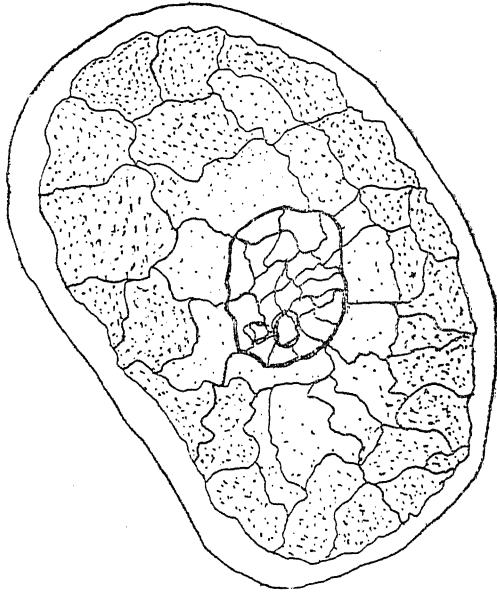
चित्र १

जीवित बने रहने के लिए कोषों को शक्ति की आवश्यकता होती है जो उन्हें भोजन से मिलती है। खाने की चीजों से प्राप्त होने वाली शक्ति रासायनिक रूप में बदल कर कोषों में संचित होती रहती है। कोषों में संचित शक्ति एक ओर तो विभिन्न अंगों के निर्माण में सहायता देती है

ओर दूसरी ओर शरीर को क्रिया कर सकने के लिए बल देती है। शारीरिक क्रियाओं में शक्ति का व्यय होता है। शारीरिक क्रिया में मांसपेशीय (muscular) शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जो शरीर के अन्दर भोजन के जलने से बनती है। भोजन को जलाने के लिए ईंधन शक्कर और माँढ़ (starch) से मिलता है।

प्रत्येक प्राणी की भाँति मनुष्य भी अपना जीवन एक निरवयव कोष के रूप में शुरू करता है जो अंडे की शक्ल का होता है और जिसका व्यास १/२०० इन्च होता है। निरवयव कोष गर्भ में पलता है और विकसित होकर दो कोषों में विभाजित हो जाता है। ये दो कोष चार में, चार फिर आठ में, आठ फिर सोलह में विभाजित होते होते असंख्यक हो जाते हैं। कोष का विभाजन उसके मध्य भाग से होता है। विभाजन का संकेत पहले अन्तर्बीज में मिलता है। अन्तर्बीज मुड़े हुए रेशे से बना होता है। विभाजन के समय अन्तर्बीज का मुड़ा हुआ रेशा चिमटों की शक्ल के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाता है जिन्हें क्रोमोज़ोम्स (chromosomes) कहा जाता है। क्रोमोज़ोम्स की संख्या प्रत्येक जाति के प्राणी में निश्चित रहती है। आनुवंशिक (inherited) विशेषताओं का आधार क्रोमोज़ोम्स में ही माना जाता है। विभाजन के पहले प्रत्येक क्रोमोज़ोम लम्बाई की ओर से दो क्रोमोज़ोम्स में टूट कर विरोधी दिशा में जाने लगता है। फिर सब क्रोमोज़ोम्स परस्पर मिलकर जब कोष के दोनों सिरों पर अन्तर्बीज बन जाते हैं तब कोष बीचोबीच से दो भागों में टूट जाता है (चित्र २)। अधिक विकसित प्राणियों के कोषों में उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल संशोधन हो जाते हैं।

एक निरवयव कोष से उत्पन्न होने पर भी कोषों का विकास अलग-अलग दिशाओं में होता है। कोषों की इतनी बड़ी संख्या आश्चर्य की बात नहीं है : आश्चर्य की बात तो उनकी विभिन्नता है। प्रत्येक कोष का

अपना अलग अस्तित्व होता है। विकसित होकर कुछ कोष मांसपेशियों के कोष बन जाते जाते हैं, कुछ त्वचा के, कुछ हड्डियों के और कुछ स्नायुओं (nerves) के। ये विभिन्न कोष प्रतिक्रिया भी अलग-अलग तरह से करते हैं। मांसपेशीय कोषों में प्रतिक्रिया करते समय आकुंचन (contraction) होता है, ग्लैंडों (glands) में स्राव होता है और स्नायु कोषों में न्यूरोनीय प्रेरणा (nervous impulse) का प्रवाह। अपना अलग
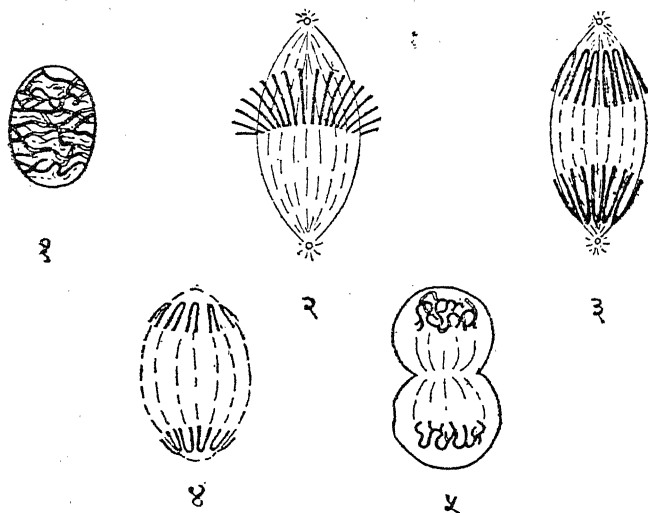
चित्र २

अस्तित्व रखते हुये भी ये सब कोष शरीर के हित के लिये एक संगठित तरीके से काम करते हैं।

यद्यपि कोषों की विभिन्नता का कोई उचित कारण ज्ञात नहीं हो सका है फिर भी उनकी विभिन्नता का कारण अंग के अन्दर होने वाली क्रियाओं को ही समझा जा सकता है। बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में कोष में तीन

तहें होती हैं। त्वचा बाहरी तह से बनती है, मांसपेशियाँ और हड्डियाँ बीच की तह से बनती हैं और आन्तरिक अंगों का निर्माण अन्दर की तह से होता है। तीनों तहें परस्पर अन्तर्क्रिया करके एक दूसरी को उत्तेजित करती रहती हैं और अनेक तरह से मिलकर शरीर के विभिन्न अंगों को उत्पन्न करती हैं।

स्नायुकोष या न्यूरोन

उत्तेजना को ग्रहण कर उसके प्रति प्रतिक्रिया करने का काम स्नायुकोष (nerve cells) करते हैं। शरीर की हर परिधि में स्नायुओं का एक जाल सा फैला रहता है और प्रत्येक स्नायु मनस् या मेरुदंड से सम्पर्क रखता है (चित्र ३)। ग्राहक स्नायु उत्तेजना को मनस् या मेरुदण्ड तक पहुँचाता है और मनस् या मेरुदण्ड प्रभावक स्नायु से प्रतिक्रिया कराके विभिन्न उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओं का आवश्यकतानुसार संगठन करते रहते हैं। मानवी शरीर के स्नायुकोषों में अन्य कोषों की अपेक्षा अधिक सुविकारिता होती है।

चित्र ३

स्नायुकोष को न्यूरोन (neurone) भी कहते हैं। न्यूरोन हजारों छोटे-छोटे रेशों से निर्मित होता है। न्यूरोन के एक ओर अनेक शाखाएँ सी निकली होती हैं जिन्हें डेन्ड्रोन (dendron) कहते हैं। डेन्ड्रोन का काम
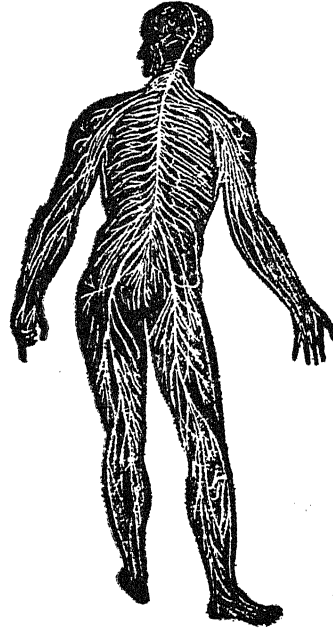
उत्तेजना को ग्रहण करना होता है। न्यूरोन के दूसरी ओर एक लम्बी दुम सी होती है जिसे एक्ज़ोन (axon) कहते हैं। एक्ज़ोन का काम उत्तेजना को ले जाना होता है (चित्र ४)।

न्यूरोन के डेन्ड्रोन शरीर के ग्राहकों (आँख, कान, नाक, मुँह आदि) से सम्पर्क रखते हैं। जिस जगह एक न्यूरोन का एक्ज़ोन खत्म होता है वहां से दूसरे न्यूरोन का डेन्ड्रोन शुरू हो जाता है जिससे पहले न्यूरोन के एक्ज़ोन से आई उत्तेजना को दूसरे न्यूरोन का डेन्ड्रोन ग्रहण कर लेता है और अपने एक्ज़ोन द्वारा आगे बढ़ा कर तीसरे न्यूरोन तक पहुँचा देता
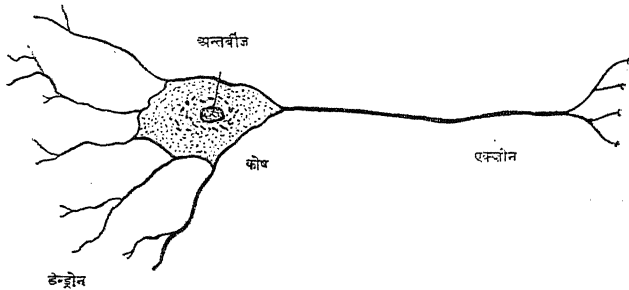
चित्र ४

है। उत्तेजना तीसरे न्यूरोन से चौथे, चौथे से पाँचवें और इसी तरह अनेक न्यूरोनों से होकर उस एक्ज़ोन में पहुँच जाती है जो किसी कर्मेन्द्रिय से सम्पर्क रखता है और तब वह कर्मेन्द्रिय प्रतिक्रिया करती है।

न्यूरोनीय-सामीप्य

कोई न्यूरोन जिस स्थान पर दूसरे न्यूरोन से सम्पर्क रखता है उस स्थान को न्यूरोनीय-सामीप्य (synapse) कहते है (चित्र ५)। किसी न्यूरोन का एक्ज़ोन दूसरे न्यूरोन के डेन्ड्रोन से सामीप्य ही रखता है, उससे जुड़ा नहीं होता और अपनी अलग सत्ता रखता है। प्रतिक्रियाओं की विविधता

न्यूरोनीय-सामीप्यों द्वारा ही सम्भव होती है। किसी न्यूरोन के डेन्ड्रोन अन्य न्यूरोनों के एक्ज़ोनों से अनेक न्यूरोनीय-सामीप्य रख सकते हैं। उत्तेजना न्यूरोन के एक्ज़ोन से दूसरे न्यूरोन के डेन्ड्रोन की ओर न्यूरोनीय-सामीप्य से होकर जाती है। न्यूरोनीय-सामीप्य उत्तेजना के उन्मुक्त प्रवाह में बाधा डालता है। प्रबल या बार-बार किये जाने वाले काम की उत्तेजना न्यूरोनीय-सामीप्य के प्रतिरोध को तोड़कर अपनी दिशा बड़ी सुगमता से निर्धारित कर लेती है। प्रत्येक न्यूरोन अनेक न्यूरोनों के एक्ज़ोनों से उत्तेजना ग्रहण कर सकता है। अनेक उत्तेजनाएँ एक ही न्यूरोन पर आकर मिल सकती हैं और एक ही प्रतिक्रिया अनेक न्यूरोनों को प्रभावित कर सकती है। साँस
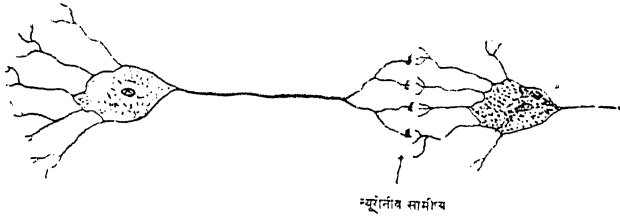
चित्र ५

लेने के केन्द्र में केवल फेफड़ों से ही न्यूरोनीय प्रेरणा नहीं आती वरन् अन्य बोधवाहक न्यूरोनों की प्रेरणाएँ भी आती हैं जिससे साँस लेने की क्रिया में दुखद उत्तेजना, कान फाड़ डालने वाली आवाज़ या त्वचा पर ठंडा पानी पड़ने के समय आसानी से संशोधन हो जाता है।

उत्तेजना और न्यूरोन

उत्तेजना मिलने पर स्नायुकोष (nerve-cell) में संचित शक्ति उन्मुक्त हो जाती है जिससे न्यूरोनों में एक प्रकार का विद्युत-रासायनिक (electro-chemical) प्रवाह होने लगता है जिसे न्यूरोनीय प्रेरणा (nervous

impulse) कहा जाता है। उत्तेजना से बोधवाहक न्यूरोन के डेन्ड्रोन पर न्यूरोनीय प्रेरणा का प्रादुर्भाव होता है। न्यूरोनीय प्रेरणा मनस् या मेरुदण्ड में जाती है और वहाँ अनेक प्रकार से संगठित होकर मांसपेशियों (muscles) में जाती है जिसके परिणाम स्वरूप कोई न कोई प्रतिक्रिया होती है।

न्यूरोनों में होने वाला विद्युत-रासायनिक प्रवाह बहुत क्षीण होता है और बहुत कम शक्ति की अपेक्षा रखने पर भी न्यूरोन मनस् को उत्तेजित कर मांसपेशियों से प्रतिक्रिया करा लेता है। न्यूरोनीय प्रेरणा की गति लगभग ७५ गज़ प्रति सेकण्ड होती है किन्तु वह सदा निर्बाध नहीं रहती। नींद, मूर्च्छा, थकान आदि की अवस्था में न्यूरोनीय प्रेरणा का अवरोध होता है और वह अवरोध न्यूरोनीय-सामीप्य पर होता है। सन्देह, दुविधा और चिन्तन आदि में न्यूरोनीय प्रेरणा का अवरोध मनस् के अन्दर न्यूरोनीय-सामीप्यों पर होता है जिससे काम करने में देर लगती है।

एक प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि जब उत्तेजना नहीं मिलती तब शरीर के अन्दर क्या होता रहता है? शरीर के अन्दर क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ निरन्तर होती रहती हैं। न्यूरोनीय उत्तेजना के आने पर शरीर के अन्दर होने वाली क्रियाओं में संशोधन हो जाता हैं। शरीर के भीतर साधारण प्रतिक्रियाएँ सदा होती रहती हैं और मानवी शरीर के भीतर होने वाला सारा व्यापार उन्हीं साधारण प्रतिक्रियाओं से निर्मित होता है।

न्यूरोनों के भेद

न्यूरोन तीन प्रकार के होते हैं: बोधवाहक (sensory), क्रियावाहक (motor) और संयोजक (connector)। बोधवाहक न्यूरोनों के डेन्ड्रोन आँख, कान, रसना, नाक या त्वचा आदि किसी बोधेन्द्रिय में रहते हैं और एक्ज़ोन मनस् या मेरुदण्ड में जाते हैं। बोधवाहक न्यूरोन अपने

डेन्ड्रोन द्वारा उत्तेजना ग्रहण करता है और उसे अपने एक्ज़ोन द्वारा मनस् या मेरुदण्ड में भेजता है। यदि किसी आँख का कोई बोधवाहक न्यूरोन कट जाय तो मनुष्य उस आँख से देख नहीं सकता क्योंकि तब मनस् को आँख द्वारा ग्रहण की गई उत्तेजना का बोध नहीं हो सकता।

क्रियावाहक न्यूरोन के डेन्ड्रोन मनस् या मेरुदण्ड में रहते हैं और एक्ज़ोन मांसपेशियों में। क्रियावाहक न्यूरोन का काम मनस् या मेरुदण्ड से आदेश पाकर उसे किसी मांसपेशी में पहुँचा देना होता है जिससे वह मांसपेशी मनस् या मेरुदण्ड के आदेश के अनुसार काम कर सके। यदि दुर्घटना से कोई क्रियावाहक न्यूरोन नष्ट हो जाय तो उससे सम्बन्धित मांसपेशी मनस् या मेरुदण्ड से आदेश न पा सकने के कारण बेकार हो जाती है।

संयोजक न्यूरोनों का काम बोधवाहक और क्रियावाहक न्यूरोनों में सम्बन्ध स्थापित करना होता है। संयोजक न्यूरोन मनस् में सबसे अधिक होते हैं जिससे मनस् में लाखों न्यूरोनीय-सामीप्य होते हैं। संयोजक न्यूरोन द्वारा उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओं में उचित संगठन होता है। संयोजक न्यूरोनों के अभाव में बोधवाहक और क्रियावाहक न्यूरोनों में कोई क्रियात्मक सम्बन्ध नहीं हो सकता।

मनुष्य के शरीर में असंख्यक बोधवाहक और क्रियावाहक न्यूरोन होते हैं और प्रत्येक न्यूरोन का काम अलग अलग होता है। यदि एक ही न्यूरोन अनेक प्रकार की उत्तेजनाएँ ग्रहण करता तो सारा मानवी व्यवहार आकस्मिक और विच्छृङ्खल होता। प्रत्येक न्यूरोन का काम अलग अलग बँटा होने और उन सबका संचालन एक ही केन्द्र (मनस् या मेरुदण्ड) से होने के कारण मनुष्य कई काम एक साथ कर सकता है और अनेक कामों के साथ-साथ होते रहने पर भी पूरे शरीर का व्यवहार एक संतुलित और व्यवस्थित इकाई बना रहता है।

न्यूरोनीय क्रियाएँ

उत्तेजना मिलने पर बोधवाहक न्यूरोन न्यूरोनीय प्रेरणा को क्रियावाहक न्यूरोन तक पहुँचा देता है जिससे प्रतिक्रिया होती है। बोधवाहक न्यूरोनीय प्रेरणा का क्रियावाहक न्यूरोनीय प्रेरणा में परिवर्तित हो जाना प्रक्षिप्त क्रिया (reflex action) कहलाता है। प्रक्षिप्त क्रिया बोधवाहक उत्तेजना के प्रति होने वाली तत्कालिक मांसपेशीय या ग्लैंडीय (glandular) प्रतिक्रिया है। प्रक्षिप्त क्रिया अनायास (involuntary) होती है; उसे सीखना नहीं
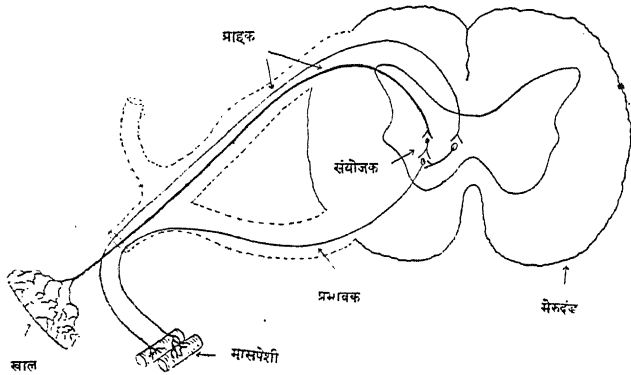
चित्र ६

पड़ता। जब प्रक्षिप्त क्रिया केवल एक बोधवाहक, एक संयोजक और एक क्रियावाहक न्यूरोन द्वारा होती है तो प्रक्षिप्त क्रिया के द्वार को प्रक्षिप्त चाप (reflex arc) कहा जाता है (चित्र ६)।

प्राणी का लगभग सारा शारीरिक व्यवहार प्रक्षिप्त क्रियाओं से निर्मित होता है। प्रक्षिप्त क्रिया पर प्राणी का कोई अधिकार नहीं होता। प्रक्षिप्त क्रियाएँ प्राणी की मूल प्रवृत्तिओं की विशेषताओं का परिणाम होती हैं जिनका प्रयोग वह जीवन भर अनायास करता रहता है। प्रक्षिप्त क्रियाओं

पर प्रश्न उठाना उतना ही निरर्थक है जितना यह पूछना कि चलने के लिए पैर और पकड़ने के लिए हाथ क्यों होते हैं। प्रक्षिप्त क्रियाएँ प्राणी के शारीरिक निर्माण की अनिवार्य देन हैं।

मूलप्रवृत्तियाँ और प्रक्षिप्त क्रियाएँ

शरीर के प्रत्येक जीवित कोष का व्यवहार कुछ मूलप्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति होता है। मूल प्रवृत्तियों को कोषों के व्यवहार के अध्ययन से ही जाना जा सकता है। अपनी मूलप्रवृत्तियों के कारण ही कोष परिवेश के प्रति उन प्रतिक्रियाओं को कर पाता है जिन पर जीवन निर्भर होता है। जीवन के लिए पोषक तत्वों की जरूरत होती है जो अन्न आदि से मिलते हैं। अन्न में रासायनिक द्रव्य होते हैं, इसलिए परिवेश से रासायनिक द्रव्यों के प्रति प्रतिक्रिया करना प्राणी के शरीर की पहली मूलप्रवृत्ति है। इस रासायनिक द्रव्योन्मुखी प्रवृत्ति (chemotaxis) को आत्मसंरक्षण की मूलप्रवृत्ति कहा जा सकता है। प्राणी के शरीर की दूसरी मूलप्रवृत्ति तापक्रम से नियमन करना है। अन्न आदि के अतिरिक्त जीवन को बनाए रखने के लिए एक निश्चित तापक्रम का होना भी जरूरी है। तापक्रम का असर अन्न आदि की पैदावार पर भी पड़ता है। जनसंख्या के वितरण में तापक्रम की मूलप्रवृत्ति ही काम करती है। तापक्रमोन्मुखी मूलप्रवृत्ति (thermotaxis) के कारण हम गर्मियों में पहाड़ पर जाते हैं और जाड़े में अँगीठी तापते हैं। प्रकाश की खोज करना प्राणी की तीसरी मूलप्रवृत्ति है। सूर्योन्मुखी प्रवृत्ति (heliotaxis) वनस्पति जगत में बहुत होती है। सूरजमुखी फूल सूर्योन्मुखी प्रवृत्ति का सुन्दर उदाहरण है। प्रकाश प्राणी को भोजन ढूँढ़ने और खतरे से बचाने में ही मदद नहीं देता वरन् प्रकाश से मिलने वाली अल्ट्रावायलेट किरणें स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक होती हैं। प्राणी की चौथी मूलप्रवृत्ति हवा इत्यादि प्राकृतिक शक्तियों के दबाव से अपना नियमन करना है। हमारा शरीर हवा के दबाव से ही अविच्छिन्न

बना रहता है। यदि हवा का दबाव न हो तो शरीर के टुकड़े टुकड़े हो जायँ। इसी मूलप्रवृत्ति के कारण धुएँ और घनी हवा में हमारा दम घुटने लगता है, हम खुली जगह पर मकान बनवाते हैं और शाम को वायुसेवन के लिए जाते हैं।

मूलप्रवृत्तियों और प्रक्षिप्त क्रियाओं में केवल यही भेद किया जा सकता है कि मूलप्रवृत्तियाँ तो कोषों के व्यवहार का अनिवार्य परिणाम होती हैं और प्रक्षिप्त क्रियाएँ न्यूरोनों के व्यवहार का। प्रक्षिप्त क्रियाएँ शरीर के कोषों की मूलप्रवृत्तियों की सेवक होती हैं।

यदि न्यूरोनों में आत्मप्रेरित क्रमिक आकुंचन (automatic successive contraction) होता चला जाय तो उसे प्रक्षिप्त शृंखला (chain reflex) कहा जाता है। प्रक्षिप्त शृंखला साधारण प्रक्षिप्त क्रियाओं की माला होती है जिसकी हर क्रिया अपने बाद की क्रिया को प्रेरित करती जाती है। चलना प्रक्षिप्त शृंखला का अच्छा उदाहरण है। फर्श को देख कर हमें चलने की उत्तेजना मिलती है; चलने की उत्तेजना पैर की मांस-पेशी को उत्तेजित करती है और पैर उठता है; पैर के उठने से शरीर असंतुलित हो जाता है और शारीरिक असंतुलन से पैर को आगे रखने की उत्तेजना मिलती है; पैर के तलवे से फर्श का स्पर्श पैर की मांसपेशियों में आवश्यक आकुंचन कर देता है जिससे पैर शरीर का भार सँभाल ले। इसी प्रकार एक क्रिया तत्काल दूसरी क्रिया को प्रेरित करती रहती है। यही प्रक्षिप्त शृंखला है।

जब किसी मांसपेशी में आकुंचन (contraction) होता है तो वह मांसपेशी अपने अन्दर स्थित छोटे छोटे बोधांगों (sense organs) को उत्तेजित करती है। मांसपेशी के वे बोधांग क्रियावाहक स्नायु द्वारा मेरुदंड से सम्बन्धित होते हैं। मांसपेशी के आकुंचन से उत्पन्न होने वाली उत्तेजना मेरुदंड में संप्रेषित (transmit) होती है और अपने निर्गम के लिए

मार्ग चाहती है और कोई मार्ग न मिलने पर वह उसी मार्ग की ओर प्रवाहित होने लगती है जो उसे लाने के समय पहले खुल चुका था। नतीजा यह होता है कि इस प्रकार मांसपेशी का आकुंचन अपने आप पुनर्शक्त (reinforce) होता रहता है । मांसपेशी के आकुंचन के स्वतः पुनर्शक्त होते रहने की क्रिया को प्रक्षिप्त चक्र (circular reflex) कहा जाता है। चाभियों के गुच्छे से खेलते रहना या पैर हिलाते रहना प्रक्षिप्त चक्र के उदाहरण हैं।

न्यूरोनीय क्रियाओं के नियम

न्यूरोनीय क्रियाओं की विशेषताओं के आधार पर न्यूरोनीय क्रियाओं के कुछ नियम बनाए जा सकते हैं। न्यूरोनों पर विचार करते समय न्यूरोनीय क्रिया सम्बन्धी कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया गया था। पहली विशेषता यह थी कि न्यूरोनीय प्रेरणा का प्रवाह सदा डेन्ड्रोन से एक्ज़ोन की ओर होता है इसलिए डेन्ड्रोनों का पता चल जाने पर न्यूरोनीय प्रेरणा के प्रादुर्भाव का स्थान और उसके प्रवाह की दिशा का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

न्यूरोनीय क्रिया की दूसरी विशेषता पर न्यूरोनीय-सामीप्य के प्रसंग में प्रकाश डाला गया था। थकान, नींद, मूर्च्छा, सन्देह, दुविधा, चिंतन आदि के समय न्यूरोनीय प्रेरणा के प्रवाह में अवरोध (inhibition) होता है और वह अवरोध न्यूरोनीय-सामीप्य (synapse) पर होता है। यह न्यूरोनीय क्रिया की एक और विशेषता है। किन्तु इन विशेषताओं के अतिरिक्त न्यूरोनीय क्रियाओं की कुछ और विचारणीय विशेषताएँ भी हैं।

क्या आप कभी आत्मविभोर होकर ठगे से नहीं रह गए हैं? क्या आप कभी हँसते हँसते लोटपोट नहीं हुए है? क्या आपने कभी आश्चर्य चकित हो आँखें फाड़ फाड़ कर नहीं देखा है? यदि आपको ऐसा अनुभव हुआ है तो आपने देखा होगा कि आप ऐसे क्षणों में बिल्कुल निष्क्रिय

और स्तम्भित हो जाते हैं। आपके इस अनुभव से न्यूरोनीय क्रिया की एक और विशेषता पता चलती है कि यदि कोई प्रक्षिप्त द्वार तीव्रता से उत्तेजित हो जाय तो वह कुछ क्षणों के लिए संज्ञाशून्य हो जाता है और अपनी संज्ञाशून्यता के समय (refractory period) वह दुबारा उत्तेजित नहीं किया जा सकता।

किसी मांसपेशी या स्नायु में शक्ति एक निश्चित मात्रा में रहती है और मांसपेशी या स्नायु के उत्तेजित होने पर क्रिया में पूरी शक्ति का व्यय होता है, उसके किसी अंश का नहीं। पल भर में मांसपेशी या स्नायु में शक्ति फिर आ जाती है । मांसपेशी सदा अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रतिक्रिया करती है। किन्तु देखा यह जाता है कि प्रतिक्रिया उत्तेजना की तीव्रता के अनुपात से होती है। जितनी तीव्र उत्तेजना होगी उतनी तीव्र प्रतिक्रिया होगी। लेकिन इससे मांसपेशी या स्नायु विषयक उपर्युक्त कथन का विरोध नहीं होता। तीव्र उत्तेजना स्नायु या मांसपेशी के अनेक रेशों (fibres) को उत्तेजित करती है। दूसरे, तीव्र उत्तेजना से न्यूरोनीय प्रेरणा की तीव्रता नहीं बढ़ती: तीव्र उत्तेजना एक क्षण में अनेक न्यूरोनीय प्रेरणाओं का प्रादुर्भाव करती है। न्यूरोनीय प्रेरणा का प्रवाह बहुत तेज़ होता है और वह एक क्षण के बहुत छोटे भाग में समाप्त हो जाता है । उत्तेजना लगातार मिलते रहने से न्यूरोनीय प्रेरणा का क्रमिक प्रवाह बड़ी तेज़ी से होने लगता है और उत्तेजना जितनी तीव्र होती है न्यूरोनीय प्रेरणा के क्रमिक प्रवाह की तीव्रता उसी अनुपात से बढ़ जाती है। इसलिए प्रतिक्रिया की तीव्रता न्यूरोनीय प्रेरणा के प्रवाहों और सक्रिय भाग लेने वाले स्नायु या मांसपेशी के रेशों की संख्या पर निर्भर होती है।

ग्राहक अत्यन्त क्षीण उत्तेजनाओं को ग्रहण नहीं कर पाता किन्तु वही क्षीण उत्तेजनाएँ यदि अनेक बार दुहराई जायँ तो वे एकत्रित होकर ग्राहक को उत्तेजित कर देती है। न्यूरोनीय क्रिया की इस विशेषता को एकत्रीकरण
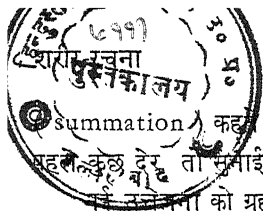
(summation) कहते हैं। किसी काम में लगे रहने पर वर्षा की रिमझिम पहले कुछ देर तो सुनाई नहीं देती किन्तु बाद में सुनाई देने लगती है।

नई उत्तेजना को ग्रहण करने में शुरू में न्यूरोन के केवल दो या तीन रेशे भाग लेते हैं, किन्तु बारबार उसी उत्तेजना के मिलने पर न्यूरोन के सारे रेशे भाग लेने लगते हैं। इस परिवर्तन का अनुभव किया जा सकता है। कॉफी पहले तो पीने पर कड़वी सी मालूम होती है किन्तु लगातार पीते रहने पर उसका कड़वापन अच्छा लगने लगता है। यह क्यों ? क्योंकि तब उस प्रमुख सामान्य द्वार (final common path) के सारे रेशे एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया करने लगते हैं। न्यूरोनीय क्रिया का सामान्य द्वारक हो जाना न्यूरोनीय क्रिया की एक और विशेषता है। उत्तेजना की तीव्रता से सामान्य द्वारक क्रिया के पहले से बने हुए न्यूरोनीय साहचर्य टूट जाते हैं। तीव्र न्यूरोनीय प्रतिक्रिया अन्य समकालीन प्रतिक्रियाओं का अवरोध कर देती है जिससे दो विरोधी उत्तेजनाएँ एक साथ एक ही सामान्य द्वार का उपयोग नहीं कर सकतीं। शायद हमारी शरीर-रचना इस प्रकार हुई है कि किसी समय प्रतिक्रिया का केवल एक प्रमुख द्वार ही पूरी तरह से क्रियाशील रह सके जिससे शारीरिक शक्ति एक ही द्वार से प्रवाहित हो और उसका अपव्यय न हो।

केन्द्रीय व्यवस्था

शरीर की परिधि में फैले हुए असंख्यक स्नायुओं का संचालन और नियमन यदि किसी एक केन्द्र से न हो तो प्राणी का सारा व्यवहार विच्छृंखल और अनर्गल हो जाय। प्राणी को अनेक प्रकार की उत्तेजनाएँ मिलती रहती हैं और वह विभिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करता रहता है। शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन और संगठन केन्द्रीय व्यवस्था से होता है। केन्द्रीय व्यवस्था में दो भाग होते हैं : मेरुदंड (spinal cord) और मनस्।

मेरुदंड

मेरुदंड बहुत से स्नायुओं से मिलकर बनी हुई एक गोल मोटी रस्सी की भांति होती है। मेरुदंड से शरीर की हर परिधि में इकत्तीस जोड़े स्नायु जाते हैं (चित्र ७)। साधारण प्रक्षिप्त क्रियाओं का संगठन मेरुदंड में ही होता है। प्रक्षिप्त क्रियाओं में मनस् का हाथ नहीं रहता। सारी अनायास (involuntary) क्रियाओं का संचालन मेरुदण्ड से होता है। मेरुदण्ड द्वारा बोधवाहक न्यूरोनों के आवेग मनस् तक और वहाँ से मिले आवेग क्रियावाहक न्यूरोनों द्वारा मांसपेशियों तक पहुँचते रहते हैं।

मेरुदंड

चित्र ७

अनुकंपिक स्नायु-व्यवस्था

अनुकंपिक (sympathetic) स्नायु मेरुदंडीय (spinal) स्नायुओं की शाखा होते हैं। वे मेरुदंड से कुछ दूर मेरुदंडीय स्नायुओं में निकल आते हैं। अनुकंपिक स्नायुओं का काम ग्लैंड, रक्त और पाचन सम्बन्धी शरीर की स्वचालित क्रियाओं को करना होता है। शरीर के सप्राण अवयवों का सारा व्यवहार अनुकंपिक स्नायुओं (sympathetic nerves) द्वारा होता है।

मनस्

मेरुदंड के ऊपर के विकसित भाग को मनस् कहा जाता है। मनस् का विकास कोष की बाहरी तहों से होता है। अन्दर की तहों से मिलने वाली उत्तेजनाओं से बाहर की तह मुड़ जाती है और उसमें पीछे की ओर
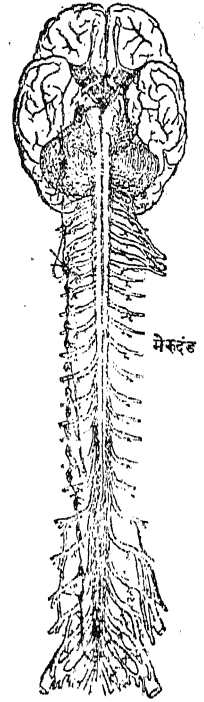
सिमटे पड़ जाते हैं। मनस् अपनी इस अवस्था में क्रिया नहीं कर सकता क्योंकि मनस् को बनाने वाले कोष अभी तक स्नायुकोष नहीं बन पाते। इन्हीं कोषों में आगे चलकर एक्ज़ोन और डेन्ड्रोन निकल आते हैं और
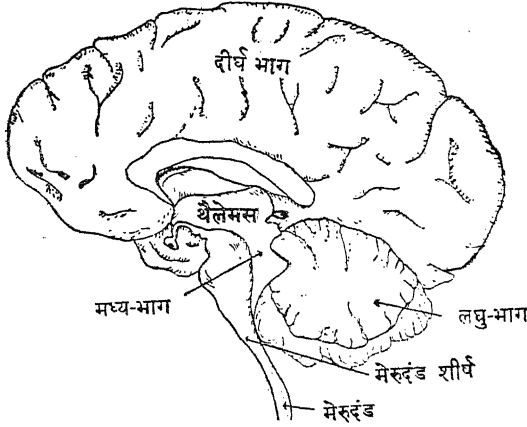
चित्र ८

वे न्यूरोन की विशेषता ग्रहण कर न्यूरोनीय प्रेरणा को ले जाने के योग्य बन जाते हैं। मनस् के तीन भाग होते हैं : लघुभाग (cerebellum), मध्य भाग (mid-brain) और दीर्घभाग (cerebrum) (चित्र ८)।

लघुभाग

मनस् का लघुभाग (cerebellum) सिर के पीछे की ओर होता है और दीर्घभाग से आच्छादित होता है। लघुभाग बोधवाहक और क्रियावाहक प्रेरणाओं में इस प्रकार सङ्गठन करता है जिससे सारा शरीर संतुलित और व्यवस्थित रूप से काम कर सके। लघुभाग का काम शारीरिक संतुलन बनाए रखना है। लघुभाग पर आघात से व्यक्ति अपना शारीरिक संतुलन

खो बैठता है और चलने पर शराबी की भाँति लड़खड़ाने लगता है। सारा मांसपेशीय संतुलन लघुभाग पर निर्भर रहता है।

मध्यभाग

मध्यभाग मनस् के लघुभाग और दीर्घभाग के बीच में होता है। दीर्घभाग के भूरे पदार्थ (grey matter) के नीचे एक स्नायविक ग्रन्थि होती है जिसे थैलेमस (thalamus) कहते हैं। अनुकंपिक (sympathetic) स्नायुओं से सम्बन्धित होने से थैलेमस संचारी भावात्मक (emotional) जीवन का आधार होती है। थैलेमस और दीर्घभाग के अगले खंड में सम्पर्क होता है। हमारी विचारधारा पर संचारी भावों का जो प्रभाव पड़ता है उसका आधार थैलेमस और दीर्घभाग के अगले खंड के सम्पर्क में ही माना जाता है।

मध्यभाग के ठीक नीचे मेरुदंड शीर्ष (medulla) होता है। यह कुछ मोटा और इंच भर लम्बा होता है। मेरुदंड शीर्ष सिर में प्रक्षिप्त क्रियाओं, हृद्‌गति और साँस लेने की क्रिया का केन्द्र होता है।

दीर्घभाग

मनस् का दीर्घभाग (cerebrum) मनुष्य में बहुत बड़ा होता है। यह दो गोलार्द्धों (hemispheres) में विभक्त होता है। बाईं ओर का गोलार्द्ध अधिकांश शरीर के दाहिने भागों और दाहिनी ओर का बायें भागों से सम्बन्धित होता है। दीर्घभाग का धरातल जगह जगह से उभरा हुआ और घुमावदार (convoluted) होता है। इसके बाहर भूरे पदार्थ (grey matter) की एक परत होती है जिसे कोर्टेक्स (cortex) कहते हैं। सारा दीर्घभाग विभिन्न न्यूरोनों के डेन्ड्रोनों और एक्ज़ोनों में संयोजन करने वाले संयोजक न्यूरोनों से निर्मित होता है। संयोजक न्यूरोनों से निर्मित होने के कारण मनस् के दीर्घभाग का मुख्य काम उत्तेजनाओं-प्रतिक्रियाओं में विभिन्न साहचर्यों (associations) को स्थापित करना, नई विधियों

का आविष्कार करना और क्रियाओं में ऐसे संशोधन करना होता है जिन्हें चिंतन, कल्पना, तुलना और विश्लेषण करना कहा जाता है।

भूरे पदार्थ के नीचे सफेद पदार्थ (white matter) होता है जिस पर रक्तिम धब्बे पड़े होते हैं। सफेद पदार्थ विभिन्न आकार के रेशों से निर्मित होता है। इन रेशों (fibres) में उनके मार्ग और सम्बन्धों के अनुसार तीन प्रकार का प्रबन्ध होता है। कुछ रेशे दोनों गोलार्द्धों के समान क्षेत्रों में सम्बन्ध स्थापित करते हैं। कुछ रेशे एक ही गोलार्द्ध में कोर्टेक्स (cortex) के विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक साहचर्य रखते हैं और कुछ रेशे कोर्टेक्स को मध्यभाग (mid-brain) और मेरुदंड (spinal cord) से सम्बन्धित करते हैं।

दीर्घभाग में बारह जोड़े कापालिक स्नायुओं (cranial nerves) में से केवल आँख और कान के स्नायु ही होते है, अन्य कापालिक स्नायु मनस् के मध्य भाग या मेरुदंड शीर्ष में होते हैं। कापालिक स्नायु विभिन्न कामों से सम्बन्धित होते हैं। आँख को घुमाने, दृष्टि केन्द्रित करने, मुखाकृति पर नियंत्रण रखने, गर्दन की मांसपेशियों को संचालित करने के लिए अलग अलग कापालिक स्नायु होते हैं और वे परस्पर घनिष्ठ रहते हैं जिससे शारीरिक स्वास्थ्य की झलक स्वर, दृष्टि आदि में आ जाती है।

शरीर के सारे संवेदन (sensations) मनस् के विस्तृत दीर्घभाग में आते हैं और सारी सायास (voluntary) क्रियाएँ यहीं से होती हैं। दीर्घ-भाग गिलाफ चढ़े हुए अखरोट की तरह लगता है और मनुष्य की बौद्धिकता का रहस्य भूरे पदार्थ की घुमावदार परतों में ही छिपा रहता है। भूरे पदार्थ के कोषों में अनेक छोटे-छोटे कण से होते हैं जिन्हें ग्रेन्यूल्स (granules) कहा जाता है। ग्रेन्यूल्स मानसिक क्रियाओं से सम्बन्धित होते हैं।

सारी संवेदनाएँ कोर्टेक्स में संयुक्त, संश्लिष्ट और संशोधित होती हैं। कोर्टेक्स का काम संवेदनों को नाम, रूप, गुण आदि से सविशेष तथा

सार्थक बनाना होता है। प्रत्येक स्थिति के साथ-साथ कोर्टेक्स के साहचर्यों में संशोधन होता रहता है। किसी स्थिति के साहचर्यों के विकृत होने पर प्राणी को उस स्थिति के महत्व की अनुभूति नहीं होती। वाकभ्रंश रोग (aphasia) में रोगी बोलना भूल जाता है क्योंकि बोलना सीखने से उसकी कोर्टेक्स में जो संशोधन हुआ था वह नष्ट हो जाता है। किंतु फिर सीखने पर नया साहचर्य बन जाता है और बोलना आ जाता है।

दीर्घभाग का विभाजन

दीर्घभाग के उभरे हुये भागों के बीच बहुत सी दरारें (fissures) होती है। रोलैण्डो और सिल्वियस नामक दो बड़ी दरारों के आधार पर
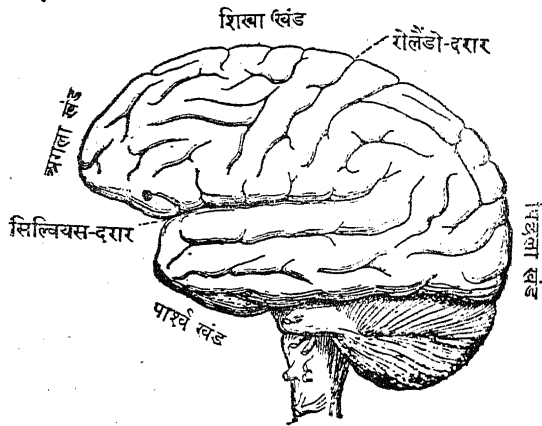
चित्र ६

दीर्घभाग को चार खंडों में बाँटा जा सकता है : पिछलाखंड (occipital lobe), पार्श्वखंड (temporal lobe), शिखाखंड (parietal lobe) और अगलाखंड (frontal lobe) (चित्र ६)। प्राणी के सारे मानसिक तथा शारीरिक व्यापार इन्हीं चारों खंडों से सम्बन्धित होते हैं।

वैज्ञानिकों ने अपने अथक प्रयत्नों से अब यह मालूम कर लिया है कि मनस् का कौन सा खंड किस व्यापार से संबंधित होता है। इसके लिए उन्होंने यह पता लगाया है कि कौन सा स्नायु मनस् के किस खंड से सम्बन्धित होता है। उन्होंने मानसिक रोगों से पीड़ित लोगों के व्यवहारों की परीक्षा से और पशुओं के मनस् का कोई खंड नष्ट करके व्यवहार पर उसके प्रभाव और कोर्टेक्स के खोले गए किसी भाग पर बिजली की करेंट देकर शारीरिक क्रिया के निरीक्षण को अपनी खोजों का आधार बनाया है। इन खोजों के आधार पर यह पता चला है कि मनस् का पिछलाखंड देखने और सिल्वियस-दरार के ठीक नीचे का खंड सुनने का केन्द्र होता है। त्वचीय संवेदनों जैसे तापक्रम, पीड़ा आदि का केन्द्र रोलैण्डो दरार के ठीक पीछे की ओर होता है और ठीक सामने का क्षेत्र क्रियावाहक (motor) केन्द्र होता है जहाँ के विभिन्न स्थल शरीर के विभिन्न अवयवों जैसे पैर, जाँघ, पेट, पीठ, कन्धे, कोहनी, कलाई, उँगलियाँ, सिर, पलकें, गाल, जबड़े, ओंठ आदि की मांसपेशियों से सम्बन्धित होते हैं। बोलने का केन्द्र दोनों गोलार्द्धों के बीच में होता है। स्वाद और सूँघने के क्षेत्रों का निश्चित रूप से तो पता नहीं लग पाया है किन्तु वे शायद दोनों गोलार्द्धों के बीच कोर्टेक्स पर ही होते हैं (चित्र १०)।

वैज्ञानिक बहुत समय तक अगले खंड का काम नहीं जान सके थे। किन्तु कई रोगियों की जाँच से, जिनके मनस् का अगलाखंड नष्ट हो गया था, अब यह ज्ञात हो चुका है कि अगलाखंड मनुष्य और पशु में भेद करने वाले गुणों का भौतिक आधार है अगला खंड नष्ट होने पर मनुष्य बिना किसी शारीरिक विकृति के स्वस्थ तो रह सकता है किन्तु उसका चरित्र बिल्कुल बदल जाता है। मेंढ़क और कबूतर मनस् का अगलाखंड नष्ट कर दिए जाने पर भी तैरने, कूदने और उड़ सकने में तो समर्थ रहे किन्तु जब तक उन्हें उत्तेजित नहीं किया जाता था तब तक वे अपने आप कुछ नहीं

कर पाते थे। उनका सारा व्यवहार मशीनवत् हो जाता था। इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि सारी सायास (voluntary) क्रियाएँ दीर्घभाग के अगलेखंड
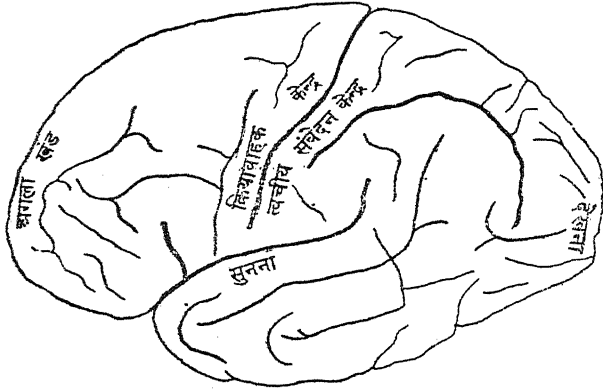
चित्र १०

पर निर्भर होती हैं। अगलेखंड के नष्ट होने पर पुरानी प्रक्षिप्त क्रियाएँ तो होती रहती हैं किन्तु नई प्रक्षिप्त क्रियाएँ नहीं सीखी जा सकतीं।

थकान

शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं के होने पर शरीर की संचित शक्ति घटती है। जब शक्ति की आय उसके व्यय के अनुपात से नहीं होती तब शरीर थकने लगता है। थकान अधिकतर स्थानीय होती है। ज्यादा देर तक लिखने से हाथ थक जाते हैं। स्थानीय थकान को दूर करने का अच्छा उपाय यही है कि कुछ देर काम बन्द करके स्थानीय अंग को आराम दे दिया जाय।

काम करने के लिए मांसपेशीय शक्ति की जरूरत होती है जो खाद्य पदार्थों से मिलने वाली शक्कर और माँढ़ से बनती है। शक्कर और माँढ़ के जलने से शरीर के भीतर कार्बन-डाइ-आक्साइड (carbon-di-oxide)

और लैक्टिक एसिड (lactic acid) नाम के दो पदार्थ बनते हैं। थकान इन्हीं दोनों पदार्थों से पैदा होती है। अधिक काम करने से ये दोनों पदार्थ इतनी जल्दी बनते हैं कि शरीर उन्हें फेंफड़ों से या पसीने आदि द्वारा जल्दी बाहर नहीं निकाल पाता और शरीर के अन्दर उनकी उपस्थिति थकान पैदा कर देती है।

थक जाने के बाद भी काम करते रहने से शारीरिक शक्ति का अपव्यय होने लगता है और शरीर ठीक तरह से काम नहीं कर पाता। हल्की थकान में न्यूरोनीय प्रेरणाओं का न्यूरोनीय-सामीप्यों पर अवरोध होने लगता है किन्तु चूर कर डालने वाली थकान का असर पूरे शरीर पर पड़ता है। चूर कर देने वाली थकान में स्नायुकोष संकुचित हो जाते हैं, हृदय फैल जाता है, हृद्गति बढ़ जाती है और अनियमित भी हो सकती है। अधिक थक जाने पर साँस उखड़ने लगती है और पाचन क्रिया गड़बड़ हो जाती है जिससे प्राणी की कार्य कुशलता घट जाती है। थकान से मानसिक कोषों के ग्रेन्यूल्स की संख्या कम हो जाती है और थकान से चूर होने की अवस्था में तो वे बिल्कुल अदृश्य हो जाते हैं (चित्र ११)।

थकान को रोकने के लिए शरीर के अन्दर प्रबन्ध होता है। दोनों गुर्दों (kidneys) के पास दो ग्लैंड होते हैं जो ऐड्रीनैलीन नामक पदार्थ का स्राव करते हैं। ऐड्रीनैलीन (adrenalin) की उपस्थिति थकान को शरीर भर में जल्द फैलने से रोकती है।

हर काम से समान थकान नहीं होती। जिस काम में रुचि होती है उसे करने से थकान जल्द नहीं आती। हम केवल काम करने के बाद ही नहीं थकते, नीरस काम करने में पहले से ही कुछ थक से जाते हैं। शारीरिक शक्ति का प्रवाह दस-ग्यारह और दो-तीन बजे के बीच अधिक होता है इसलिए यदि काम करने की गति को नियमित कर लिया जाय तो थकान कम हो सकती है। शोर गुल आदि अनावश्यक बाधाएँ भी थकान जल्द

लाती हैं। थोड़ी थकान मालूम होने पर यदि गर्म पानी पी लिया जाय तो वह थकान लाने वाले पदार्थों के प्रभाव को कम कर देता है। थकान का सबसे बड़ा कारण गन्दे दाँत हैं और उन्हें साफ न रखना मौत को असमय बुलाना है। थकान का असर कार्य कुशलता के अतिरिक्त स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। जिस समाज का परिवेश स्वच्छ और शांत नहीं होता वह समाज कार्यकुशल और स्वस्थ नहीं हो सकता और उसका जीवन दृष्टिकोण भी थका हुआ सा बन जाता है।
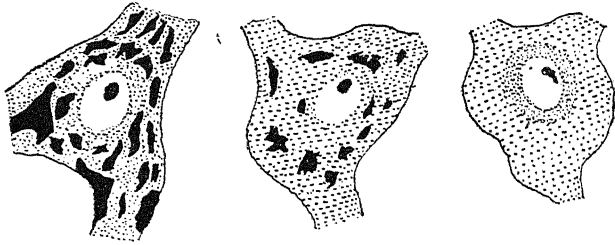
चित्र ११

इस प्रसंग में मनस् पर मादक पदार्थों का प्रभाव जानना रुचिकर होगा। यह समझा जाता है कि मादक पदार्थ मानसिक क्रिया को उद्दीप्त कर कुशलता बढ़ाते हैं। किन्तु प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि मादक पदार्थों का मानसिक कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। चिंता और डर से उत्पन्न अनेक बाधाओं के कारण मानसिक क्रिया कभी कभी ठीक तरह से नहीं हो पाती। ऐसे समय मादक पदार्थों के थोड़े से सेवन से बाधाएँ दूर हो जाती हैं जिससे मनस् सुचारु ढंग से काम करने लगता है। मादक पदार्थों का इससे अधिक और कोई महत्व नहीं है।

नींद

नींद का जीवन में बड़ा महत्व है। नींद में हम कुछ देर के लिए

जगत की कठोर वास्तविकता से छुटकारा पा जाते हैं। प्राणी अपने जीवन का एक तिहाई या लगभग आधा भाग सोते ही बिता देता है। सोने से स्नायुकोषों की थकान दूर हो जाती है। नींद का कोई उचित कारण अब तक मालूम नहीं हो सका है। नींद के विषय में अनेक मत हैं। कुछ लोग नींद का केन्द्र मध्य मनस् में मानते हैं। कुछ लोगों के अनुसार नींद तब आती है जब वाह्य जगत की उत्तेजनाएँ अवरुद्ध होकर मनस् तक नहीं पहुँच पातीं। कुछ लोग नींद का कारण सूर्योन्मुखी प्रवृत्ति (heliotaxis) में समझते हैं। उनके अनुसार जिस प्रकार शारीरिक व्यवहार प्रकाश पर निर्भर रहता है उसी प्रकार नींद अन्धकार पर निर्भर होती है। सक्रिय और चेतन क्रियाओं का प्रधान अंग आँख है। अन्धकार में आँख को उत्तेजना न मिल सकने से सक्रिय और चेतन क्रियाएँ नहीं हो पातीं। नींद सक्रिय और चेतन क्रियाओं के अभाव के अतिरिक्त और है ही क्या? फिर भी इन सारे मतों से नींद की कोई समुचित व्याख्या नहीं हो पाती; इसलिए हमें नींद में शारीरिक अवस्था को जानकर ही सन्तोष करना पड़ेगा।

नींद में पलकें झँप जाती हैं और शरीर की सारी सायास मांसपेशियाँ श्रांत हो जाती हैं। साँस लेने की क्रिया और हृदय की गति धीमी पड़ जाती है। ख़ून का दबाव कम पड़ जाता है और शरीर के अन्दर का तापक्रम कुछ बढ़ जाता है। प्रयोगों में यह देखा गया है कि नींद में ख़ून मनस् से उतर जाता है जिससे मनस् कुछ पीला सा पड़ कर संकुचित हो जाता है। मनस् जाग्रतावस्था की भाँति नींद में विभिन्न क्रियाओं में जटिल संगठन नहीं कर पाता किन्तु थोड़ी बहुत बौद्धिक क्रिया अवश्य कर सकता है। इससे स्पष्ट है कि नींद और थकान में बहुत भेद है। नींद में चेतनता की कमी हो जाती है। नींद पर मानसिक विन्यास (set) और सोने के पहले की मानसिक अवस्था का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है।

बहुत से लोग अपने दृढ़ निश्चय से रात के किसी भी समय जग जाते हैं।

कच्ची नींद स्वास्थ्य के लिए घातक होती है। गहरी और अच्छी नींद के लिए वातावरण शांत, कमरा साफ और हवादार और बिस्तर नर्म होना चाहिए। सोते समय शरीर के किसी भाग में तनाव नहीं रखना चाहिए और कोई मानसिक दुविधा नहीं होनी चाहिए।

प्रश्न

१—शरीर रचना में कोष का महत्व बताते हुए स्नायुकोष की रचना और स्नायुकोषों के पारस्परिक सम्बन्ध की सचित्र व्याख्या कीजिए।

२—न्यूरोन के भेद बताइए और उनकी क्रियाओं पर प्रकाश डालिए।

३—प्रक्षिप्त क्रिया को सचित्र समझाते हुए उसका मूलप्रवृत्तियों से भेद बताइए।

४—न्यूरोनीय क्रियाओं के नियमों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

५—केन्द्रीय व्यवस्था का सचित्र वर्णन करते हुए शरीर का एक संगठित इकाई की तरह क्रिया कर सकने का कारण बताइए।

६—मनस् का कौन सा खण्ड प्राणी के किस व्यापार से सम्बन्धित होता है? सचित्र बताइए और अगले खण्ड का महत्व स्पष्ट कीजिए।

७—आप थक क्यों जाते हैं? थकान का कार्य कुशलता पर क्या असर पड़ता है?

८—नींद क्यों आती है? आप कैसी नींद पसन्द करते हैं? कारण बताइए।

३

जानना

प्राणी जब तक अपने परिवेश को न जाने तब तक वह व्यवहार नहीं कर सकता। व्यवहार के लिए जानने की आवश्यकता होती है। मनुष्य पहले अपने परिवेश को जानने की कोशिश करता है और फिर उसी आधार पर व्यवहार करता है। अनुभव के बिना व्यक्ति व्यवहार कुशल नहीं बन सकता। अनुभव ग्राहकों द्वारा होता है। जन्मजात अंधे या बहरे व्यक्ति को जगत के रंगों और ध्वनियों का अनुभव नहीं होता। अंधा सूर्योदय की छटा और सावन की काली घटा नहीं देख पाता। बहरा स्वर माधुरी का रस नहीं ले पाता। रंग और ध्वनि से अनुभव शून्य व्यक्ति की दुनिया भी क्या होती होगी ? अनुभव के बिना मनुष्य का जीवन, जीवन के सुख, सुखों की विविधता सब निरर्थक है।

किन्तु अनुभव इतना व्यक्तिगत होता है कि एक व्यक्ति दूसरे के अनुभव को नहीं देख सकता। आप और मैं दोनों सूर्योदय की छटा देख रहे हैं। मैं आपसे सूर्योदय के समय आकाश का रंग पूछता हूँ। आप कहते हैं 'लाल।' मैं सन्तुष्ट हो जाता हूँ। आपके पूछने पर मैं भी आकाश का रंग लाल ही बताता। किंतु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि आप जिसे 'लाल' कहते हैं और मैं जिसे 'लाल' समझता हूँ वह एक ही अनुभव है क्योंकि मैं आपके अनुभव को नहीं देख सकता। मैं केवल आपके और आप केवल मेरे व्यवहार को ही देख सकते हैं। काँटा लगने पर यदि आप कराह उठते हैं तो आपके व्यवहार से मैं अनुमान कर सकता

हूँ कि आपको दर्द का अनुभव हुआ है। किन्तु यदि मैं काँटा लगने पर न कराहूँ और दर्द का अनुभव होने का कोई भाव प्रकट न करूँ तो आपके लिए यह कहना या अनुमान करना कठिन हो जायगा कि मुझे दर्द का अनुभव हुआ या नहीं हुआ। अनुभव का अनुमान व्यवहार को देखकर ही किया जाता है।

अनुभव का अनुमान चूँकि व्यवहार से ही हो सकता है इसलिए कुछ लोग मनोविज्ञान में अनुभव को उतना महत्व नहीं देते जितना व्यवहार को देते हैं। वे कहते हैं कि किसी व्यक्ति का अनुभव उसके लिए चाहे सत्य और स्वयंसिद्ध क्यों न हो किन्तु दूसरों के लिए सत्य होने के लिए अनुभव को व्यवहार सापेक्ष होना चाहिए। किन्तु फिर भी अनेक व्यक्तियों के अनुभवों में काफी समानता और सत्यता होती है इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से मनोविज्ञान में अनुभव की महत्ता को स्वीकार कर लेने में कोई हानि नहीं है। अनुभव तब होता है जब कोई उत्तेजना प्राणी के शरीर पर प्रभाव डालती है। उत्तेजना मिलने पर शरीर के अन्दर न्यूरोनीय शक्ति का प्रवाह होने लगता है और उस प्रवाह के फलस्वरूप प्राणी को अपने परिवेश का बोध होता है जिससे वह कोई न कोई चेतन प्रतिक्रिया करता है। यह चेतन प्रतिक्रिया ही अनुभव है। अनुभव में तीन बातें होती हैं : स्थिति का बोध, बोध होने पर प्रतिक्रिया और प्रतिक्रिया द्वारा परिवेश से समायोजन। अगर आपके हाथ पर गर्म पानी गिर जाय तो पहले आपको गर्म पानी का बोध होगा। फिर आप दर्द से चिल्लाकर और अपना हाथ झटक-झटक कर प्रतिक्रिया करेंगे। इसके बाद आप हाथ की जलन मिटाने के लिए मरहम लगाकर एक विषम स्थिति से अपना समायोजन करेंगे। इससे स्पष्ट है कि अनुभव व्यवहार और समायोजन का पूर्वगामी है। अनुभव शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत है। अनुभव में बोध (निर्विशेष ज्ञान), बोध होने की शर्तें और संज्ञा (सविशेष ज्ञान) होती हैं, इसलिए अनुभव को समझने के लिए

बोध, बोध होने की शर्त और संज्ञा का अलग-अलग अध्ययन करना आवश्यक है।

बोध

प्राणी को अपने परिवेश का बोध उत्तेजना मिलने पर होता है। उत्तेजना किसी शक्ति के उस परिवर्तन को कहा जाता है जो प्राणी के किसी ग्राहक, आँख, कान आदि पर प्रभाव डालती है। प्राणी आँख से देखता है, कान से सुनता है, रसना से रस लेता है। आँख, कान और रसना आदि ग्राहकों को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ उत्तेजना हैं। यदि ग्राहकों को प्रभावित करने वाले शक्ति परिवर्तन से प्राणी के ग्राहक प्रभावित न हों तो वे शक्ति परिवर्तन उस प्राणी के लिए उत्तेजना नहीं बन पाते। कोई शक्ति परिवर्तन उत्तेजना तभी बन सकता है जब वह प्राणी के ग्राहकों को प्रभावित करे। शक्तियों का परिवर्तन या उत्तेजनाएँ प्रत्येक प्राणी पर अलग-अलग तरह से प्रभाव डालती हैं। इसका कारण प्राणी की स्वभाव विभिन्नता, अनुभव विचित्रता या परिपक्वता का अनुपात है। चाय किसी को रुचिकर लगती है, किसी को नहीं ; दूध का जला छाछ को फूँक-फूँक कर पीता है ; बच्चे बिजली की चमक देखकर डर जाते हैं किन्तु कवि को उसमें अपनी प्रेयसि की मुस्कान दिखाई देती है।

उत्तेजना मिलने पर जब कोई ग्राहक प्रभावित होता है तो उसके न्यूरोनों में न्यूरोनीय प्रेरणा का प्रादुर्भाव होता है। न्यूरोनों की प्रेरणा मनस् में जाती है जहाँ प्रत्येक ग्राहक की प्रेरणा को ग्रहण करने के अलग-अलग क्षेत्र होते हैं। ग्राहक की प्रेरणा मनस् के तत्सम्बन्धी क्षेत्र में संवेदन (sensation) उत्पन्न करती है। संवेदन होने पर प्राणी को उत्तेजना का बोध होता है। बोध होने पर प्राणी उत्तेजना के प्रति कोई प्रतिक्रिया करता है। संवेदन की अवस्था में उत्तेजना निर्विशेष यानी गुण और विशेषताओं से रहित होती हैं। नवजात शिशु को वे सभी संवेदन होते हैं जो वयस्क

को। किन्तु नवजात शिशु उन संवेदनों के नाम, रूप, गुण, भेद और विशेषताओं को नहीं जानता। दिए की लौ का संवेदन शिशु को भी होता है किन्तु वह दिए का नाम नहीं जानता; कामिनी के छरहरे, सुनहरे, चंचल वदन जैसी लौ के रूप को नहीं जानता; प्रकाश के गुण को नहीं जानता; प्रकाश और अन्धकार के भेद को नहीं जानता और दिए की उन विशेषताओं को नहीं जानता जिनसे मनुष्य रात में रंगीनियाँ पैदा करता है। क्यों? क्योंकि शैशवावस्था में शिशु का मनस् विकसित नहीं होता। संवेदनों को नाम, रूप, गुण, भेद और विशेषताएँ देना विकसित मनस् की क्रिया है। संवेदन विकसित मनस् की क्रिया द्वारा ही सविशेष बनते हैं। संवेदन मनस् की ग्रहणशीलता से होते हैं। संवेदन की अवस्था में मनस् क्रियाशील नहीं होता। संवेदनों को केवल ग्राहकों की क्रिया कहा जा सकता है।

यह ठीक है कि संवेदन शक्ति परिवर्तन के कारण होते हैं किन्तु हर शक्ति परिवर्तन का संवेदन नहीं होता। अल्ट्रा वॉयलेट किरणें यद्यपि हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर उस पर प्रभाव डालती हैं किन्तु हमें उनका संवेदन नहीं होता। रेडियो-किरणें इतनी सूक्ष्म होती हैं कि हम उन्हें नहीं सुन पाते। जमीन सूरज के चारों ओर १६ मील प्रति सेकंड की रफ़्तार से घूमती है जिससे बड़ा भयानक शोर होता है किन्तु हम उस शोर को नहीं सुन पाते। संवेदन शक्ति-परिवर्तन की सूक्ष्मता और स्थूलता की एक विशेष सीमा के अन्दर ही संभव है। यदि शक्ति परिवर्तन उस सीमा से अधिक क्षीण या तीव्र होगा तो ग्राहक उसको ग्रहण नहीं कर सकेंगे और हमें संवेदन नहीं होगा। यदि दूर पर दो व्यक्ति कानाफूसी कर रहे हों तो हम उन्हें ठीक से नहीं सुन सकते; यदि प्रकाश अत्यन्त तेज़ हो तो हमारी आँखें चौंधिया जाती हैं और हम नहीं देख पाते।

संवेदन की विशेषताएँ

प्राणी को विभिन्न प्रकार के संवेदन होते हैं। संवेदनों की विभिन्नता

का रहस्य मनुष्य की शरीर रचना की विशेषता में है। ध्वनि का संवेदन स्पर्श के संवेदन से अलग होता है। ध्वनि एक प्रकार का गुण है और स्पर्श दूसरे प्रकार का। आँख का गुण देखना है और कान का सुनना। आँख, कान, स्पर्श आदि संवेदनों में जातीय भेद होता है। गुणों के जातीय भेद का संवेदन अलग अलग ग्राहकों से होता है। आँख सुन नहीं सकती और कान देख नहीं सकता क्योंकि दोनों के गुणों में जातीय भेद है।

लाल और हरे रंग में भी गुण भेद होता है किन्तु यह भेद जातीय न होकर विशिष्ट भेद होता है। गुण के विशिष्ट भेद का संवेदन एक ही ग्राहक द्वारा होता है। लाल और हरे दोनों रंगों के विशिष्ट भेद का संवेदन आँख से ही होता है और उनके भेद का कारण तत्सम्बन्धी ग्राहक में ही होता है जिसका विस्तृत वर्णन ग्राहकों के प्रसंग में किया जायगा।

संवेदन के गुण और उत्तेजना में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। हरे रंग का पदार्थ हरे रंग का संवेदन उत्पन्न करता है, लाल रंग का नहीं। संवेदन के गुणों की व्याख्या बहुत सीमा तक उत्तेजना के आधार पर की जा सकती है। संवेदन के गुणों में मात्रा-भेद न होकर प्रकार-भेद होता है। संवेदनों की तीव्रता में भी भेद होता है, जैसे मोमबत्ती और बिजली के प्रकाश में। किन्तु तीव्रता के भेद की व्याख्या गुण भेद से ही की जा सकती है। यदि लाल और हरे रंगों की चमक में तीव्रता का भेद न हो तो भी लाल और हरे रंग में गुण के आधार पर भेद किया जा सकता है। दूसरे, तीव्रता का संवेदन उत्तेजित होने वाले न्यूरोन के रेशों की संख्या पर निर्भर होता है।

कभी कभी उत्तेजना के न रहने पर भी उस उत्तेजना का संवेदन कुछ देर तक बना रहता है। अँगूठी या घड़ी हाथ से उतार देने पर भी कुछ देर तक उनका संवेदन होता रहता है। इसे संवेदन की 'देर' (duration) कहा जाता है। किन्तु उत्तेजना और संवेदन में 'देर' का सम्बन्ध बड़ा

अनिश्चित है। कुछ उत्तेजनाओं का संवेदन तो उत्तेजना के न रहने पर कुछ देर होता रहता है और कुछ का बिल्कुल नहीं होता। हृदय को छूने वाले स्वर कान में देर तक गूँजते रहते हैं किन्तु अप्रिय गन्ध का संवेदन उत्तेजना के हटते ही नष्ट हो जाता है।

हमें छोटे और बड़े यानी आकार का भी संवेदन होता है। रुपए का संवेदन चवन्नी के संवेदन से पृथक होता है। रुपए और चवन्नी के संवेदन के भेद को संवेदन की प्रसरता (extensity) कहते हैं। सिर के दर्द के संवेदन में सर्वांग व्यापी पीड़ा से कम प्रसरता होती है। प्रसरता के संवेदन में व्यक्तिगत अवस्था की भी प्रधानता रहती है। गरीब को अमीर की अपेक्षा रुपए में अधिक प्रसरता मालूम होती है; उसे रुपया ज्यादा बड़ा लगता है।

संवेदन की इन्ही विशेषताओं के कारण अनुभव में विविधता होती है। अनुभव की विविधता की व्याख्या के लिए संवेदन की इन विशेषताओं को स्वीकार करना पड़ता है। उनसे इनकार करना अनुभव की विविधता से इनकार करना है।

संवेदन और उत्तेजना

संवेदन की विशेषताएँ मूलतः उत्तेजना में होती हैं या फिर ग्राहकों की क्रिया का परिणाम होती है? वे उत्तेजना और अनुभव से किस प्रकार सम्बन्धित होती हैं? लाल रंग का संवेदन लाल उत्तेजना का गुण होता है या लाल रंग का संवेदन करने वाले ग्राहक की क्रिया का परिणाम? ये प्रश्न बड़े जटिल हैं। अनुभव में तीन अवस्थायें होती हैं: भौतिक (physical), शारीरिक (physiological) और मनोविज्ञानीय (psychological)। किसी उत्तेजना द्वारा किसी ग्राहक का प्रभावित होना भौतिक अवस्था है। संवेदन की विशेषताएँ यदि उत्तेजना में ही रहती हों

तो उन्हें जानने के लिए उत्तेजना का विश्लेषण करना आवश्यक है। उत्तेजना का विश्लेषण भौतिक विज्ञान (Physics) का विषय है।

ग्राहक के प्रभावित होने पर न्यूरोनीय प्रेरणा (nervous impulse) का प्रादुर्भाव होना शारीरिक अवस्था है। संवेदन की विशेषताओं के निश्चय में शारीरिक क्रियाओं का हाथ कहाँ तक रहता है इसका उत्तर पाने के लिए ग्राहक (receptor), बोधवाहक न्यूरोन (sensory neurone) और कोर्टेक्स के न्यूरोनों का अध्ययन करना आवश्यक है। यह अध्ययन शरीर-विज्ञान (Physiology) का विषय है।

संवेदनों का मनस् की क्रिया द्वारा संगठित और व्यवस्थित होकर सार्थक और सविशेष बन जाना मनोविज्ञानीय अवस्था है। भौतिक और शारीरिक अवस्था तक सीमित क्रिया ही संवेदन है किन्तु मनोविज्ञान का प्रमुख विषय मनोविज्ञानीय अवस्था का अध्ययन करना है। इस अध्ययन में भौतिक और शारीरिक अवस्थाओं का महत्व वहीं तक है जहाँ तक वे मनोविज्ञानीय अवस्था का आधार हैं। मनोविज्ञान में संवेदन को एक मनोभौतिक (psycho-physical) क्रिया माना जाता है। संवेदन पदार्थों की चेतन प्रतिलिपि होते हैं। व्यावहारिकता की दृष्टि से संवेदन और उत्तेजना में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध मान लेना अनुचित नहीं है।

अवधान और विन्यास

परिवेश में असंख्य उत्तेजनाएँ होती है और वे प्रतिक्षण प्राणी के किसी न किसी ग्राहक को प्रभावित करती रहती हैं। किंतु प्राणी के लिए उन सब उत्तेजनाओं की ओर एक साथ ध्यान दे सकना नामुमकिन है। वह एक ही समय अनेक उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रियाएँ नहीं कर पाता। उसके ग्राहक आँख, कान आदि परवेश की उत्तेजनाओं को चुनते हैं। आँख सभी पदार्थों को एक साथ नहीं देखती ; कान सभी आवाजों को एक साथ नहीं सुनता। देखने और सुनने आदि की शारीरिक सीमाएँ होती हैं जिनके

बाहर ग्राहक परिवेश की उत्तेजनाओं को ग्रहण नहीं कर सकते। इन शारीरिक सीमाओं का अध्ययन ग्राहकों के वर्णन के प्रसंग में विस्तार से किया जायगा।

किन्तु उत्तेजनाओं का चुनाव ग्राहकों की शारीरिक सीमा तक ही नहीं रहता। शारीरिक सीमा के अन्दर आने वाली उत्तेजनाओं में भी चुनाव होता है और वह चुनाव मानसिक होता है। मनस् प्राणी के ग्राहकों को प्रभावित करने वाली असंख्य उत्तेजनाओं में से उसकी किसी तत्कालिक आवश्यकता को पूरा करने वाली उत्तेजना को ही चुनता है। जब आप किसी रोचक कहानी को पढ़ने में लगे होते हैं तो आपको सड़क पर होने वाला कोलाहल सुनाई नहीं देता। मानसिक चुनाव में प्राणी की शारीरिक क्रियाएँ इस ढंग से होती हैं कि वह किसी समय एक ही उत्तेजना के प्रति आकृष्ट हो सकता है। मानसिक चुनाव के परिणाम स्वरूप शारीरिक क्रियाओं की इस मर्यादा को अवधान (attention) कहते हैं।

अवधान में न्यूरोनीय शक्ति के प्रवाह की व्यवस्था इस प्रकार हो जाती है कि वह निर्विघ्न रूप से सामान्य-द्वारक बन जाता है। शक्ति की ऐसी व्यवस्था से प्रतिक्रिया का केवल एक प्रमुख द्वार ही क्रियाशील रह पाता है जिससे अन्य कम तेज और विरोधी उत्तेजनाएँ अपने-अपने ग्राहकों के न्यूरोनीय सामीप्यों (synapse) पर अवरुद्ध हो जाती हैं और शरीर पर प्रभाव नहीं डाल पाती। अवधान (attention) से परिवेश प्राणी के लिए केन्द्रीय और परिणामिक बन जाता है।

अवधान की विशेषताएँ

अवधान से शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं में कुछ विशेषताएँ प्रकट होती हैं। शक्ति के सामान्य-द्वारक होने पर शरीर और ग्राहकों में उचित नियमन (adjustment) हो जाता है जिससे उत्तेजना को ग्रहण करने में सुविधा होती है। अवधान में शारीरिक नियमन देखने के लिए आप

बिल्ली को चूहे की ताक में और बगुले को एक टाँग पर खड़े मछली की टोह में देखिए। कला-प्रदर्शिनी में आपकी आँख (ग्राहक) में ऐसा नियमन हो जाता है जिससे चित्रों को देखते समय आपका ध्यान और कहीं नहीं भटकता। शारीरिक नियमन से मांसपेशियों में तनाव उत्पन्न होता है जिससे उत्तेजना मिलने पर प्रतिक्रिया में देर नहीं लगती। यदि आप कोई ज़रूरी काम कर रहे हों और उस समय आपके काम में बाधा डाली जाय तो आप और भी तन्मय हो जाते हैं क्योंकि बाधा की उपेक्षा करने के लिए मांस-पेशियों का तनाव और बढ़ जाता है।

अवधान से मनस् में सजगता आती है जिससे उत्तेजना की स्पष्टता बढ़ जाती है। आप कमरे में घड़ी की टिक-टिक स्पष्ट रूप से नहीं सुन पाते किंतु घड़ी की ओर आकृष्ट होने पर उसकी टिक-टिक बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। घड़ी की टिक-टिक की तीव्रता में कोई भौतिक परिवर्तन न होने पर भी उसका आपके लिए व्यक्तिगत रूप से अधिक स्पष्ट बन जाना अवधान-जन्य व्यापार है।

अवधान के समय मनस् का क्रियाशील होना अभी तक विवादग्रस्त है। कुछ लोग अवधान में केवल ग्राहकों और मांसपेशियों के प्रभाव को प्रधानता देते हैं और अवधान (attention) पर ग्राहकों और मांसपेशियों से अलग मनस् का नियन्त्रण नहीं मानते। इस विषय पर अनेक प्रयोग किए गए हैं किंतु उनसे यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि अवधान पर ग्राहकों और मांस-पेशियों से स्वतंत्र मनस् का अपना कोई नियन्त्रण होता है। हो सकता है कि कोई व्यक्ति आपकी बात को बड़ी एकाग्रता से सुन रहा हो किंतु उसका ध्यान और कहीं हो और पूछे जाने पर वह आपकी बातों का सार न बता सके। इसका कारण मनस् का नियन्त्रण नहीं कहा जा सकता। इसका कारण उस व्यक्ति की प्रवृत्तियों की गत्यात्मक (dynamic) दिशा हो सकती है। व्यक्ति की प्रवृत्तियों की गत्यात्मक दिशा ग्राहक या शरीर का उचित नियमन

होने पर भी न्यूरोनीय प्रेरणा के प्रवाह की उस व्यवस्था में बाधा डाल सकती है जो अवधान के लिए आवश्यक होती है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि अवधान व्यक्ति की गत्यात्मक प्रवृत्तियों की क्रियात्मक दिशा पर निर्भर होता है। गत्यात्मक प्रवृत्ति के क्रियात्मक हुए बिना जिस स्थिति पर ध्यान दिया जा रहा है वह ग्राहकों के उचित नियमन होने पर भी स्पष्ट नहीं बन सकती। विचार सागर में गोते लगाते व्यक्ति की आँख पर किसी वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिम्ब पड़ सकता है किंतु वह फिर भी उस वस्तु को स्पष्टतया देख नहीं पाता।

अवधान के निर्धारक

शरीर रचना के प्रसंग में देखा जा चुका है कि हमारे न्यूरोनों में शक्ति होती है और उसी शक्ति के कारण हमारा शरीर उत्तेजनाओं को ग्रहण कर प्रतिक्रिया करने में समर्थ होता है। अवधान के समय वह शक्ति उन्मुक्त होकर सामान्य-द्वारक हो जाती है। यदि कोई उत्तेजना पर्याप्त शक्ति उन्मुक्त न कर सके तो हम उस उत्तेजना के प्रति एकाग्र नहीं हो सकते।

उत्तेजना यदि शरीर के निश्चित क्षेत्र पर प्रभाव डाले तो हम उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। एकाग्रता किसी बोधांग (sense organ) के प्रभावित होने वाले क्षेत्र पर निर्भर होती है। यदि हमारी पीठ पर चींटी रेंग रही हो तो हम उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना ही उसे हाथ में झाड़ देते हैं किंतु यदि चींटी की जगह छिपकली रेंग जाय तो हम फौरन उसकी ओर आकृष्ट हो जायँगे क्योंकि उसका रेंगना शरीर के काफी बड़े भाग को प्रभावित करेगा।

विरोध देखने पर भी हम तत्काल आकृष्ट हो जाते हैं। विरोध कई बातों से उत्पन्न हो सकता है। तीव्रता विरोध उत्पन्न करती है। मेले में आतिशबाज़ी होने पर लोग फौरन आकृष्ट हो जाते हैं क्योंकि आतिशबाज़ी का प्रकाश अपनी तीव्रता से परिवेश में विरोध पैदा कर देता है। परिवर्तन या गति-

शीलता भी विरोध लाती है। मौसम का एकदम बदलना या सड़क पर किसी का अचानक दौड़ने लगना हमें आकृष्ट कर लेता है। विरोध नवीनता से भी होता है इसीलिए मोटरकार बनाने वाले हर साल नए-नए नमूने की मोटरें बनाते हैं। विचित्रता भी विरोध लाती है; बहुरूपिए अपनी विचित्रता से ही लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। विरोध विषमता से भी आता है; लम्बे आदमी के साथ नाटा आदमी, मोटे के साथ पतला आदमी लोगों का ध्यान खींच लेते हैं।

अवधान बहुत सी व्यक्तिगत बातों पर भी निर्भर होता है। भूखा आदमी खाने की हल्की से हल्की गंध पा लेता है। लहराते हुए काले बादलों में किसान अपना भविष्य देखता है, कवि सौंदर्य देखता है, वैज्ञानिक कार्य-कारण नियम देखता है, प्रोषितपतिका विरह की रात देखती है और पपीहा स्वाती का बूँद देखता है। केटली के ढक्कन को बच्चा खेलने के लिए लेता है, गृहणी चाय तैयार करने के लिए लेती है और जेम्स वाट ने भाप का आविष्कार करने के लिए लिया था।

अवधान के प्रकार

अनुभव में हमें अवधान (attention) के तीन प्रकार मिलते हैं : अनायास (involuntary), सायास (voluntary) और स्वाभाविक (habitual)। यदि हम किसी उत्तेजना को ग्रहण करने के लिए सचेष्ट न हों किंतु फिर भी वह हमारा ध्यान खींच ले तो यह अनायास अवधान होगा। आकस्मिक धक्का, ज़ोर का धमाका, अप्रत्याशित घटना का हो जाना ध्यान खींच लेते हैं यद्यपि हम उनकी ओर ध्यान देने का प्रयत्न नहीं करते।

चेष्टा के साथ ध्यान देने को सायास अवधान कहते हैं। अपने हित की बात में अपनी गत्यात्मक प्रवृत्तियों के प्रतिकूल भी सायास ध्यान देना पड़ता है। अखबार न देखने वाला व्यक्ति भी नौकरी के विज्ञापन के लिए

अखबार देखता है। काहिल आदमी को अपना पेट भरने के लिए हाथ पैर हिलाना ही पड़ता है।

कुछ उत्तेजनाएँ ऐसी होती हैं जिनकी ओर हर व्यक्ति का ध्यान स्वभावतः चला जाता है। स्वाभाविक अवधान जन्मजात होता है किंतु शिक्षा आदि से उसमें एक सीमा तक परिमार्जन कर सकना संभव है। मेनका ने आखिर विश्वामित्र का तप भंग कर ही डाला था। सुन्दर स्त्री के प्रति पुरुष का आकृष्ट होना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि स्त्री के लिए स्वस्थ पुरुष के प्रति। मित्रों की हर बात सच्ची और अच्छी लगना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि शत्रु की बातों का झूठी और बुरी लगना। स्वाभाविक अवधान व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं और गत्यात्मक प्रवृत्तियों का परिणाम होता है।

अवधान की चंचलता

ध्यान एक ही उत्तेजना पर देर तक स्थिर नहीं रहता। यह आपको किसी क्षीण उत्तेजना के अनुभव से स्पष्ट हो जायगा। आकाश में किसी कम टिमटिमाते तारे को ध्यान से देखिए तो आपको लगेगा कि बीच-बीच में वह बिल्कुल दिखाई नहीं देता। किसी घड़ी को इतना दूर रखिए जहाँ से उसकी टिक-टिक केवल सुनाई भर पड़े। आप अनुभव करेंगे कि बीच-बीच में घड़ी की टिक-टिक सुनाई नहीं देती। अवधान की इस चंचलता का कारण क्या ग्राहकों (receptors) के नियमन में परिवर्तन होना है या मनस् की अस्थिरता का परिणाम है?

क्षीण उत्तेजना को ग्रहण करते समय प्राणी का सारा शरीर (ग्राहकों से लेकर मनस् तक) पूरी तरह से क्रियाशील रहता है। अवधान की चंचलता का कारण बोधवाहक न्यूरोनों में नहीं हो सकता क्योंकि बोधवाहक न्यूरोनों की क्रिया में नियमित स्थिरता होती है। अवधान की चंचलता का कारण या तो ग्राहक में हो सकता है या मनस् में या ग्राहक और मनस् दोनों में।

जो लोग अवधान की चंचलता का कारण ग्राहक में मानते हैं वे, उदाहरण के लिए, दृष्टि की चंचलता को कुछ मांसपेशियों का परिणाम बताते हैं। वे मांसपेशियाँ कुछ देर के लिए पदार्थ की स्पष्टता को घटा देती हैं। देखते रहने में आँख की सीलियरी (ciliary) मांसपेशी थक जाती है जिससे दृष्टिगत पदार्थ स्पष्ट नहीं रहता। जब उस मांसपेशी की थकान दूर हो जाती है तो पदार्थ फिर स्पष्ट हो जाता है। अवधान की चंचलता का कारण सीलियरी मांसपेशी की थकान और थकान दूर होने के बीच का समय होता है।

किन्तु प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि दृष्टि-चंचलता में सीलियरी मांसपेशी का कोई हाथ नहीं होता। सीलियरी मांसपेशी को कृत्रिम साधनों से निष्क्रिय कर देने पर भी दृष्टि चंचल बनी रहती है। इस और इसी तरह के अन्य प्रयोगों के आधार पर यह साबित सा हो चुका है कि अवधान की चंचलता की व्याख्या ग्राहकों में ढूँढ़ना ठीक नहीं है।

जो लोग अवधान की चंचलता का कारण मनस् में मानते हैं उनका कहना है कि चंचलता कोर्टेक्सीय कोषों (cortical cells) की थकान के कारण होती है। किन्तु चंचलता के नियमित होने का कारण क्या है? अवधान हर पाँच या छह सेकन्ड के बाद नियमित ढंग से चंचल होता है। इसका कारण शरीर में रक्त संचार की गति और साँस लेने की क्रिया के आरोह-अवरोह को समझा जा सकता है।

इस प्रसंग में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि अवधान क्रिया चंचल और अस्थिर होती है तो हम देर तक कोई काम कैसे कर लेते हैं? इसका कारण हमारी शारीरिक क्रिया-शक्ति का एक विशेष प्रबन्ध है जो प्रतिक्रिया शुरू होने के समय उस प्रतिक्रिया से सम्बन्धित मांसपेशियों में शक्ति सम्भरण को इस प्रकार नियमित करता है जिससे वह प्रतिक्रिया देर तक स्थिर रह सके। जब आप पढ़ने बैठते हैं तो आपकी शारीरिक क्रियाओं

में ऐसा प्रबन्ध हो जाता है जिससे आँख की मांसपेशियों को निरन्तर शक्ति मिलती रहती है और आप देर तक पढ़ सकने में समर्थ होते हैं।

अवधान को स्थिर करने का एकमात्र उपाय अपनी गत्यात्मक प्रवृत्तियों को सुदृढ़ बनाना है। निरवधान (inattention) नाम की कोई चीज़ नहीं होती। गत्यात्मक प्रवृत्तियों की दृढ़ता के अभाव में व्यक्ति अन्यमनस्क हो जाता है। उसे अपना मन जिस ओर लगाना चाहिए उसकी गत्यात्मक प्रवृत्तियों की परिक्षीणता उसे उस ओर नहीं लगने देती। उसका ध्यान सदा बँटा रहता है और इधर-उधर भटका करता है। ऐसा व्यक्ति जीवन में सफल नहीं हो सकता।

विन्यास

परिवेश की विभिन्नता में भी प्राणी का व्यवहार सुसंयत रहता है और अधिकतर उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार का होना चाहिए। इसका कारण यह है कि प्राणी निश्चित उत्तेजनाओं के प्रति निश्चित प्रतिक्रियाएँ करने को पहले से ही तैयार सा रहता है। इस तैयारी को विन्यास (set) कहा ज है। अवधान द्वारा शक्ति की एकाग्रता से प्राणी में तत्क्षण कार्य-शलता आ जाती है; विन्यास से कार्य कुशलता दीर्घकालीन बनती है।

कुश्ती लड़ने के पहले दस बारह बैठकें लगाकर हम अपना शारीरिक विन्यास कर अखाड़े में उतरने को प्रस्तुत हो जाते हैं; कोई बात याद करते या कठिन समस्या का हल निकालते समय माथे पर बल डालकर मानसिक विन्यास करते हैं। विभिन्न स्थितियों में किसी स्थिति विशेष के प्रति आवश्यक विन्यास कर लेते हैं। किसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उस लक्ष्य के प्रति विन्यास कर लेते हैं। परिवेश का कुशलतापूर्वक सामना करने के लिए विन्यास का बड़ा महत्व है। जब द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की धनुर्विद्या की परीक्षा ली तो उसमें अर्जुन ही उत्तीर्ण हुआ। अर्जुन की सफलता का रहस्य उसके विन्यास में था। उसने अवधान द्वारा स्थिति और लक्ष्य के प्रति ऐसा विन्यास

कर लिया था कि उसे चिड़िया के अतिरिक्त परिवेश की अन्य उत्तेजनाओं (पेड़, पत्ते, पास में खड़े लोगों आदि) का ध्यान ही नहीं रह गया। बाद में अवधान द्वारा उसकी शारीरिक शक्ति का प्रवाह इतना सामान्य-द्वारक हो गया कि उसे चिड़िया की आँख के अलावा और किसी बात की सुध ही न रही। बस उसने तीर चलाकर लक्ष्य को बेध दिया। विन्यास लक्ष्य बेधने की पहली सीढ़ी है। अवधान और विन्यास द्वारा अर्जुन की तरह आप भी अपने लक्ष्य पर निशाना लगाकर सफल हो सकते हैं।

प्रतिक्रिया-समय

विन्यास से प्रतिक्रिया का समय घट जाता है। उत्तेजना मिलने और प्रतिक्रिया होने के बीच में जो समय लगता है उसे प्रतिक्रिया-समय(reaction time) कहते हैं। कोई व्यक्ति किसी उत्तेजना के प्रति जल्दी प्रतिक्रिया करता है और कोई देर से। जिस व्यक्ति का प्रतिक्रिया-समय अपेक्षाकृत जितना कम होता है उसकी कार्य कुशलता उतनी ही ज्यादा होती है।

प्रतिक्रिया-समय (reaction time) के व्यक्तिगत अन्तर का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किए हैं। प्रयोगों से यह पता चला है कि प्रतिक्रिया का समय अवधान की दिशानुसार बदलता रहता है। व्यक्ति का ध्यान यदि उत्तेजना पर ज्यादा लगा हो और प्रतिक्रिया पर कम तो प्रतिक्रिया-समय बढ़ जाता है; यदि प्रतिक्रिया पर ज्यादा लगा हो तो प्रतिक्रिया समय घट जाता है। सौ गज की दौड़ में भाग लेने वालों में जो पिस्तौल की आवाज़ की ओर अधिक ध्यान रखते हैं उनका प्रारम्भ बिगड़ जाता है; जो दौड़ने पर अधिक ध्यान रखते हैं उनका प्रारम्भ अच्छा होता है।

प्रतिक्रिया-समय ग्राहकों पर भी निर्भर होता है। ठंढ और स्पर्श का प्रतिक्रिया-समय बहुत कम होता है; प्रकाश का अधिक होता है। स्वाद और गन्ध के ग्राहकों का प्रतिक्रिया-समय सबसे ज्यादा होता है। प्रतिक्रिया-समय

आयु के अनुसार बदलता रहता है। बच्चों और बूढ़ों का प्रतिक्रिया-समय ज्यादा होता है क्योंकि उनमें अवधान (attention) की कमी होती है।

संज्ञा

अवधान से हम जानने के लिए तैयार हो जाते हैं लेकिन जानना यहीं तक सीमित नहीं होता। उत्तेजना मिलने पर हजारों ग्राहक क्रिया करते हैं और हर ग्राहक एक दूसरे से स्वतंत्र रहकर अपनी प्रेरणाओं से मनस् के अपने क्षेत्र को प्रभावित करता है। ये अनेक प्रेरणाएँ मनस् में जाकर इकाई कैसे बन जाती हैं? किसी पदार्थ को देखते समय हमें उसके अवयवों (parts) रंग, आकार आदि का ही संवेदन होता है। लाल रंग, गोल सी शक्ल, एक विशेष आकार आदि के संवेदनों के आधार पर हम किसी वस्तु को नारंगी क्यों कहते हैं? संवेदन तो हमें नारंगी के अवयवों (parts) का ही होता है, 'नारंगी' का नहीं। शक्ति की वह कौन सी व्यवस्था है जिससे हम कुछ विभिन्न संवेदनों के समूह को एक इकाई में संगठित कर उन्हें 'नारंगी' कहते हैं।

शक्ति की उस व्यवस्था को जिससे विभिन्न संवेदन एक इकाई में संगठित होकर अवयवी (whole) बन जाते हैं संज्ञा (perception) कहते हैं। रंग, आकार आदि नारंगी के विशेष भाग होते हैं और यदि जानना नारंगी के इन्हीं विशेष भागों का संवेदन करने तक ही सीमित होता तो हमें नारंगी की संज्ञा (perception) कदापि नहीं हो सकती। नारंगी अपने अवयवों का जोड़ न होकर एक अलग सत्ता है जिसे संज्ञा द्वारा ही जाना जा सकता है। संज्ञा विभिन्न संवेदनों का एक ऐसा संगठन है जो संवेदनों के योग से अनन्वय (unique) होता है। संज्ञा द्वारा हम अवयवों (parts) को न जानकर अवयवी (whole) को जानते हैं।

संज्ञा (perception) एक मानसिक क्रिया है जिसके द्वारा विभिन्न संवेदन संगठित होकर अवयवी (whole) बन जाते हैं। संवेदन में

केवल ग्राहक (receptors) ही क्रियाशील होते हैं, मनस् नहीं। संज्ञा के समय मनस् सक्रिय होता है जिससे उसकी क्रियाशीलता द्वारा निर्विशेष संवेदन संगठित और व्यवस्थित होकर सविशेष बन जाते हैं। संज्ञा सविशेष संवेदन है। यदि मनुष्य में संज्ञाशक्ति न होती तो उसका ज्ञान अत्यन्त सीमित होता और उसकी अपने परिवेश (environment) से समायोजन करने की क्षमता और कार्य कुशलता बड़े निचले स्तर की होती। मनुष्य अन्य प्राणियों से इसीलिए श्रेष्ठ है कि वह अपनी संज्ञा-शक्ति द्वारा संवेदनों को नाम, रूप, गुण, भेद से सविशेष बनाकर ज्ञान प्राप्त करता है। संवेदन मनस् की क्रियाशीलता से संज्ञ और सार्थ बनते हैं।

संज्ञा द्वारा संवेदन एक ओर तो संगठित और व्यवस्थित होते हैं और दूसरी ओर सार्थक बनते हैं। पहले संवेदनों के संगठन के आधारों पर विचार करना चाहिए।

संगठन के नियम

(१) **समीपता** (proximity)—जिन विभिन्न उत्तेजनाओं में ज्यादा समीपता होती है वे परस्पर संगठित हो जाती हैं। चित्र १२ को देखिए। आपको सात आड़ी रेखाएँ दिखाई देंगी, पाँच पड़ी रेखाएँ नहीं क्योंकि गोलों में पड़ी दिशा की अपेक्षा आड़ी दिशा में अधिक समीपता है; इसलिए वे अपनी समीपता के कारण संगठित होकर सात आड़ी रेखाओं की भाँति दिखाई देते हैं।
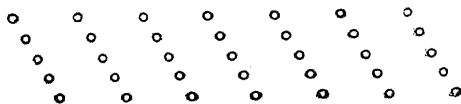
चित्र १२

(२) **सदृशता** (similarity)—वे उत्तेजनाएँ जो एक दूसरे से कुछ

सादृश्य रखती हैं संगठित हो जाती हैं। सदृशता उत्तेजनाओं के गुणों, तीव्रता और आकार या रूप पर निर्भर होती है। यह चित्र १३ से स्पष्ट है। अ और ब दोनों चित्रों के बिन्दुओं और गोलों की समीपता में कोई अन्तर नहीं है किन्तु फिर भी गोले अपनी तीव्रता और आकार के कारण अ चित्र में पड़ी रेखाओं में और ब चित्र में खड़ी रेखाओं में संगठित हो जाते हैं।
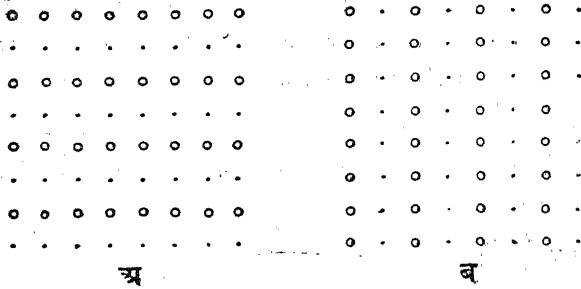
चित्र १३

(३) **खंड और पूर्ण का सम्बन्ध**—उत्तेजना के खण्डों की संज्ञा की सार्थकता पूर्ण (whole) को देखने के ढंग से प्रभावित होती है। हम जो कुछ देखते हैं वह हमारे परिवेश की स्थिति पर निर्भर होता है। चित्र १४ को देखिए। इस चित्र के ऊपर और नीचे के सिरे और बीच का वर्ग आपको पास भी लग सकता है और दूर भी। चित्र की रेखाएँ वही हैं किन्तु पूर्ण को देखने का ढंग उनकी सार्थकता को बदल देता है।

(४) **आकृति और भूमि**—पूर्ण को देखने का सङ्गठन प्रायः आकृति (figure) और भूमि (ground) का रूप ले लेता है। आकृति बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ती है और शेष दृश्यक्षेत्र भूमि बन जाता है। आकृति भूमि से उभरी हुई सी और ज्यादा पास मालूम होती है। आकृति और भूमि की संज्ञा की व्याख्या अवधान की चंचलता के आधार पर करना दोष-

पूर्ण है। अवधान की चंचलता से आकृति में भूमि या भूमि में आकृति की संज्ञा नहीं होती। यों तो हमारा ध्यान पहले आकृति की ओर ही जाता है किन्तु हो सकता है कि ध्यान आकृति से पहले भूमि पर ही चला जाय चाहे
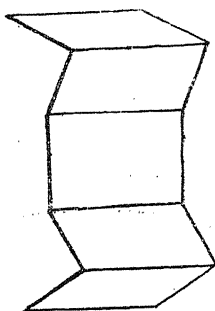
चित्र १४

आकृति भूमि से उभरे या न उभरे। सिनेमाघर के अन्दर होने वाले शोर और किसी व्यक्ति का ऊँचे स्वर से बातचीत करने की उत्तेजनाओं में क्रमशः भूमि और आकृति का सम्बन्ध होता है क्योंकि ऊँचे स्वर से बात करना (आकृति) सिनेमाघर के शोर (भूमि) के ऊपर उभरता सुनाई देता है। हो सकता है कि हम सिनेमाघर में घुसने पर केवल शोर ही सुनें और किसी व्यक्ति की ऊँचे स्वर में की जाने वाली बातचीत न सुन सकें।

(५) **विन्यास** (set)—संज्ञा पर मानसिक विन्यास का भारी प्रभाव पड़ता है। जब मनस् में किसी उत्तेजना से न्यूरोनीय प्रेरणाओं (nervous impulses) के प्रवाह की जटिल बाढ़ सी आ जाती है तो उसका सङ्गठन पूर्व अनुभव के आधार पर बन चुके विन्यास के अनुसार होता है। दो व्यक्ति एक ही उत्तेजना के प्रति अलग अलग प्रतिक्रियाएँ कर सकते हैं क्योंकि वे अपने विन्यास के आधार पर उसी उत्तेजना की संज्ञा विभिन्न ढंग से

करते हैं। किसी व्यक्ति की प्रतिक्रिया को बदलने का एक उपाय उसके परिवेश की संज्ञा करने के ढंगों को बदल देना है। चित्र १५ को देखिए। पूर्व अनुभव के आधार पर बने विन्यास (set) के कारण हो सकता है कि आप उसे टेलीफोन या आइसक्रीम की एक खूबसूरत प्याली समझ बैठें। ठीक है; किन्तु चित्र को ज़रा ग़ौर से देखने पर आपके मनस् की न्यूरोनीय प्रेरणाओं का प्रवाह इस तरह भी सङ्गठित हो सकता है कि आपको चित्र में आमने सामने मुँह किए दो जानवर दिखाई पड़ने लगें। "जिसकी रही भावना जैसी, हरि मूरत देखी तिन तैसी।"
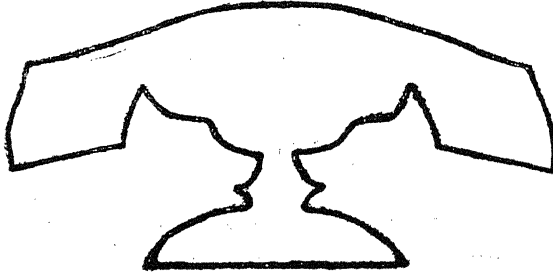
चित्र १५

संज्ञा संगठन मात्र करने तक ही सीमित नहीं होती। हमें कुछ ऐसी धारणाओं की संज्ञा (perception) भी होती है जिनका संवेदन कभी नहीं होता। ये धारणाएँ काल (time), प्रसर (space), गति, परिमाण, भार आदि हैं। मानवी व्यवहार में इन धारणाओं का बहुत बड़ा महत्व है। ये धारणाएँ संवेदनों के संगठन का परिणाम नहीं होतीं। अनुभव में आपने घड़ी देखी होगी, भारी पत्थर देखा होगा, बीस नाशपातीं देखी होंगी लेकिन काल, भार और परिमाण नहीं देखा होगा। इन धारणाओं की संज्ञा विभिन्न ग्राहकों (receptors) के पारस्परिक सहयोग और क्रिया से होती है। उन पर ग्राहकों के अध्ययन के बाद विस्तार से विचार किया जायगा।

संज्ञा और सार्थकता

मनस् संवेदनों का केवल सङ्गठन ही नहीं करता, वह सङ्गठित संवेदनों को सार्थ (meaningful) भी बनाता है। सङ्गठन पहले होता है और सामान्यतः सार्थकता पर निर्भर नहीं होता। हम अर्थ न जानते हुए भी अनेक उत्तेजनाओं का सङ्गठन करते रहते हैं। प्राणी में थोड़ा बहुत संगठन कर सकने की शक्ति जन्मजात होती है, शेष उसे सीखनी पड़ती है। यद्यपि सङ्गठन सार्थकता से पहले होता है किन्तु कभी-कभी सार्थकता सङ्गठन करने में सहायक होती है।

उत्तेजना तभी सार्थक बनती है जब वह अपने से अलग किसी चीज का निर्देश करे। उत्तेजना अपने प्रसङ्ग के अनुसार सार्थक बनती है। ज़मीन पर लाल धब्बे को देखकर आप उसे खून, लाल स्याही या कत्थे का दाग समझ सकते हैं। किन्तु इन तीनों में कौन सी बात सही है यह पूरी स्थिति के प्रसङ्ग में ही जाना जा सकता है। यदि आप वहाँ किसी घायल पक्षी को देखें तो आप धब्बे को ख़ून ही समझेंगे। यदि धब्बे के पास स्याही की शीशी पड़ी हो तो आप धब्बे को स्याही का दाग समझ बैठेंगे। यदि धब्बे के पास पानदान रक्खा हो तो आप धब्बे को कत्थे का दाग समझ लेंगे। धब्बे को सार्थ बनाने के लिये तत्कालिक संवेदनों से परे जाना पड़ता है और अर्थनिश्चय अनुभव के प्रसङ्ग के अनुसार होता है।

बहुत सी उत्तेजनाएँ पूर्व अनुभव के आधार पर सार्थ बनती हैं। किसी उत्तेजना का अर्थ इस बात पर बहुत निर्भर करता है कि उसने हमें पहले किस प्रकार उत्तेजित किया था और हमने उसके प्रति क्या प्रतिक्रिया की थी। उत्तेजनाओं का अर्थ पूर्व अनुभव के आधार पर किया जाता है; उनका नया अर्थ सीखना पड़ता है। बच्चा पहले हर चीज को मुँह में रख लेता है किन्तु धीरे धीरे सीख जाता है कि कौन चीज खाने की

है और कौन नहीं। उत्तेजना का अर्थ बदलने पर उसके प्रति हमारी प्रतिक्रिया भी बदल जाती है। सड़क पर कुत्ते के सदृश पशु को देख कर आप निश्चिन्त रहेंगे किन्तु यह जानने पर कि वह कुत्ता न होकर भेड़िया है आपकी प्रतिक्रिया तत्काल बदल जायगी और आप सिर पर पैर रखकर भाग खड़े होंगे।

संज्ञादोष

संज्ञादोष (error of perception) होना दैनिक अनुभव की मामूली सी बात है। यदि दो आदमियों की लम्बाई में दो तीन इंच का अंतर हो तो वह आसानी से पता चल जाता है, किंतु यदि आधा इंच हो तो मुश्किल पड़ती है। अन्तर ज़्यादा होने पर भेद करना आसान होता है, कम होने पर कठिन। दो लम्बी चीजों की तुलना करने या दो वस्तुओं के बोझ का अनुभव करने में, यदि उनका अन्तर बहुत कम हो, जरूर गलती होती है। यदि अनेक व्यक्तियों को ५० मिलीमीटर लम्बी एक दी हुई रेखा के नीचे उसी के बराबर २०० रेखाएँ खींचने को कहा जाय तो उनकी खींची हुई उन २०० रेखाओं में कुछ ५० मिलीमीटर से जरा बड़ी होंगी और कुछ ज़रा छोटी। किंतु उनकी विभिन्नता ४५-५५ मिलीमीटर के भीतर ही होगी। यह उन लोगों का परिवर्तनीय संज्ञादोष (variable error of perception) होगा। यदि हम उनमें से किसी व्यक्ति की सारी रेखाओं की नाप के जोड़ को २०० से भाग दें तो हमें उस व्यक्ति के संज्ञादोष का औसत पता चल जायगा। वह औसत ५० मिलीमीटर से ज़रा कम या ज़रा ज्यादा हो सकता है (मान लीजिये ४६ या ५१ मिलीमीटर)। इस औसत से हमें उस व्यक्ति का सतत् संज्ञादोष (constant error) पता चल जायगा। सतत् संज्ञादोष अभ्यास द्वारा सुधारा या कम किया जा सकता है। परिवर्तनीय संज्ञादोष हमारी शरीर रचना के परिणाम स्वरूप होता है और उसे एक सीमा के बाहर नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

वेबर का नियम

उपर्युक्त प्रसंग में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि दी हुई रेखा की लम्बाई ५० मिलीमीटर की जगह १०० मिलीमीटर हो तो क्या परिवर्तनीय संज्ञादोष (variable error) ४५-५५ मिलीमीटर के भीतर ही होगा ? नहीं। परिवर्तनीय संज्ञादोष की सीमा उत्तेजना के अनुपात के साथ साथ बढ़ती है। कम बोझ के पत्थर को उठाने में उसके अनुमानित भार का परिवर्तनीय संज्ञादोष कम होगा, ज्यादा बोझ के पत्थर में ज्यादा होगा। इस सम्बन्ध में जर्मनी के शरीरविज्ञान-वेत्ता हाइनरिख़ वेबर (१७६५-१८७८) ने एक नियम बनाया था। वेबर के नियम के अनुसार संज्ञादोष का परिवर्तन उत्तेजना के एक निश्चित अनुपात से होता है। यदि ५० मिलीमीटर लम्बी रेखा के परिवर्तनीय संज्ञादोष (variable error) की सीमा ४५-५५ (अर्थात् ५) मिलीमीटर है तो १०० मिलीमीटर की रेखा के परिवर्तनीय संज्ञादोष की सीमा ९०-११० (अर्थात् १०) मिलीमीटर होगी। इसी प्रकार १५० की ६ मिलीमीटर, २०० की १२ मिलीमीटर......होती चली जायगी। उत्तेजना के बढ़ने पर परिवर्तनीय संज्ञादोष का अनुपात भी निश्चित रूप से बढ़ता जायगा। वेबर का यह नियम बहुत क्षीण और बहुत तीव्र उत्तेजनाओं पर लागू नहीं होता।

१० और ११ तोले का भेद उतनी ही आसानी से जान लिया जाता है जितनी आसानी से १० और ११ छटाँक का। इस भेद का अनुपात दोनों जगह १/१० है। २० और २१ कैंडिल पावर बल्ब के प्रकाश के भेद को २०० और २१० कैंडिल पावर के बल्ब के भेद की भाँति ही जानना आसान होता है। यहाँ दोनों जगह भेद का अनुपात १/२० है। यदि बोझ और प्रकाश में क्रमशः १/१० और १/२० का अनुपात न हो तो हम उनके भेद को नहीं जान सकते। वेबर के नियम के अनुसार जान सकने वाला

न्यूनतम भेद दो उत्तेजनाओं की निरपेक्ष मात्रा का न होकर उनके निश्चित अनुपात (ratio) का होता है[१]। १० और ११ तोले और १० और ११ छटाँक में हम १० और ११ तोले और छटाँक की निरपेक्ष मात्रा नहीं जानते वरन उन दोनों की मात्राओं के अनुपात के भेद १/१० भाग को जानते हैं। जान सकने वाला निश्चित अनुपात का यह न्यूनतम भेद उत्तेजनाओं के प्रकार पर निर्भर होता है।

वेबर के नियम का व्यावहारिक महत्व बहुत है। यदि हम भेद करते समय उत्तेजनाओं की निरपेक्ष मात्रा ही जानते और उनके निश्चित अनुपात के भेद को न जान सकते तो हमें वाह्य जगत का बड़ा विचित्र अनुभव होता। हमें जो चीज पास में तीन हाथ लम्बी दिखाई पड़ती वह दूर पर भी उतनी ही लम्बी दिखाई पड़ती और हम यह जान सकने में असमर्थ रहते कि वह चीज हमारे कितने पास या हमसे कितनी दूर है। इसका असर हमारी कार्य कुशलता और शारीरिक संतुलन पर भी पड़ता। व्यावहारिक महत्व के अतिरिक्त वेबर-नियम अनुमान और भेद कर सकने की मानवी सीमाओं को भी बताता है।

भ्रम

उत्तेजना का यथार्थ रूप न देख सकना ही भ्रम है। भ्रम शारीरिक और मनोविज्ञानीय कारणों से होते हैं। शराबी को अपने चारों ओर की चीज़ें घूमती नज़र आती हैं, तिमिर रोगी को जाल और बाल दिखाई देते हैं, विक्षिप्त और पागल आदमी की संज्ञात्मक प्रतिक्रिया स्वस्थ और सामान्य

---

[१] "in observando discrimine rerum inter se comparatarum non differentiam rerum, sed rationem differentiae ad magnitudinem rerum inter se comparatarum percipimus."

आदमी से अलग होती है। भ्रम वातावरण की अवस्था के कारण भी हो सकता है। कुहरे, अँधेरे आदि में उत्तेजनाओं का यथार्थ रूप जान सकना कठिन होता है।

मनुष्य की संवेदनशीलता, संवेदनों को संगठित करने की शक्ति, संवेदनों को पर्याप्त रूप से सार्थक बना पाने की शक्ति सीमित होती है। कुछ भ्रम मनुष्य की इन सीमाओं के परिणाम स्वरूप भी होते हैं। ऐसे भ्रम सामान्य होते हैं और कुछ नियमों के अनुसार होते हैं। शायद वह दिन आए जब मनुष्य की ये सीमाएँ टूट सकें और वह भ्रम से मुक्त हो सके। इतिहास के लिए तो वह दिन अवश्य गौरवपूर्ण होगा किन्तु मनोविज्ञान के लेखकों और प्रकाशकों के लिए वह एक कयामत होगी क्योंकि उस दिन मनोविज्ञान के वे सारे तथ्य असत्य हो जायँगे जिनका प्रतिपादन इस पुस्तक में किया गया है।

सामान्य भ्रम

सामान्य भ्रमों में कुछ भ्रम विरोध (contrast) से होते हैं। चित्र १६ को देखिए। इसमें अ गोलों का आकार बराबर है किन्तु बड़े गोलों से घिरकर वह छोटा और छोटे गोलों से घिरकर बड़ा लगता है।

घिरा हुआ स्थान खुले हुए स्थान की अपेक्षा कम लगता है। यह चित्र १७ से स्पष्ट हो जायगा। यहाँ प्रत्येक चित्र का क्षेत्र बराबर होने पर भी घिरे क्षेत्र वाले चित्र खुले क्षेत्र वालों से कम लगते हैं।

चित्र १८ में दोनों आदमियों की तुलना कीजिए। यद्यपि दोनों की लम्बाई और मोटाई बिल्कुल बराबर है फिर भी धारीदार कपड़े पहनने वाला काले रंग के कपड़े पहने आदमी से ज्यादा मोटा लगता है।

अब चित्र १९ को और देखिए। इसमें चारों रेखाएँ बिल्कुल समानान्तर हैं किन्तु वे फिर भी समानान्तर नहीं लगती। इसका कारण इन रेखाओं पर छोटी रेखाओं द्वारा बने कोणों में है। ९० अंश से कम

अंश के कोण अपनी वास्तविकता से ज्यादा बड़े लगते हैं और ६० अंश से ज्यादा अंश के कोण अपनी वास्तविकता से छोटे लगते हैं।
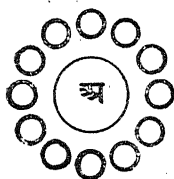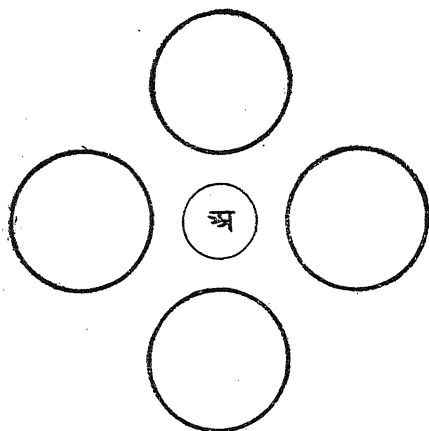
चित्र १६

इसी प्रकार हमें समय बताने, आवाज की दिशा पहचानने और बोझ का अन्दाज करने में भी भ्रम होते रहते हैं। सच तो यह है कि संसार की वस्तुएँ हमें वैसी ही दिखाई पड़ती हैं जैसा हम उन्हें देखना चाहते हैं।
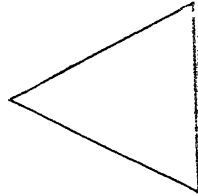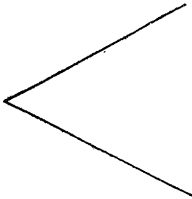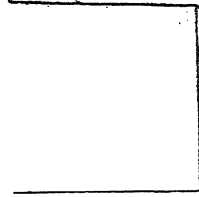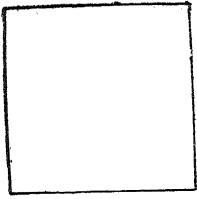
चित्र १७

चित्र १८

सामान्यतः बड़ी चीजें भारी हुआ करती हैं। आध सेर वजन के पीपे और एक सेर वजन के बाँट में हम पीपे को बाँट से ज्यादा भारी समझते हैं क्योंकि बड़ी चीज भारी 'दिखाई पड़ती' है। पीपे को उठाने में हम ज्यादा शक्ति लगाने का विन्यास करते हैं जो उसको उठाने के लिए जरूरत से
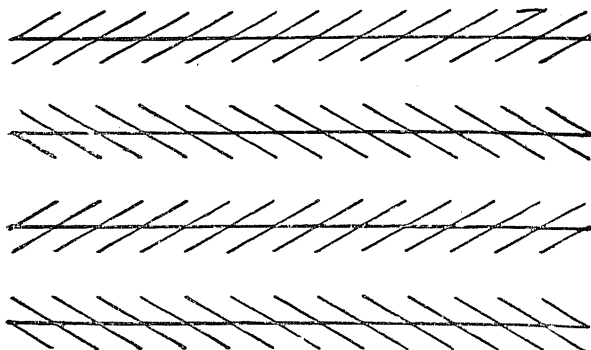
चित्र १६

ज्यादा होती है जिससे पीपा उठाने पर अत्यन्त हलका लगता है और बाँट को हलका समझकर उसे उठाने में कम शक्ति लगाते हैं जो जरूरत से कम पड़ती है इसलिए बाँट भारी लगता है। मनोविज्ञानीय दृष्टि से सेर भर रुई एक सेर लोहे के बराबर नहीं होती।

प्रश्न

१—मनोविज्ञान की अध्ययन प्रणालियों के आधार पर क्या अनुभव का अध्ययन कर सकना संभव है? अपने मत के समर्थन के लिए उचित उदाहरण दीजिए।

२—अनुभव का विश्लेषण करते हुए मनोविज्ञान में उसका महत्व बताइए ।

३—प्राणी को बोध कैसे होता है ? बोध होने पर प्रभाव डालने वाली बातों का उल्लेख अपने जीवन की घटनाओं से उदाहरण देते हुए कीजिए ।

४—संवेदन का उत्तेजना और अनुभव से सम्बन्ध बताते हुए संवेदन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

५—अवधान क्रिया की व्याख्या करते हुए उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

६—बाजार में आप किन चीजों की ओर आकृष्ट होते हैं ? इस प्रश्न का कारण अवधान के निर्धारकों और प्रकारों के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रसंग में बताइए ।

७—अवधान की चंचलता के क्या कारण हैं ? विन्यास का अवधान पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

८—प्रतिक्रिया-समय पर प्रभाव डालने वाली बातों को समझाइए । क्या प्रतिक्रिया-समय को कार्य-कुशलता की निश्चित कसौटी माना जा सकता है ?

९—'संज्ञा सविशेष संवेदन है', इस कथन की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ।

१०—'उत्तेजनाओं का नया अर्थ हमें सीखना पड़ता है,' इसका आशय स्पष्ट करते हुए संज्ञा और सार्थकता का सम्बन्ध समझाइए ।

११—संगठन के नियम बताइए । क्या विन्यास का संगठन पर कोई प्रभाव पड़ता है ?

१२—संज्ञादोष होने के क्या कारण हैं ? क्या आप किसी व्यक्ति के परिवर्तनीय और सतत् संज्ञादोष का पता लगा सकते हैं ? स्पष्ट कीजिए ।

१३—वेवर के नियम की व्याख्या कीजिए और उसका व्यावहारिक महत्व बताइए ।

१४—"हम वस्तुओं को अपनी तरह से देखते हैं, उस तरह से नहीं जिस तरह वे होती हैं" आप इससे कहाँ तक सहमत हैं और क्यों ?

४

जानने के साधन

प्राणी अपने ग्राहकों द्वारा वाह्य और आन्तरिक जगत को जानता है। मानसिक क्रिया ग्राहकों के उत्तेजित होने पर होती है इसलिए मनोविज्ञान में ग्राहकों की महत्ता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हम जो कुछ बनते हैं और जो कुछ करते हैं उसमें हमारे ग्राहकों (receptors) का बड़ा भारी हाथ रहता है। हम जिसे अभिमानपूर्वक अपना ज्ञान कहते हैं वह हमारे ग्राहकों द्वारा ग्रहण की हुई सामग्री से ही निर्मित होता है। यदि हमारे ग्राहक जैसे हैं वैसे न होकर किसी और प्रकार के होते तो हमारा ज्ञान और अनुभव भी वैसा नहीं होता जैसा कि है। हमारा सारा ज्ञान और अनुभव ग्राहक सापेक्ष है।

वाह्य और आन्तरिक जगत के समुचित ज्ञान के लिए ग्राहकों का स्वस्थ होना आवश्यक है। विभिन्न ग्राहक अलग अलग शक्तियों के प्रति संवेदनशील होते हैं। अतएव उनकी स्वस्थता इस बात पर निर्भर है कि उनकी ग्रहणशीलता में कोई कमी या ख़राबी न हो। अच्छी ग्रहणशीलता होने पर ही क्षीण से क्षीण उत्तेजनाएँ ग्रहण की जा सकती हैं और उनमें प्रकार-भेद किया जा सकता है। ग्राहकों की ग्रहणशीलता अभ्यास से कुछ हद तक उन्नत हो जाती है। सङ्गीतज्ञ अभ्यास के कारण ही अत्यन्त सूक्ष्म स्वरों के भेद को भी सुन लेता है। इस अध्याय में प्रमुख ग्राहकों पर एक एक करके विचार किया जायगा।

आँख

आँख की महत्ता सारे ग्राहकों में सर्वोपरि है। आँखों को ठीक ही 'हृदय की खिड़की' कहा गया है क्योंकि आँखों द्वारा हृदय के सारे भाव व्यक्त हो जाते हैं। क्रोध आने पर आँखों में ख़ून उतर आता है, प्रसन्न होने पर आँखें मुस्कराने लगती हैं, आश्चर्य होने पर विस्फारित हो जाती हैं। सुन्दर वस्तु, विशेषकर स्त्री, आँखों में समा जाती है; विरही लोग रात आँखों में काट देते हैं; बड़ों की अगवानी के लिए आँखें बिछा दी जाती हैं; यदि आपने किसी से कर्ज़ लिया है तो उसका सामना होने पर आप आँख बचाकर निकल जाना चाहते हैं। आँखों की भाषा भी हुआ करती है। आखें अनेक प्रकार की होती हैं; किसी की आँख नरगिस की तरह होती है, किसी की मछली की तरह, किसी की हिरन की तरह, किसी की तरबूज की फाँक की तरह और किसी की बटन की तरह। जब से मेरे एक मित्र ने बताया है कि उन्होंने कुलफी जैसी आँखें भी देखी हैं तब से मैं भी वैसी आँखें देखने का उत्सुक हो गया हूँ। कवि लोग तो आँखों में झील भी देखा करते हैं।

रचना

किन्तु मनोवैज्ञानिक के लिए आँख न तो तरबूज़ की फाँक है और न कुलफी। उसके लिए आँख शरीर का सबसे महत्वपूर्ण वह ग्राहक है जिसके द्वारा प्राणी परिवेश के पदार्थों और रंगों को जानता है। नेत्रगोलक (eyeball) तीन परतों (coats) से निर्मित होता है। ऊपरी परत सफेद होती है। वह कठोर और प्रतिरोधक (resistant) होती है, नेत्र-गोलक की आकृति उसी से बनती है। बीच की परत का काम आँख को पुष्ट करना और रखना होता है। भीतरी परत आँख का क्रियात्मक अंग होती है और प्रकाश की किरणों के प्रति संवेदनशील होती है। भीतरी परत को नेत्रपटल (retina) कहते हैं।

ऊपरी परत का अगला भाग पारदर्शी होता है और उसे कनीनिका (cornea) कहा जाता है । कनीनिका के ठीक पीछे एक प्रकार का पारदर्शी तरल पदार्थ (जिसे एकुअस ह्यूमर, acquous humour, कहा जाता है)
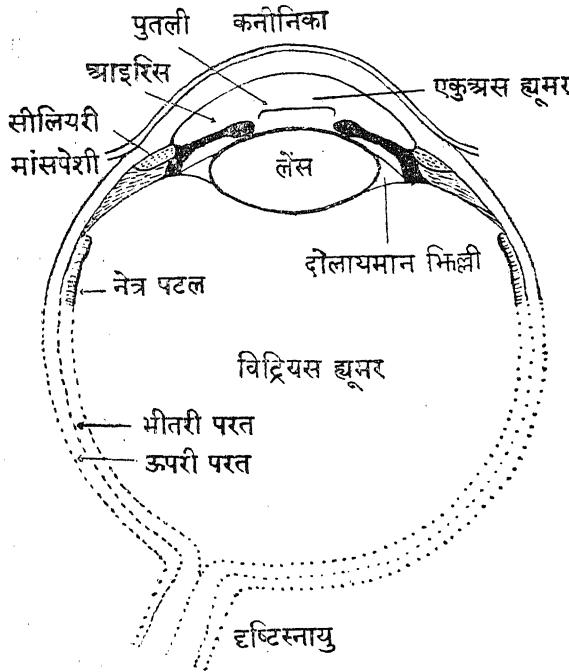
चित्र २०

भरा होता है । यह तरल पदार्थ शायद उस झील का पानी हो जिसे कवि लोग आँखों में देखते हैं । इस तरल पदार्थ के पीछे लेंस (lens) होता है । लेंस दोलायमान झिल्लियों (suspensory ligaments) में लटका होता है जो सीलियरी मांसपेशियां (ciliary muscles) से नियंत्रित

रहती हैं। लेंस का काम प्रकाश की किरणों को नेत्रपटल (retina) के सबसे संवेदनशील भाग पर केन्द्रित करना होता है। लेंस के सामने एक रंगीन सी मांसपेशी होती है जिसे आइरिस (Iris) कहते हैं। आइरिस के साथ ही एक छेद होता है जिसे पुतली (pupil) कहते हैं। आइरिस का काम पुतली द्वारा लेंस में जाने वाले प्रकाश की मात्रा को नियमित करना होता है। लेंस और नेत्रपटल के बीच भी गाढ़ा सा पारदर्शी तरल पदार्थ (विट्रियस ह्यूमर, vitreous humour) भरा रहता है (चित्र २०)।

नेत्रपटल (retina) न्यूरोनों की तीन तहों से बना होता है। बीच की परत के पास बाहर की तह के कोषों (cells) के डेन्ड्रोन (dendrons) संशोधित होकर शंकुओं (cones) और छड़ों (rods) के आकार के बन जाते हैं। शंकु और छड़ प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं। मनस् को जाने वाली दृष्टि-संवेदन सम्बन्धी न्यूरोनीय प्रेरणाओं (nervous impulses) का प्रादुर्भाव शंकुओं और छड़ों पर ही होता है।

दृष्टि-संवेदनों को मनस् तक ले जाने के लिए दृष्टि-स्नायु (optic nerve) होता है। दृष्टि स्नायु जहाँ नेत्रपटल से मिलता है वहाँ शंकु और छड़ बिल्कुल नहीं होते जिससे वहाँ दृष्टि-संवेदन का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। इस स्थान को आँख का अन्धबिन्दु (blind spot) कहा जाता है। इसके विपरीत नेत्रपटल में एक ऐसा भी स्थान होता है जहाँ शंकु (cones) बहुत होते हैं। इस स्थान को फोविया (fovea) कहते हैं (चित्र २१)।

क्रिया

देखने की क्रिया प्रकाश द्वारा सम्भव होती है। प्रकाश में विभिन्न लम्बाई की विद्युत-चुम्बकीय (electro-magnetic) किरणें होती हैं। आँख एक निश्चित लम्बाई की किरणों से ही उत्तेजित होती है। किरणों की ये लम्बाई

लगभग ४०० से ७०० मिलीमाइक्रोन (एक मिलीमीटर का दस लाखवाँ हिस्सा) के भीतर होती है। ४०० मिलीमाइक्रोन से कम और ७०० मिली-माइक्रोन से ज्यादा लम्बाई की किरणें आँख को उत्तेजित नहीं कर पातीं।
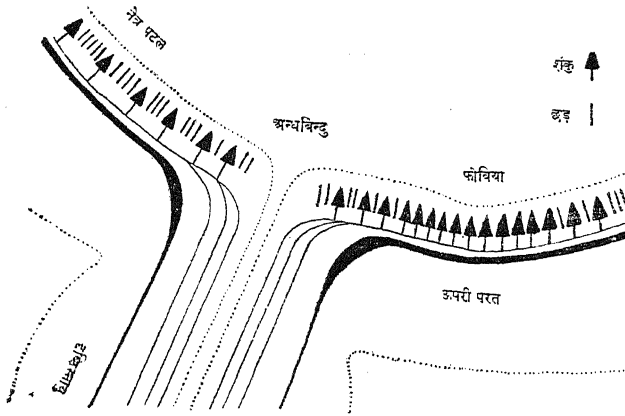
चित्र २१

प्रकाश की किरणें जब आँख में प्रवेश करती हैं तो आइरिस (Iris) सिकुड़कर या फैलकर पुतली द्वारा लेंस तक जाने वाली किरणों की मात्रा को नियमित कर देती है। प्रकाश की मात्रा का नियमित होना बहुत आव-श्यक है क्योंकि नेत्रपटल अत्यन्त संवेदनशील होता है और प्रकाश यदि अनियमित मात्रा में नेत्रपटल पर पड़ जाय तो नेत्रपटल झुलस जाता है।

किरणें फिर ऐकुअस ह्यूमर नामक पारदर्शी पदार्थ से गुजरती हैं। इस तरल पदार्थ का काम किरणों में उचित वक्रीकरण (refraction) कर देना होता है जिससे वे लेंस पर ठीक से पड़ सकें। लेंस का काम किरणों को नेत्रपटल (retina) पर ठीक से केन्द्रित (focus) करना होता है। किरणों को नेत्रपटल पर ठीक से केन्द्रित करने के लिए लेंस घटता-बढ़ता

रहता है। वृद्धावस्था या शारीरिक अस्वस्थता से सीलियरी मांसपेशियों में दुर्बलता आ जाती है जिससे लेंस की घटने बढ़ने की क्षमता कम हो जाती है और किरणें या तो नेत्रपटल के ज़रा आगे या पीछे केन्द्रित होने लगती हैं। इससे वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ती। इस कमी को पूरा करने के लिए चश्मा लगाना पड़ता है।

यह देखा जा चुका है कि नेत्रपटल में शंकु (cones) और छड़ (rods) होते हैं। रंग देखने के लिए शंकुओं का होना ज़रूरी है। यदि शंकु न हों तो रंग दिखाई नहीं पड़ सकते। शंकु धुँधले प्रकाश में क्रिया नहीं करते इसलिए गोधूलि के समय रंग दिखाई नहीं पड़ते। शंकुओं या उनके न्यूरोनीय सम्बन्धों में कोई दोष होने से प्राणी वर्णान्ध (colour blind) हो जाता है। बहुत से लोग कुछ रंगों के प्रति आंशिक रूप से वर्णान्ध होते हैं। नेत्र चिकित्सकों ने वर्णान्धता की परीक्षा करने के अनेक साधन बना लिए हैं।

धुँधले प्रकाश में देखने के लिए छड़ों (rods) का होना ज़रूरी है। छड़ों के बाहरी भाग में 'विजुअल पर्पिल' (visual purple) नाम का एक पिग्मेंट (pigment) होता है। प्रकाश में इस पिग्मेंट का रंग उड़ जाता है किन्तु अन्धकार में वह अपना रंग फिर ग्रहण कर लेता है। छड़ों के क्रियाशील होने पर केवल चमक ही दिखाई पड़ती है, रंग नहीं। विजुअल पर्पिल की मात्रा विटेमिन ए की कमी से घट जाती है जिससे रात में ठीक से दिखाई नहीं पड़ता और दुर्घटनाएँ होने की सम्भावना बढ़ जाती है। विटेमिन ए की कमी को गाजर आदि पदार्थों से बहुत कुछ पूरा किया जा सकता है।

दृष्टि संवेदन का क्षेत्र मनस् के पिछले खंड (occipital lobe) में होता है। दृष्टि-स्नायु (optic nerve) दोनों नेत्रगोलकों से इस तरह सम्बन्धित होता है कि दोनों आँखों के दाहिनी ओर के आधे भाग की

प्रेरणाएँ (impulses) मनस् के पिछले खंड के दाहिने भाग और बाईं ओर के आधे भाग की प्रेरणाएँ बाएँ भाग में जाती हैं (चित्र २२)।

चित्र २२
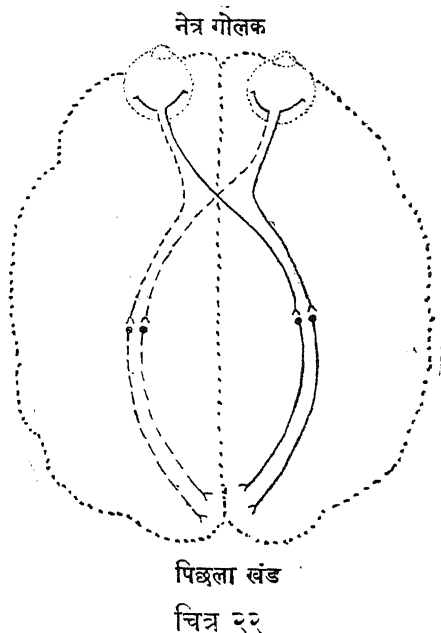
यह प्रबन्ध आश्चर्यजनक है । मनस् के पिछले भाग का कोई एक दृष्टि क्षेत्र नष्ट हो जाने पर भी दोनों आँखों के आधे भाग से देखा जा सकता है।

पर्किन्जे व्यापार

दिन में आँख ५५० मिलीमाइक्रोन के आसपास का प्रकाश अच्छी तरह देख सकती है और रात में ५१० मिलीमाइक्रोन के आसपास का। तेज़ धूप में से अँधेरे कमरे में जाने पर थोड़ी देर तक कुछ दिखाई नहीं

पड़ता। धूप में शंकु क्रियाशील रहते हैं और छड़ निष्क्रिय। अँधेरे में आने पर शंकु निष्क्रिय हो जाते हैं और छड़ क्रियाशील होने लगते हैं। तेज़ प्रकाश से एकाएक अँधेरे में आने पर छड़ों को क्रियाशील होने में जितनी देर लगती है उतनी देर तक अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता। छड़ों की क्रियाशीलता ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है त्यों त्यों अँधेरे में दिखाई देने लगता है। इसको अंधकार-अनुशीलन (dark adaptation) कहते हैं। इसी प्रकार अँधेरे कमरे में से चमचमाती धूप में जाने पर आँखें चौंधिया जाती हैं और जब तक शंकु क्रियाशील नहीं हो जाते हमें वस्तुएँ दिखाई नहीं देतीं। शंकुओं के पूरी तरह से क्रियाशील हो जाने पर ठीक तरह से दिखाई देने लगता है। इसको प्रकाश-अनुशीलन (light adaptation) कहते हैं। प्रकाश-अनुशीलन में आँख की संवेदन-शीलता ५५० मिली-माइक्रोन रहती है और अंधकार-अनुशीलन में ५१० मिलीमाइक्रोन पर उतर जाती है। आँख की संवेदनशीलता के इस परिवर्तन का पता पर्किन्जे ने लगाया था। उसी के नाम पर संवेदनशीलता के इस परिवर्तन को पर्किन्जे-व्यापार (Purkinje phenomenon) कहते हैं। पर्किन्जे-व्यापार का कारण आँख के दो प्रकार के ग्राहकों—शंकुओं और छड़ों—में है। एक प्रकार के ग्राहक तेज़ प्रकाश को ग्रहण करते हैं और दूसरे फीके प्रकाश को।

रंगों के विषय में

दृश्य जगत में हमें रंग, आकार, गति आदि विशेषताओं का बोध होता है। रंगों का बड़ा भारी महत्व है। यदि रंग न होते तो हमारी दुनियाँ कैसी होती? कितनी दुखदायी है यह कल्पना! तब रंग बिरंगे फूल नहीं होते, स्त्रियों के रक्तिम अधर नहीं होते, शिशुओं के गुलाबी गाल नहीं होते, आँखों की नीली गहराई नहीं होती, पौ फटने की छटा नहीं होती। शायद किसी परलोक में रंग न होते हों किन्तु इहलोक में रंगों से इनकार करना सौंदर्य से, जिन्दगी से, ज्ञान से इनकार करना है।

हम पदार्थों के गुण, उनका भेद और सादृश्य रंगों द्वारा ही जान सकते हैं। रंगों के अभाव की परिस्थिति में हमारी दुनियाँ का मुँह हमेशा के लिए के लिए फक् पड़ा रह जाता।

यों तो हमारी आँख हजारों रंगों में भेद कर सकती है किन्तु रंगों के दो भेद बड़ी आसानी से किए जा सकते हैं, चटक (chromatic) रंग और चटकहीन (achromatic) रंग। लाल, हरे, नीले, पीले रंग चटक होते हैं ; सफेद, भूरे और काले चटकहीन। चटक रंग वह होते हैं जिनमें भूरे रंग की मिलावट नहीं होती। भूरा रंग काले और सफेद की मिलावट होता है। चटकहीन रंगों में केवल फीके या गहरे होने का अन्तर होता है। यह भेद चटक रंगों में भी होता है। सफेद के निकट होने पर रंग फीका होता है और काले के निकट होने पर गहरा।

लाल, हरे, पीले और नीले रंगों को प्रमुख (primary) रंग माना जाता है क्योंकि यही चार रंग आपस में चटकहीन रंगों के साथ विभिन्न मात्रा में मिलाए जाने पर हजारों रंग उत्पन्न कर देते हैं। जो रंग एक निश्चित मात्रा में मिलाए जाने पर भूरा रंग उत्पन्न करते हैं उन्हें पूरक (complementary) रंग कहा जाता है। इस तरह यदि लाल और हरे या पीले और नीले रंग को एक निश्चित मात्रा में मिलाया जाय तो उनसे भूरा रंग बन जाता है, इसलिए लाल-हरे और पीले-नीले रंगों के जोड़े को पूरक रंग कहा जाता है।

रंग और उनकी विशेषताएँ प्रकाश की उत्तेजना से पैदा होती हैं और रंगों और प्रकाश में संवादिता (correspondence) होती है। प्रकाश की उत्तेजनाओं में तीन तरह का अन्तर होता है। लहर की लम्बाई (wave-length) का, शक्ति की मात्रा का और लहरों की विभिन्न लम्बाइयों की मिलावट या घोल का। हमारी आँखें और मनस् ४०० से लेकर ७०० मिलीमाइक्रोन लम्बी लहरों को ही ग्रहण कर सकता है। छोटी लम्बाई

की लहरें बैंगनी और नीले रंग को और बड़ी लम्बाई की लहरें पीले और लाल रंगों को उत्पन्न करती हैं। रंगों की विविधता लहरों की विभिन्न लम्बाइयों के मिलने से होती है। यह चित्र २३ से स्पष्ट हो जायगा।

रंगों की चमक (brightness) प्रकाश की शक्ति की मात्रा पर निर्भर होती है। दिन को पीला और लाल रंग ज्यादा चमकीला मालूम होता है, हरा और नीला सापेक्षतः कम चमकीला लगता है। रात को हरा और नीला लाल और पीले की अपेक्षा ज्यादा चमकदार लगता है। शक्ति परिवर्तन का असर रंगों के चटक होने पर भी पड़ता है। उत्तेजना की शक्ति मध्यम होने पर रंग अत्यन्त चटक दिखाई पड़ते हैं।

फिर भी प्रकाश की उत्तेजना, उसकी लहरों की लम्बाई, शक्ति और मिलावट या घोल में और आँख द्वारा रंगों का अनुभव करने में पूरा तादात्म्य नहीं होता। यदि हम दिन के प्रकाश में किसी वस्तु को देखने के पहले ही उसके सम्भावित रंग को जान लें तो हमें वह वस्तु उसी रंग की जान पड़ेगी, चाहे उस वस्तु से आने वाली प्रकाश की उत्तेजना में अन्तर हीं क्यों न हो। इस व्यापार को रंग की ध्रुवता (constancy) कहते हैं। चमक यद्यपि उत्तेजना की शक्ति की मात्रा पर निर्भर होती है किन्तु कोयला हमें रात और दिन दोनों में समान रूप से काला लगता है, घास हरी लगती है, बर्फ सफेद लगता है। इससे यह साबित होता है कि यदि मनस् पहले से ही 'तैयार' हो तो रंगों के अनुभव पर उत्तेजना की शक्ति की मात्रा का प्रभाव नहीं के बराबर पड़ता है।

नेत्रपटल के रंग-क्षेत्र

नेत्रपटल (retina) में रंगों के अलग अलग क्षेत्र होते हैं। प्रकाश की मात्रा के अनुसार ये क्षेत्र घटते-बढ़ते रहते हैं। विभिन्न क्षेत्र अलग अलग लम्बाई की लहरों के प्रति संवेदनशील होते हैं। स्थायी प्रकाश में परीक्षा करके यह देखा गया है कि सारे चटक रंग दृष्टिक्षेत्र के केन्द्र—
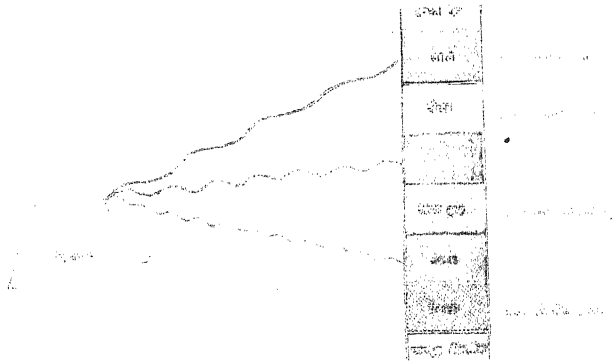
चित्र २३
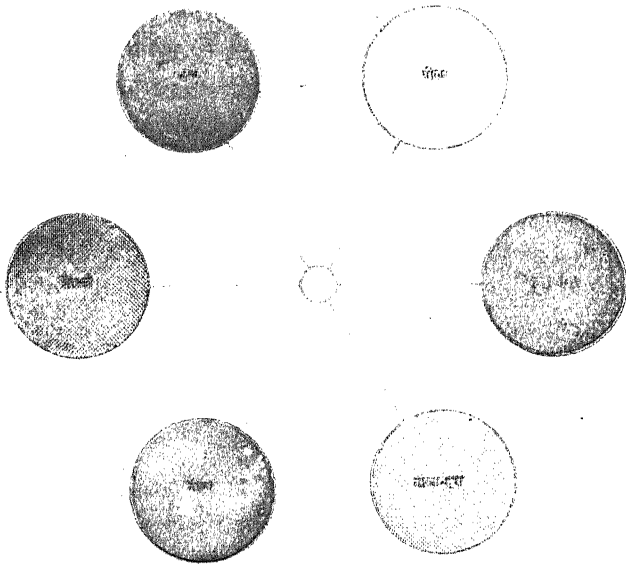
चित्र २४

फोविया—पर ही दिखाई पड़ते हैं क्योंकि वहाँ शंकु ज्यादा होते हैं। केन्द्र से जरा हटकर लाल या हरा रंग दृष्टिगत नहीं होता। नीला और पीला रंग ज्यादा विस्तृत क्षेत्र तक दिखाई देता है। भूरा और सफेद रंग नीले और पीले रंग के क्षेत्र के बाहर भी दिखाई देता है। रात को शंकुओं के निष्क्रिय हो जाने से नेत्रपटल के केन्द्र पर कुछ दिखाई नहीं देता, जो कुछ दिखाई देता है वह केन्द्र के बाहर के क्षेत्रों पर देता है जहाँ छड़ ज्यादा होते हैं।

उत्तर-संवेदन

यदि आँख को प्रकाश की बहुत तीव्र उत्तेजना मिले तो उस उत्तेजना के हट जाने पर भी कुछ क्षण तक उसका संवेदन होता रहता है। आप अँधेरे में बिजली के तेज बल्ब को देखिए, फिर अपनी आँखें बन्द कर लीजिए। आपको थोड़ी देर तक बल्ब का संवेदन होता रहेगा। इस प्रकार के संवेदन को उत्तर-संवेदन (after-sensation) कहा जाता है। यदि उत्तर-संवेदन का रंग और उसकी चमक उत्तेजना के रंग और चमक के समान ही हो तो ऐसे उत्तर-संवेदन को समोत्तर-संवेदन (positive after-sensation) कहते हैं। उत्तर संवेदन का कारण यह है कि उत्तेजना मिलने पर ग्राहक में न्यूरोनीय क्रिया शुरू हो जाती है किन्तु उत्तेजना के एकदम हट जाने से वह न्यूरोनीय क्रिया एकदम समाप्त नहीं हो पाती।

हर संवेदन कुछ देर के बाद हलका पड़ने लगता है। आप एक प्रकाशमान कमरे में कुछ देर रहिए तो आपको कमरे का प्रकाश पहले से हलका मालूम होने लगेगा। यह तत्सम्बन्धी संवेदन के ग्राहकों का अनुशीलन हो जाने से होता है। आपको अपने पहने हुए कपड़ों के दबाव का संवेदन नहीं होता क्योंकि आपके स्पर्श-ग्राहकों का कपड़ों के दबाव से अनुशीलन हो जाता है।

अनुशीलन से तत्सम्बन्धी ग्राहकों की अन्य प्रकार की उत्तेजनाओं के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है। मीठे स्वाद से अनुशीलन हो जाने पर

नमक या मिर्च के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है। अँधेरे कमरे से बाहर आने पर प्रकाश ज्यादा तेज लगता है, उजाले से अँधेरे में जाने पर अँधेरा ज्यादा मालूम पड़ता है। इसी प्रकार यदि हमारी दृष्टि का किसी रंग के प्रति अनुशीलन हो जाय तो हमें उस रंग के विरोधी या पूरक रंग का संवेदन हो सकता है। आप लाल रंग का चश्मा लगाइए और थोड़ी देर बाद उतार दीजिए। आपको रंगहीन वस्तुएँ हरी दिखाई पड़ेंगी। इसी प्रकार नीला चश्मा लगाने के बाद हर रंगहीन पदार्थ पीला नजर आएगा। यह स्थिति विषमोत्तर-संवेदन (negative after-sensation) कहलाती है।

रंगों का विरोध

विषमोत्तर-संवेदन में पहले लाल या नीले रंग की उत्तेजना मिलती है और उसके बाद लाल या नीले रंग के पूरक हरे या पीले रंग का संवेदन होता है। इस क्रम के रहने से विषमोत्तर-संवेदन को रंगों का क्रमिक विरोध (successive contrast) भी कहा जाता है। उत्तेजना और पूरक (complementary) रंगों के एक साथ होने पर रंगों में जो विरोध उत्पन्न होता है उसे समकालीन विरोध (simultaneous contrast) कहते हैं। भूरे रंग के कागज के दो टुकड़े ले लीजिए। एक को काली पृष्ठभूमि पर और दूसरे को सफेद पृष्ठभूमि पर रखिए। काली पृष्ठभूमि पर रक्खा गया टुकड़ा सफेद पृष्ठभूमि पर रक्खे हुए टुकड़े से ज्यादा चमकदार लगेगा। भूरे रंग के धब्बे रंगीन पृष्ठभूमि पर डाल दीजिए तो उन धब्बों में रंगीन पृष्ठभूमि के पूरक रंग की झलक आ जायगी। सूर्य का पीला सा प्रकाश बर्फ पर नीले रंग की झलक ला देता है। रंगों के विरोध का सामान्य नियम यह है कि कोई रंगीन धरातल अपने पास के क्षेत्र में अपने पूरक रंग की झलक ला देता है। चित्रकार रंगों के इस विरोध का

विशेष ध्यान रखते हैं। कपड़े रंगते समय या कमरा सजाते समय भी रंगों के विरोध का ध्यान रखना चाहिए।

रंगों को घोलना

यह देखा जा चुका है कि रंगों की विविधता प्रकाश की विभिन्न लम्बाई की लहरों के घुलने से होती है। विभिन्न लम्बाई की लहरों को कृत्रिम रूप से घोलने के अनेक तरीके हैं। मनोविज्ञान की प्रयोगशालाओं में काम में लाया जाने वाला एक सुलभ तरीका रंग-चक्र (colour wheel) को तैयार करना है। रंग-चक्र के एक भाग में एक रंग होता है और शेष भाग में दूसरा। इस चक्र को जब तेजी से घुमाया जाता है तो देखने में लगता है कि चक्र के दोनों रंग घुल गए हैं। यह ऐसे होता है : चक्र का एक भाग जब आँख के ग्राहकों को उत्तेजित करता है तो उस भाग के रंग का समोत्तर-संवेदन (positive after-sensation) कुछ क्षणों तक बना रहता है। वह मिट भी नहीं पाता कि चक्र का दूसरा भाग आँख के उन्हीं ग्राहकों को उत्तेजित कर बैठता है जिसका नतीजा यह होता है कि पहली उत्तेजना के रंग का समोत्तर-संवेदन दूसरी उत्तेजना के रंग के साथ घुल जाता है और हमें लगता है कि चक्र के दोनों रंग आपस में घुल गए हैं।

रंग घुलने के नियम

दो रंगों को रंग-चक्र द्वारा घोलने पर उनकी चटक में क्या अन्तर पड़ता है ? इस विषय पर प्रयोगशाला में परीक्षाएँ करके अनेक नियम बनाए जा चुके हैं। यहाँ केवल तीन प्रमुख नियमों का उल्लेख कर देना काफी होगा।

(१) दो पूरक (पीले और नीले) रंगों को एक निश्चित मात्रा में घोलने पर भूरा रंग बन जाता है और उसकी चमक दोनों के बीच की होती है।

(२) दो अपूरक (non-complementary) रंगों (जैसे हरे और नीले) को एक निश्चित मात्रा में घोलने पर उन दोनों के बीच का रंग बन जाता है जिसकी चमक दोनों रंगों के बीच की होती है। इसको चित्र २४ से समझा जा सकता है। इस रंग-चक्र में दो रंग जितनी दूर होंगे उनकी चटक उतनी ही कम होगी। यदि वे दोनों बिल्कुल विरोधी दिशा में होंगे तो उनकी चटक बिल्कुल नष्ट ह . जायगी और उनके घुलने से भूरा रंग दिखाई पड़ेगा।

(३) हम देख चुके हैं कि दो पूरक रंगों को घोलने से भूरा रंग बनता है, किंतु पूरक रंगों (लाल-हरे और पीले-नीले) को आपस में एक निश्चित अनुपात से घोलने पर भी भूरा रंग बनता है। इस भूरे रंग की चमक दोनों पूरक रंगों के जोड़े के भूरे रंगों की चमक के बीच की होती है।

रंग-विषयक सिद्धान्त

रंगों के विषय में अनेक सिद्धान्त हैं। उनमें सबसे मान्य सिद्धान्त टॉमस यंग का है जिसको बाद में लुडविग फोन हेल्महोल्त्स ने और उन्नत किया था। यंग-हेल्महोल्त्स सिद्धान्त के अनुसार शंकु (cones) तीन प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के शंकु लाल, दूसरे प्रकार के हरे और तीसरे प्रकार के नीले रंगों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। रंग घुलने के तथ्य इस मान्यता का काफी समर्थन करते हैं। यदि सफेद पर्दे पर विभिन्न मिलावट और अनुपात से लाल, हरे और नीले रंगों को चमकाया जाय तो हमें प्रत्येक रंग प्राप्त हो सकता है। इस सिद्धान्त से विभिन्न लम्बाई की लहरों की घुलावट की व्याख्या के अतिरिक्त बहुत सीमा तक विप्रमोत्तर संवेदन (negative after-sensation) की व्याख्या भी की जा सकती है। विप्रमोत्तर संवेदन तीन प्रकार के शंकुओं की विभिन्न उत्तेजनाओं के कारण होता है। उदाहरण के लिए जब नीले रंग की किरणें नीला रंग ग्रहण करने वाले शंकुओं को उत्तेजित करती हैं तो उस समय हरे और

लाल रंग को ग्रहण करने वाले शंकु अप्रभावित रहते हैं। कुछ देर बाद नीले शंकु थक जाते हैं और जब हम चटकहीन रंगों की सफेद या भूरी पृष्ठभूमि की ओर देखते हैं तब हरे और लाल शंकु सक्रिय हो जाते हैं जिससे हमें हरे-लाल रंग के बीच का (अर्थात् पीला) रंग दिखाई पड़ता है जो नीले रंग का पूरक (complementary) रंग होता है। किन्तु फिर भी इस सिद्धान्त से कई बातों की व्याख्या नहीं हो पाती। जो हो लेकिन आज कल यही सिद्धान्त वैज्ञानिकों द्वारा ज्यादा मान्य है।

कान

आँख की तरह प्राणी के लिए कान का भी बड़ा महत्व है। प्राणी को परिवेश का ज्ञान रंगों के अलावा ध्वनि से भी होता है। भाषा के विकास और बोलचाल में ध्वनि का बड़ा महत्व है। यदि कान न होते तो ध्वनि नहीं होती, संगीत नहीं होता, भाभी के ताने और उलाहने न होते, दोस्तों से गप्पें लड़ाने का मज़ा नहीं होता। 'विधना' ने 'अस जिय जानि के शेषहिं' कान नहीं दिए थे कि वह 'तानसेन की तान' पर 'धरा-मेरु सब' हिला देता।

रचना

कान के तीन भाग किए जा सकते हैं : बाहरी भाग, बीच का भाग और भीतरी भाग। बाहरी भाग का छेद जहाँ समाप्त होता है वहाँ एक झिल्ली होती है जिसे कान का पर्दा कहते हैं। कान के पर्दे के बाद बीच का भाग शुरू होता है। बीच के भाग में तीन हड्डियों की श्रृंखला रहती है जिनमें से पहली दो हड्डियों को उनकी क्रिया के अनुसार क्रमशः हथौड़ा (hammer) और निहाई (anvil) कहा जाता है। तीसरी हड्डी को उसकी शक्ल के अनुसार रकाब (stirrup) कहते हैं। हथौड़ा नाम की पहली हड्डी कान के पर्दे से और रकाब नामक तीसरी हड्डी एक अंडाकार

झरोखे (oval window) में लगी झिल्ली से सम्बन्धित होती है। (चित्र २५)
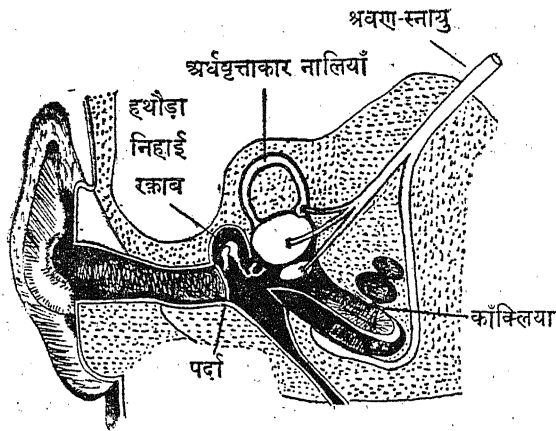
चित्र २५

अंडाकार झरोखे के बाद कान का भीतरी भाग होता है। भीतरी भाग में तीन प्रमुख अंग होते हैं : वेस्टीब्यूल (vestibule) कांक्लिया (cochlea) और अर्धवृत्ताकार नालियाँ (semi-circular canals)। कांक्लिया में दो बड़ी नहरें होती हैं और उनके बीच में हड्डी की एक दीवार होती है जो उन्हें एक दूसरे से अलग करती है। उसमें दो पतली झिल्लियाँ होती हैं जो काक्लीय नहर (cochlear canal) कही जाने वाली एक छोटी सी दीवार को आवृत्त किए रहती हैं। सुनने के ग्राहक काक्लीय नहर में होते हैं। काक्लीय नहर और टिम्पैनिक (tympanic) नहर के बीच बेसिलर झिल्ली (basilar membrane) होती है जो दोनों नहरों को एक दूसरे से अलग करती है। बेसिलर झिल्ली के ऊपर कोर्टी नामक अंग (organ of corti) होता है। कोर्टी पर लोम-कोष

(hair cells) होते हैं जो काक्लीय नहर में भरे तरल पदार्थ में प्रक्षेपित रहते हैं (चित्र २९) ।

चित्र २९
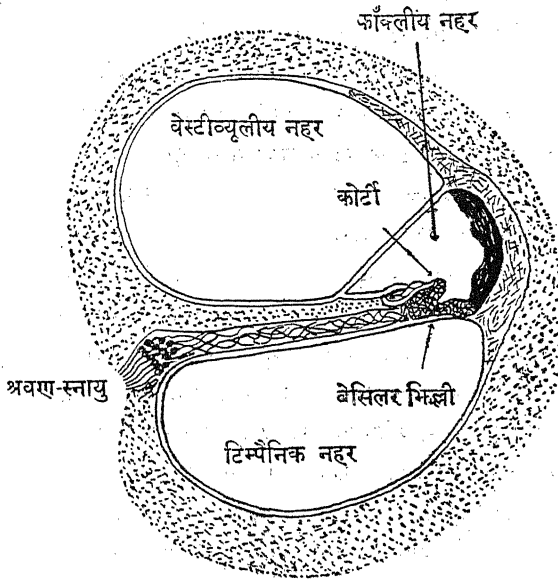
क्रिया

सुनने की उत्तेजना ध्वनि-लहरों के रूप की होती है । तालाब में कंकड़ फेंकने से जिस तरह पानी में लहरें उठतीं और फैलती हैं उसी तरह ध्वनि की उत्तेजना से चारों ओर की हवा में ध्वनि लहरें पैदा होती हैं और फैलती हैं । ध्वनि-लहरें गालों के ऊपर निकली हुई कान की टेढ़ी मेढ़ी सतह पर एकत्रित हो छेद में प्रविष्ट होकर कान के पर्दे से टकराती है जिससे

पर्दे में भी कम्पन होने लगता है। पर्दे की रक्षा के लिए कान के छेद में मोम जैसा पदार्थ रहता है जो पर्दे को क्षति पहुँचा सकने वाली ध्वनि-लहरों की तेजी कम कर देता है। पर्दे में कम्पन होने से कान की तीनों हड्डियों हथौड़ा, निहाई और रकाब में कम्पन होने लगता है जिससे अंडाकार झरोखे (oval window) में लगी झिल्ली भी प्रकम्पित हो जाती है। इस झिल्ली के कम्पन से कान के भीतरी भाग में स्थित वेस्टीब्यूलीय और टिम्पैनिक नहर में भरा तरल पदार्थ ऊपर-नीचे हिलने लगता है।

इन दोनों नहरों के तरल पदार्थ के ऊपर-नीचे हिलने से बेसिलर झिल्ली में कम्पन होता है। बेसिलर झिल्ली में ध्वनि की विभिन्न तीव्रताओं से प्रभावित होने वाले विभिन्न लम्बाई के रेशे होते हैं। बेसिलर झिल्ली के कम्पन से कोर्टी नामक अंग (organ of corti) में गति उत्पन्न होती है जिससे लोम-कोष (hair-cells) झुक जाते हैं। इन लोम-कोषों के झुकने से उनसे सम्बन्धित श्रवण-स्नायु के डेन्ड्रोन उत्तेजित होते हैं जिससे श्रवण-स्नायु में न्यूरोनीय प्रेरणा का प्रादुर्भाव होता है। श्रवण-स्नायु की न्यूरोनीय प्रेरणा का प्रवाह थैलेमस में जाता है और वहाँ से न्यूरोनीय-सामीप्यों (synapses) से होकर मनस के पार्श्वखंड (temporal lobe) में जाता है और तब हम ध्वनि सुनते हैं। प्रत्येक कान कोर्टेक्स (cortex) के दोनों पक्षों से सम्बन्धित होता है जिससे मनस् के एक ओर का पार्श्वखंड नष्ट हो जाने से प्राणी बहरा नहीं हो सकता (चित्र २७)। वह बहरा तभी हो सकता है जब उसके मनस् के दोनों पार्श्वखंड नष्ट हो जायँ या कान का पर्दा फट जाय या फिर कान का ही कोई अंग नष्ट हो जाय।

ध्वनि के विषय में

किसी उत्तेजना (लोहे का तार या कोई और चीज) पर आघात किए जाने से उस उत्तेजना में कम्पन होता है और उस कम्पन के दबाव

से हवा में लहरें पैदा हो होकर चारों ओर फैलने लग जाती हैं। हवा की लहरें जब कान के पर्दे से टकराती हैं तो ध्वनि का संवेदन होता है। ध्वनि किसी उत्तेजना द्वारा हवा में पैदा होने वाली लहरों का क्रम है।
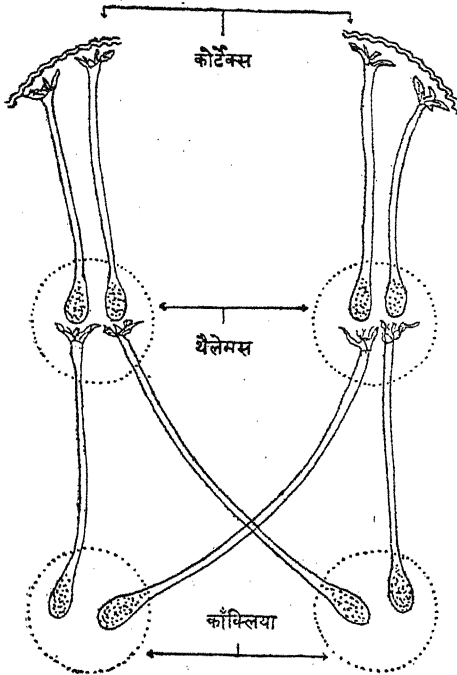
चित्र २७

ध्वनि-लहरों का भेद—उत्तेजना से हवा में नियमित और नियत-कालिक या अनियमित और अनियतकालिक ध्वनि-लहरें उत्पन्न हो सकती हैं। नियमित और नियतकालिक ध्वनि-लहरें कर्णप्रिय होती है। सङ्गीत की कर्णप्रियता का यही कारण है। अनियमित और अनियतकालिक ध्वनि-

लहरें कर्णकटु होती हैं जैसे शोर होने की आवाज। चित्र २८ को देखिए। ऊपर बाँसुरी से और बीच में मनुष्य के गाने से उत्पन्न नियमित और नियतकालिक ध्वनि-लहरें हैं। नीचे धमाके से उत्पन्न शोर होने की अनियमित और अनियतकालिक ध्वनि-लहरें हैं (चित्र २८)।
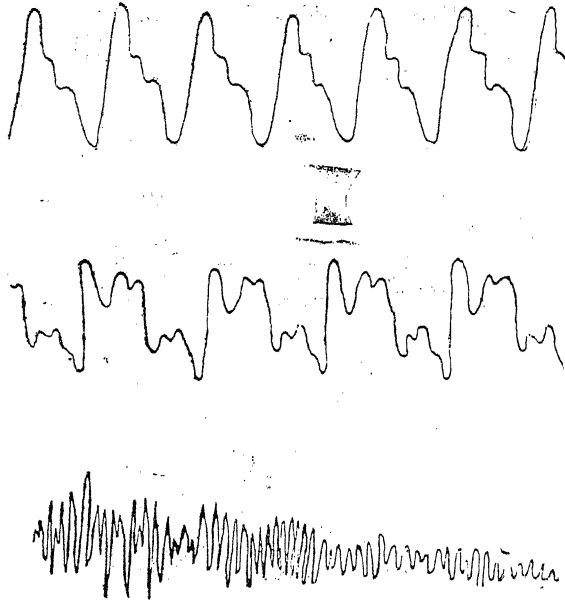
चित्र २८

आवृत्ति—ध्वनि-लहर में उतार-चढ़ाव होता है। पूरे उतार-चढ़ाव से ध्वनि की एक लहर बनती है। चित्र २९ को देखिए और उसमें ऊपर और नीचे की ध्वनि-लहरों की तुलना कीजिए। आप देखेंगे कि दोनों ध्वनि-लहरों के उतार-चढ़ाव की लम्बाई बराबर है किन्तु ऊपर ध्वनि-लहरों की आवृत्ति एक सेकंड में ९ बार और नीचे एक सेकंड में १८ बार

हुई है, इसलिए उन दोनों में केवल उनकी आवृत्ति (frequency) का अन्तर है। विभिन्न उत्तेजनाएँ विभिन्न आवृत्ति की ध्वनि-लहरें पैदा करती हैं। हमारे कान सामान्यतः प्रति सेकंड २० से कम और २०,००० से ज्यादा आवृत्ति की ध्वनि-लहरों को ग्रहण नहीं कर सकते।
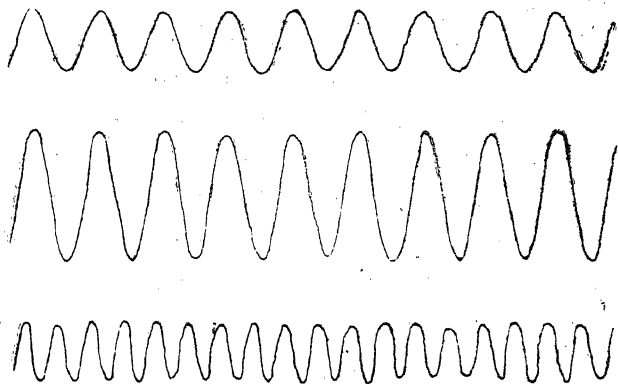
चित्र २६

लम्बाई—अब आप चित्र २६ में ऊपर और बीच की ध्वनि-लहर की तुलना कीजिए। इन दोनों लहरों की आवृत्ति (frequency) एक सेकंड में ६ बार हुई है, इसलिए इन दोनों की आवृत्ति में कोई अन्तर नहीं है। अब दोनों लहरों के उतार-चढ़ाव की लम्बाई देखिए। दोनों की लम्बाई (amplitude) अलग अलग है और उनमें उनकी लम्बाई का ही अन्तर है। विभिन्न उत्तेजनाओं से उत्पन्न ध्वनि-लहरों में लम्बाई का अन्तर भी हो सकता है।

रूप—अब आप एक बार चित्र २८ को फिर देखिये। वहाँ तीनों ध्वनि-लहरों में न तो उनकी आवृत्ति में अन्तर है और न लम्बाई (amplitude) में। अन्तर है तीनों के रूप में। तीनों ध्वनि-लहरों में विभिन्न

आवृत्ति और लम्बाई की लहरों की मिलावट है जिससे उनका रूप अलग अलग हो गया है। ध्वनि-लहरों का रूप उनकी आवृत्ति या लम्बाई या आवृत्ति और लम्बाई दोनों की मिलावट के अन्तर से बनता है।

ध्वनि की विशेषताएँ

वर्षा की रिमझिम, पानी के छपाके, बादलों के गरजने, ज़ोर से चिल्लाने, फुसफुसाने, रोने आदि की ध्वनि में भेद होता है और इस भेद का कारण ध्वनि की विशेषताओं में होता है। ध्वनि में इतनी विभिन्नता होती है कि उनका वर्गीकरण कर सकना अत्यन्त कठिन है। कहा जाता है कि मनुष्य सामान्यतः ध्वनि में ३४०,००० तरह का भेद कर सकने की क्षमता रखता है। ध्वनि का विभेद कर सकना सरल नहीं है किन्तु ध्वनि की इतनी बड़ी विभिन्नता को थोड़ा बहुत समझने के लिए ध्वनि की कुछ विशेषताओं पर दृष्टिपात कर लेना चाहिए।

पिच—आप वीणा के एक ढीले तार को छेड़िए। उसमें से उतरी हुई सी ध्वनि निकलेगी। फिर उस तार को कस दीजिए। तब वह खरी ध्वनि पैदा करेगा। ढीले तार द्वारा उत्पन्न ध्वनि-लहर की आवृत्ति की संख्या कम होती है जिससे ध्वनि उतरी हुई सी लगती है। कसे तार द्वारा उत्पन्न ध्वनि-लहर की आवृत्ति की संख्या अधिक होती है जिससे उसकी ध्वनि खरी लगती है। ध्वनि के उतरेहुएपन या खरेपन को ध्वनि का पिच (pitch) कहते हैं। ध्वनि का पिच ध्वनि-लहर की आवृत्ति की संख्या के अनुपात से उतरता-चढ़ता रहता है।

लम्बाई—कुछ आवाज़ें तेज़ होती हैं और कुछ धीमी। आवाज़ की तेज़ी और धीमापन ध्वनि-लहर की लम्बाई (amplitude) पर निर्भर होता है। ध्वनि-लहर की लम्बाई जितनी ज्यादा होती है ध्वनि उतनी ही तेज़ होती है। हवा पर उत्तेजना के कम्पन का जितना ज्यादा दबाव पड़ता है ध्वनि-लहर की लम्बाई उतनी ही ज्यादा होती है। वीणा के तारों को

झंकृत करने में शक्ति का दबाव जितना अधिक डाला जाता है ध्वनि की तेज़ी उतनी ही बढ़ती चली जाती है।

घनत्व—ध्वनि में घनत्व (volume) भी होता है। कुछ आवाज़ें मोटी या भारी और कुछ पतली लगती हैं। ध्वनि जितनी तेज़ होती है उसका घनत्व भी उतना ही होता है किन्तु घनत्व ध्वनि का पिच बढ़ने से कम और घटने से ज्यादा हो जाता है। ध्वनि के घनत्व से ध्वनि-उत्पादक उत्तेजना की विशेषता जान सकने में सहायता मिलती है। मोटी या पतली आवाज़ सुनकर हम यह अनुमान करते हैं कि उन आवाज़ों को पैदा करने वाली उत्तेजनाएँ भी क्रमशः बड़े या छोटे आकार की होंगी।

टिम्बर—आवाज़ों का पिच और तेज़ी एक सी रहने पर भी आवाज़ों को पहचान लिया जाता है। आपने गाना सुना होगा; यदि नहीं सुना है तो ज़रूर सुनिए और इस बार मनोविज्ञानीय उद्देश्य से सुनिए। गानेवाले के साथ तरह तरह के बाजे भी बजते हैं और यद्यपि गानेवाले और बाजों का स्वर मिला होता है यानी गानेवाले की आवाज़ और बाजों की आवाज़ का पिच और तेज़ी एक ही होती है फिर भी आप गानेवाले और विभिन्न बाजों की आवाज़ अलग अलग सुनते हैं। यह क्यों? आवाजों की उन विशेषताओं के कारण जिन्हें ध्वनि का टिम्बर (timbre) यानी गुण कहा जाता है। ध्वनि का टिम्बर ध्वनि-लहर के रूप की विशेषता होती है। विभिन्न उत्तेजनाओं से उत्पन्न होने वाली एक ही पिच और तेज़ी की विभिन्न ध्वनि-लहरों का रूप अलग अलग होता है। ध्वनि-लहरों की रूप-विभिन्नता (टिम्बर) के कारण ही हम हर मनुष्य की आवाज़ को अलग अलग पहचानते हैं और आवाज़ से ही जान जाते हैं कि कौन बोल रहा है।

ध्वनि विषयक अन्य बातें

अंशनाद—वीणा के तार को छेड़ने पर पूरा तार झंकृत हो उठता है

और पूरे तार की झंकार से जो नियमित ध्वनि निकलती है उसे मूलनाद (fundamental tone) कहा जाता है। पूरे तार के झंकृत होने के साथ साथ तार का आधा, तिहाई, चौथाई आदि अंश भी झंकृत होता रहता है। पूरे तार की इस आंशिक झंकार से होने वाली ध्वनि को अंशनाद (partial or overtone) कहते हैं। पूरे तार के झंकृत होने पर यदि तार को बीच में सींक से छुआ जाय तो एक ऊँचे पिच की ध्वनि पैदा होगी जिसकी आवृत्ति (frequency) मूलनाद की आवृत्ति से दुगनी होगी; तिहाई अंश की तिगुनी होगी, चौथाई की चौगुनी...। विभिन्न अंशनाद आपस में और मूलनाद से अच्छी तरह समन्वित होकर ध्वनि में एकता ले आते हैं।

ताल—भारतीय सङ्गीत में गाने के साथ तबला बजाया जाना आवश्यक है क्योंकि तबला गायक को ताल देकर बेसुरा होने से बचा लेता है। मान लीजिए गायक अपने गाने से हवा में प्रति सेकंड ४२० आवृत्ति की नियमित ध्वनि-लहरें पैदा कर रहा है किन्तु दूसरे ही क्षण उससे ४२१ आवृत्ति की ध्वनि-लहर भी पैदा हो सकती है। अब ४२० और ४२१ आवृत्ति की ध्वनि लहरें एक बार तो आपस में मिलकर ध्वनि को तेज़ और दूसरी बार परस्पर अलग होकर ध्वनि को मन्द कर देंगी। ध्वनि की तेज़ी में इस प्रकार पड़ने वाले अन्तर को ताल (beat) कहा जाता है। किसी एक क्षण में तालों की संख्या ध्वनि-लहरों की आवृत्तिकी संख्या के बराबर होती है। ताल से ध्वनि-लहरों की आवृत्ति के अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर का पता चलाने में आसानी होती है जिससे गायक बेसुरा होने अर्थात् विभिन्न आवृत्ति की अनियमित ध्वनि-लहरें उत्पन्न करने से बच जाता है। सङ्गीत में ताल को इतना महत्व दिए जाने का यही कारण है।

ध्वनि का डूब जाना—शोरगुल में आवाज तभी सुनी जा सकती है जब कि वह शोरगुल से तेज़ हो। जब अनेक ध्वनि-लहरें एक ही श्रवण

यंत्र का उपयोग करना चाहती हैं तो तेज़ और मन्द आवाज़ की प्रतियोगिता में मन्द आवाज़ डूब जाती है। ध्वनि के मन्द पिच में ध्वनि को डुबो देने (masking) की क्षमता ऊँचे पिच से ज्यादा होती है। दो ध्वनि-लहरों की आवृत्ति-संख्या ज्यों ज्यों निकट आती है त्यों त्यों उनकी डुबो देने की क्षमता बढ़ती जाती है।

त्वचीय बोध

उत्तेजनाओं की अत्यधिक विषमता का अनुभव ठंढ, गर्मी, पीड़ा, स्पर्श, खुजली, गुदगुदी आदि त्वचीय बोध द्वारा होता है और प्राणी अपना शारीरिक तथा मानसिक संतुलन बनाए रखने के लिए उन विषमताओं से बच सकने की दिशा में व्यवहार करता है। त्वचीय बोध के स्थल त्वचा पर हर जगह कम या ज्यादा मात्रा में बिखरे होते हैं। किसी ठंढी नुकीली चीज को त्वचा पर हर जगह छुआने से जहाँ जहाँ वह बहुत ठंढी लगती है वहाँ ठंढ ग्रहण करने के स्थल होते हैं। इसी प्रकार गर्म चीज जहाँ ज्यादा गर्म लगती है वहाँ गर्मी ग्रहण करने के स्थल होते हैं। सुई को त्वचा पर हर जगह धीरे से चुभाने पर कहीं कहीं ज्यादा पीड़ा होती है क्योंकि वहाँ पीड़ा ग्रहण करने के स्थल होते हैं। यदि त्वचा को तिनके से छुआ जाय तो अनेक स्थलों पर कोई बोध नहीं होगा किन्तु कहीं कहीं स्पर्श की तीव्रता साफ मालूम पड़ेगी। ऐसी जगह त्वचा में स्पर्श के स्थल होते हैं। त्वचा में पीड़ा और स्पर्श के स्थल तापक्रम (ठंढ-गर्मी) के स्थलों से और ठंढ-स्थल गर्मी के स्थलों से अधिक होते हैं। ठंढ और गर्मी, स्पर्श और पीड़ा यही चार मुख्य त्वचीय बोध हैं। खुजली पीड़ा का प्रकार है और गुदगुदी स्पर्श का।

पीड़ा का अनुभव शरीर में लगभग हर जगह होता है। पीड़ा तब होती है जब कोई उत्तेजना अपनी शक्ति से ग्राहकों को विनाशक आघात पहुँचाती है। पीड़ा शरीर को खतरे की सूचना देती है किन्तु पीड़ा के प्रति

प्रतिक्रिया होने में बहुत समय लगता है। सुई चुभाने पर पीड़ा होने से पहले दबाव या शायद ठंढ का बोध होता है। शरीर के किसी भाग में होने वाली तेज पीड़ा अन्य स्थान पर होने वाली हलकी पीड़ा के बोध को दबा देती है। इसका कारण शायद अवधान (attention) में होता है।

ठंढ और गर्मी के स्थल − १० अंश से +७० अंश सेन्टीग्रेड की उत्तेजना के प्रति ही संवेदनशील होते हैं। इन अंशों से नीचे या ऊपर उत्तेजना की शक्ति ग्राहक के लिए विनाशक बन जाती है जिससे केवल पीड़ा का ही अनुभव होता है। त्वचा का तापक्रम लगभग ३३ सेन्टीग्रेड होता है और खून के तापक्रम से कम होता है। शारीरिक गर्मी शरीर से बाहर हवा की ओर निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। जब कोई उत्तेजना शरीर से ज्यादा गर्मी खींचकर हवा की ओर शारीरिक गर्मी के प्रवाह को बढ़ा देती है तो ठंढ लगती है और यदि शरीर को ज्यादा गर्मी देकर हवा की ओर शारीरिक गर्मी के प्रवाह की गति को घटा देती है तो गर्मी लगती है। त्वचा के तापक्रम ३३ सेन्टीग्रेड के आसपास के तापक्रम की उत्तेजना से ठंढ या गर्मी नहीं लगती इसलिए ३३ सेन्टीग्रेड को तापक्रम की त्वचीय-बोधशून्यता (physiological zero) कहा जाता है।

त्वचीय बोध का अनुशीलन—स्पर्श का विशेषकर दुर्बल उत्तेजना के स्पर्श का अनुशीलन बहुत जल्द होता है जिससे आपको अपने कपड़ों, उँगली में पहनी हुई अँगूठी आदि का दबाव अनुभव नहीं होता। स्पर्श के अनुशीलन का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। यदि कोई व्यक्ति हर प्रकार के शारीरिक कष्ट से बचता है तो वह स्पर्श की हर उत्तेजना के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है। जो लोग हर मौसम में अधखुले घूमते रहते हैं उनका अनुशीलन अधिक स्थायी बन जाता है। जिस चीज़ का अनुशीलन अस्थायी होता है उसके भावात्मक उत्तर-संवेदन (positive after-

sensation) का अनुभव होता है। पहली बार थोड़ी देर चश्मा लगाने के बाद उसे उतार देने पर भी लगता है कि चश्मा लगा हुआ है।

तापक्रम के अनुशीलन से तापक्रम की त्वचीय-बोधशून्यता (physiological zero) बदलती रहती है। आप अपने एक हाथ की उँगली को ज़रा ठंढे और दूसरे हाथ की उँगली को ज़रा गर्म पानी में कुछ देर रखिए। फिर दोनों उँगलियों को त्वचीय तापक्रम (३३ सेन्टीग्रेड) के पानी में डाल दीजिए। यह पानी आपकी ठंढे पानी में रक्खी गई उँगली को गर्म और गर्म पानी में रक्खी गई उँगली को ठंढा मालूम पड़ेगा क्योंकि ठंढे और गर्म पानी में रहने से आपकी उँगलियों के तापक्रम की त्वचीय-बोधशून्यता बदल चुकी थी।

मांसपेशीय बोध

मांसपेशियों और शारीरिक जोड़ों जैसे कोहनी, कलाई, एँड़ी, घुटनों आदि में भी ग्राहक होते हैं। इन ग्राहकों से धड़, अवयवों की स्थिति और स्थान-परिवर्तन का अनुभव होता है। यदि ये ग्राहक न होते तो चलना या खड़ा हो सकना दूभर बन जाता और शरीर की स्थिति जानने और उस पर नियंत्रण कर सकने के लिए हमें अपने शरीर को हर समय देखना पड़ता।

मांसपेशियों और शारीरिक जोड़ों में स्थित ग्राहक शरीर की स्थिति, मांसपेशीय आकुंचन (muscular contraction) और मांसपेशी में बाह्य गति से होने वाले प्रतिरोध (resistance) से उत्तेजित होते हैं और वस्तुओं के भार, उनकी कठोरता, चिकनेपन, खुरदरेपन आदि का ज्ञान कराते हैं। स्पर्श के साथ मांसपेशीय प्रतिरोध होने पर कठोरता का और मांसपेशीय प्रतिरोध न होने पर कोमलता का बोध होता है। स्पर्श से यदि मांसपेशियों में कम्पन हो तो खुरदरेपन का और यदि कम्पन न हो तो चिकनेपन का बोध होता है।

भूख, प्यास, भारीपन, घुटन, जलन आदि का बोध आन्तरिक शारीरिक क्रियाओं से होता है जिनके ग्राहक आन्तरिक अंगों में स्थित होते हैं। प्यास गला सूखने से लगती है और भूख आँतों के पारस्परिक रगड़ खाने से।

शारीरिक स्थिति का बोध

कान के भीतरी भाग में अर्धवृत्ताकार नालियाँ होती हैं जिनका सुनने से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे प्राणी को उसकी शारीरिक स्थिति अवगत कराती हैं। वेस्टीब्यूल और अर्धवृत्ताकार नालियों में लोम-कोष (hair-cells) होते हैं। सिर झुकाने या घुमाने पर अर्धवृत्ताकार नालियों में भरा तरल पदार्थ असंतुलित होकर लोम-कोषों को उत्तेजित कर देता है। लोम-कोषों के उत्तेजित होने से उनसे सम्बन्धित बोधवाहक स्नायु के रेशों में न्यूरोनीय प्रेरणा का प्रादुर्भाव होता है जो मनस् में पहुँचकर प्राणी को झुकने, घूमने आदि की शारीरिक स्थितियों का बोध कराती है। चक्कर आदि खाने पर जब अर्धवृत्ताकार नालियों में भरा तरल पदार्थ अस्थिर हो जाता है तो प्राणी अपनी शारीरिक स्थिति का बोध खो बैठता है और खड़ा न रह पाकर गिर पड़ता है।

स्वाद लेना

स्वाद का महत्व इसी से स्पष्ट है कि हम अपने जीवन के अनुभवों की अभिव्यक्ति बहुधा स्वादों की भाषा में किया करते हैं। हमें नींद मीठी आती है, सुन्दर मुख नमकीन नज़र आता है, हमारी तबियत खट्टी हो जाया करती है और कभी कभी जिन्दगी तल्ख़ (कड़ुवी) बन जाती है।

स्वादेन्द्रिय—रसना की सतह पर छोटे छोटे छेद होते हैं जिससे वह खुरदरी लगती है। इन छेदों के नीचे स्वाद-ग्राहक होते हैं। स्वादग्राहकों के एक समूह को स्वाद-कलिका (taste bud) कहा जाता है। प्रत्येक

स्वाद-कलिका कोषों का समूह होती है और उसकी शक्ल प्याज की छोटी गाँठ की तरह होती है (चित्र ३०) ।

स्वाद-कलिकाएँ रसना के अलावा गालों और ओंठों में भी होती हैं। वयस्क लोगों की अपेक्षा बच्चों में स्वाद-कलिकाओं की संख्या अधिक होती है। स्वाद के ग्राहकों के अतिरिक्त रसना में त्वचीय-संवेदन के ग्राहक भी होते हैं।
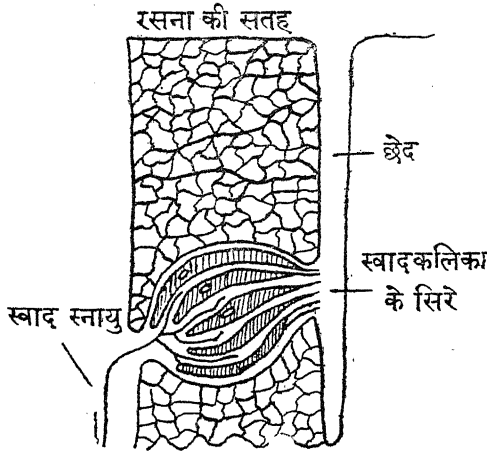
चित्र ३०

स्वाद के गुण—स्वाद के गुणों की संख्या बहुत सीमित होती है। मुख्य स्वाद केवल चार होते हैं : मीठा, नमकीन, खट्टा और कड़ुवा। अन्य प्रकार के स्वाद खाने वाली चीज़ के स्पर्श, तापक्रम और गन्ध से मिलकर बनते हैं। गन्ध और स्वाद में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। आपने चाय पी होगी ! अच्छा होता है न उसका स्वाद ? किन्तु शायद आपको आश्चर्य होगा कि चाय का स्वाद वस्तुतः कड़ुवा होता है किन्तु दूध, शक्कर, तापक्रम, स्पर्श और गन्ध ये सब मिलकर चाय में एक ऐसा जायका पैदा कर देते हैं

जिससे कवि सुन्दर युवती की भूरी आँखों की उपमा गर्म चाय के प्याले से दे डालते हैं, क्योंकि उन्हें भूरी आँखों में शायद वही रस मिलता है जो गर्म चाय पीने में। यदि आपकी नाक बन्द करके और बिना दिखाए रसगुल्ला खिलाया जाय तो वह आपको केवल मीठा ही लगेगा, 'रसगुल्ला' नहीं। हलवाई
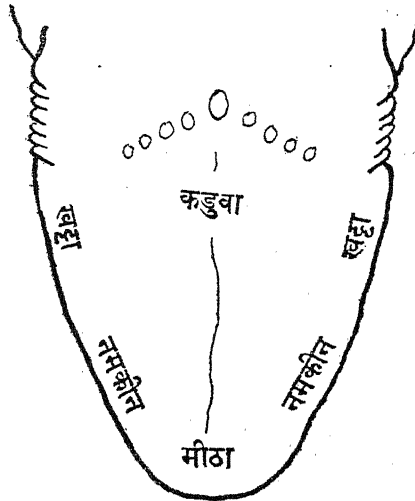
चित्र ३१

की दूकान के सामने से गुजरते हुए यदि आपकी जेब खाली हो तो फौरन दृष्टि फेरकर अपनी नाक बन्द कर लीजिए और फिर बर्फी, इमरती, खुरमा, रसमलाई, चमचम आदि की सार्थकता नष्ट हो जायगी और वे आपके लिए केवल 'मीठी चीज़ें' मात्र ही हो जायँगी। हमारी नाक बहुत से स्वादों की नाक रख लेती है।

स्वाद-स्थल—रसना का हर भाग चारों स्वादों के प्रति एक सा संवेदनशील नहीं होता। आगे का भाग मीठे के प्रति, पीछे का कड़ुवे के

प्रति और पार्श्व भाग खट्टे के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। नमकीन के लिए रसना की सतह का सारा भाग लगभग समान रूप से संवेदनशील होता है (चित्र ३१)।

स्वाद रासायनिक (chemical) संवेदन है इसलिए जब तक रसना पर रक्खी हुई चीज़ लार द्वारा घुलकर छेदों से स्वादकलिकाओं तक नहीं पहुँचती तब तक उस चीज़ का स्वाद नहीं मिल पाता। स्वाद लेने के लिए उत्तेजना को या तो पहले से ही घुला हुआ होना चाहिये या मुँह में जाकर लार द्वारा घुलने योग्य होना चाहिए। यदि आप पैसा मुँह में रख लें तो आपको उसका कोई स्वाद नहीं मिलेगा क्योंकि वह घुल सकने योग्य नहीं होता। हाँ, रसना में त्वचीय बोध के ग्राहक होने से पैसा आपको ठंढा अवश्य लगेगा। उत्तेजना रसना पर लार द्वारा घुलकर और छेदों में प्रविष्ट होकर स्वादकलिकाओं को उत्तेजित करती है। स्वादकलिकाओं के उत्तेजित होने पर स्वाद-स्नायु मनस् के स्वादक्षेत्र को जाग्रत करते हैं और हमें स्वाद का बोध होता है।

स्वाद-अनुशीलन—रसना भी अन्य ग्राहकों की भाँति स्वाद-उत्तेजनाओं से अपना अनुशीलन (adaptation) करती है। कोई स्वादिष्ट वस्तु रसना पर बहुत देर रहने के बाद फीकी सी लगने लगती है। नमकीन चीज़ खाने के बाद यदि कोई ऐसी चीज़ खाई जाय जिसमें चारों स्वाद मिले हों तो वह चीज़ नमकीन स्वाद न देकर शेष तीनों स्वाद ही देगी। स्वादों में विरोध भी होता है। पेड़ा खा लेने के बाद नारंगी बहुत खट्टी लगती है। नीबू खा लेने के बाद नारंगी अधिक मीठी लगती है।

सूँघना

बहुत से प्राणी अपने परिवेश का ज्ञान सूँघकर ही करते हैं। चींटी सूँघकर ही मीठी चीज़ों तक पहुँच जाती है। कुत्ते खाने योग्य वस्तुओं को

सूँघकर ही जानते हैं। सूँघने की शक्ति मनुष्यों की अपेक्षा अन्य प्राणियों में अधिक होती है क्योंकि अन्य प्राणियों में परिवेश को जानने के उत्तम साधनों जैसे देखना, सुनना आदि का उतना विकास नहीं हो पाया है जितना मनुष्य में हो चुका है। यद्यपि मनुष्य में सूँघने की शक्ति अन्य प्राणियों के बराबर नहीं होती तथापि वह भी अनेक उत्तेजनाओं में गन्ध के आधार पर ही भेद करता है।

नाक—गन्ध का अनुभव नाक द्वारा होता है। नाक के भीतर आँख की सीध से ज़रा ऊपर गन्ध-बल्ब (olfactory bulb) होता है जिसके सिरों पर महीन महीन रोएँ होते हैं। ये रोएँ ही गन्ध-ग्राहक होते हैं (चित्र ३२)। गन्ध की उत्तेजना हवा द्वारा जब नाक में प्रविष्ट होकर इन रोओं को छूती है तो उसका संवेदन गन्ध-स्नायु द्वारा मनस् के सूँघने के केन्द्र में पहुँचता है और हमें गन्ध का अनुभव होता है। गन्ध-ग्राहक चूँकि नाक के ऊपरी भाग में स्थित होते हैं इसलिए साँस लेने में नाक के अन्दर जो हवा आती जाती रहती है वह गन्ध-ग्राहकों को नहीं छू पाती और हमें गन्ध का अनुभव साधारणतया साँस लेते रहने से नहीं होता। यह चित्र ३२ में बने तीरों से स्पष्ट हो जायगा। सूँघने के लिए नाक द्वारा हवा को ज़ोर से ऊपर की ओर खींचना पड़ता है जिससे वह गन्ध-ग्राहकों को छू सके। गन्ध की उत्तेजना चूँकि हवा द्वारा ही नाक में जा सकती है इसलिए सूँघ सकने के लिए उत्तेजना को वायव्य (gaseous) रूप में होना चाहिए।

गन्ध के गुण—अपने मुख्य रूप में गन्ध छह तरह की होती है: जलने की, सड़ने की, राल की, मसालों की, फलों की और फूलों की। इन्हीं मुख्य गन्धों के मेल से विभिन्न प्रकार की सैकड़ों गौण गन्धें बनती हैं। बहुत सी गन्धों में स्वाद भी रहता है जैसे क्लोरोफ़ार्म सूँघने से मिठास का स्वाद मिलता है।

गन्ध-अनुशीलन—गन्धों का अनुशीलन गन्ध-ग्राहकों से बहुत जल्द होता है और अनुशीलन का प्रभाव भी बहुत जल्द मिटता है। इलायची पहले तो बड़ी सुगन्धित लगती है किन्तु ज़रा ही देर बाद ऐसा लगता है
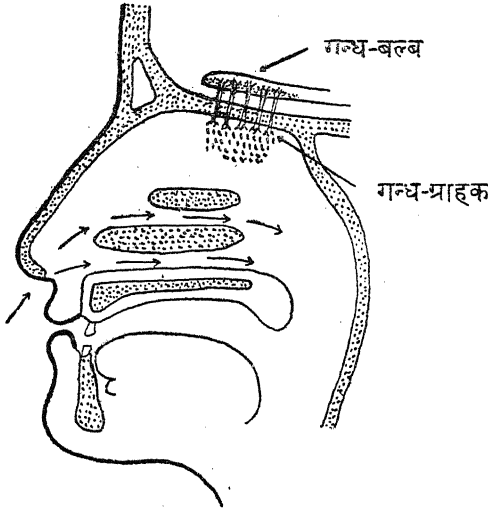
चित्र ३२

कि मानों उसमें गन्ध थी ही नहीं। इसका कारण शायद मनस् में गन्ध केन्द्रों की थकान होता है। किसी गन्ध का अनुशीलन उसी के समान गन्धों के प्रति संवेदनशीलता को कम कर देता है। कपूर को सूँघने के तत्काल बाद इलायची की गन्ध के प्रति संवेदनशीलता घट जाती है। कुछ तेज़ गन्धें जब फीकी पड़ती हैं तो उनका गुण बदल जाता है। सस्ते इत्रों में पहले तो ताजे फल की सी महक होती है किन्तु कुछ दिनों बाद उनकी महक खट्टी सी पड़ने लगती है।

दिशा और दूरी जानना

पदार्थों या उत्तेजनाओं में दिशा और दूरी होती है। हर पदार्थ या हर घटना हर जगह और हर समय नहीं होती। हम यह कैसे जानते हैं कि अमुक वस्तु हमसे आठ गज़ दूर है या कालिदास नामक व्यक्ति हमारे जन्म लेने से बहुत पहले ही जन्म ले चुका और मर चुका था? दिशा और दूरी का ज्ञान अनेक बोधांगों के साथ-साथ मिलकर क्रिया करने से होता है। दूरी का ज्ञान देखने, सुनने और त्वचीय बोध से होता है। दिशा का ज्ञान मांसपेशीय और त्वचीय बोध से होता है। दाएँ, बाएँ, आगे, पीछे का ज्ञान शरीर के प्रसंग से किया जाता है। दिशा-ज्ञान गुरुत्वाकर्षण शक्ति पर भी निर्भर होता है। सीधे खड़े हो सकने के लिए प्राणी को गुरुत्वाकर्षण शक्ति के विरुद्ध अपना संतुलन करना पड़ता है। यदि प्राणी पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रभाव न पड़ता और यदि उसकी शरीर-रचना किसी और ढंग की हुई होती तो उसका दिशा और दूरी का ज्ञान भी कुछ और ही तरह का होता।

स्पर्श से उत्तेजना की स्थिति जानना—यदि आपके शरीर के किसी अंग का स्पर्श किया जाय तो आप स्पर्श किए जाने वाले स्थान को सही-सही बता देते हैं। यदि आप आँख बन्द कर लें और आपके शरीर के किसी भाग पर कोई चीज़ चुभोई जाय तो आप सही-सही बता देंगे कि वह कहाँ चुभोई गई थी। हो सकता है कि आपसे थोड़ी गलती हो जाय किंतु वह नहीं के बराबर होगी। शरीर के जो भाग ज्यादा संवेदनशील होते हैं वहाँ स्पर्श का ज्ञान सबसे अधिक होता है। स्पर्श से उत्तेजना की सही-सही स्थिति जानना कैसे संभव होता है? क्या आपने उसे सीखा था या वह जन्मजात थी?

इस प्रश्न का एक पुराना उत्तर यह है कि जब एक ही उत्तेजना शरीर के दो भागों पर दी जाती है तो शरीर के विभिन्न स्थानों के अनुसार उस उत्तेजना के संवेदन के गुण (quality) में भेद होता है जिसके अनेक

कारण हो सकते हैं, जैसे विभिन्न अंगों की संवेदनशीलता का अन्तर, शरीर में ग्राहकों का असमान वितरण, उत्तेजना के दबाव का प्रतिरोध करने वाले पुट्ठों की विशेषता, इत्यादि। किंतु हम नहीं जानते कि ये बातें स्पर्श से उत्तेजना की स्थिति जानने में कहाँ तक सहायक बनती हैं। बच्चों और छोटे पशुओं के व्यवहार से यह स्पष्ट है कि स्पर्श से उत्तेजना की स्थिति जान सकने की क्षमता जन्मजात होती है। किंतु सीखने से उत्तेजता की बिल्कुल सही स्थिति जान सकने में सुधार अवश्य होता है।

ध्वनि से स्थिति जानना—उत्तेजना की दिशा और दूरी ध्वनि से भी जानी जाती है। ध्वनि की स्थिति ध्वनि पैदा करने वाली उत्तेजना की तीव्रता के अनुपात से पता चलती है। तेज़ ध्वनि पास लगती है और धीमी दूर। दूर से आने वाली ध्वनि के घनत्व (volume) और टिम्बर (timbre) में भी अन्तर होता है इसलिए दूरी का ज्ञान ध्वनि के घनत्व और टिम्बर से भी होता है।

ध्वनि से दिशा का ज्ञान दोनों कानों के परस्पर सहयोग से होता है। ध्वनि-लहरें चाहे दाहिनी ओर से आएँ या बायीं ओर से उनका प्रभाव दोनों कानों पर अलग-अलग पड़ता है। कोई न कोई कान ध्वनि की उत्तेजना के थोड़ा पास पड़ता है किंतु ध्वनि की तेज़ी दोनों कानों में भारी अन्तर डालती है। ध्वनि जिस कान के लिए तेज़ होती है उत्तेजना की स्थिति उसी ओर समझ ली जाती है।

ध्वनि से स्थिति जानने पर मानसिक विन्यास का प्रभाव—ध्वनि का उद्गम दृष्टिगोचर होने पर हम ध्वनि उसी उद्गम से आने की आशा करते हैं और ध्वनि वहीं से आती हुई लगती है। यदि कोई व्यक्ति हमारे बायें तरफ बोले और उसकी आवाज किसी यंत्र की सहायता से दाहिने कान में पड़े तो भी हमें आवाज का उद्गम बायीं ओर ही मालूम होगा. क्योंकि हमारा मानसिक विन्यास ध्वनि को बायीं ओर से ही सुनने का बन जाता

है। मानसिक विन्यास की प्रधानता के कारण ही सिनेमा देखते समय आवाज अभिनेताओं के मुँह से अलग अलग निकलती सुनाई देती है जब कि उसका वास्तविक उद्गम पर्दे के पीछे एक निश्चित स्थान से होता है।

दृष्टि से उत्तेजना की स्थिति जानना—उत्तेजना की स्थिति (दिशा और दूरी) का ज्ञान दृष्टि से भी होता है। मनस् को अपनी स्थिति का बोध कराने वाले कुछ संकेत (cue) तो उत्तेजनाओं में ही होते हैं। उत्तेजना के ऊपर या नीचे, दाएँ या बाएँ होने का संकेत नेत्रपटल पर बनने वाले उसके प्रतिबिम्ब के कोण से होता है। पूरी और स्पष्ट रूप रेखाओं वाली उत्तेजनाएँ अधूरी या धुँधली रूप रेखा वाली उत्तेजनाओं से ज्यादा नजदीक दिखाई पड़ती हैं (चित्र ३३)।
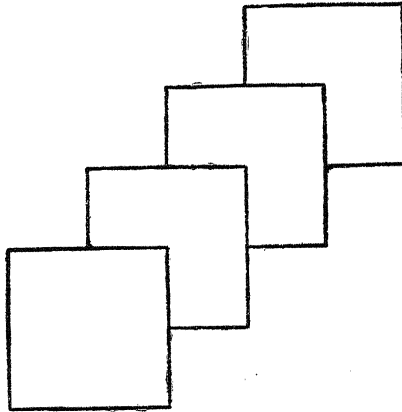
चित्र ३३

उत्तेजनाओं की दूरी का संकेत नेत्रपटल पर बनने वाले उनके प्रतिबिम्ब के आकार पर भी निर्भर होता है। समीपवर्ती उत्तेजनाओं का प्रतिबिम्ब नेत्रपटल के ज्यादा भाग पर पड़ता है और दूरस्थ उत्तेजनाओं का कम

भाग पर। जो उत्तेजना नेत्रपटल के ज्यादा भाग पर प्रतिबिम्ब डालती है वह पास और जो कम भाग पर डालती है वह दूर लगती हैं (चित्र ३४)।
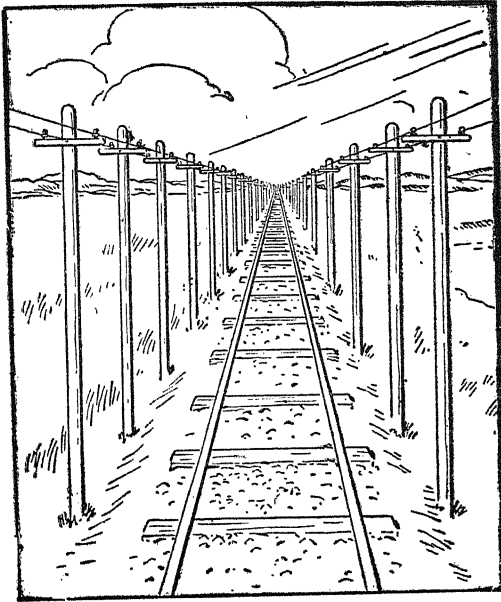
चित्र ३४

दूरी के ज्ञान में नेत्रीय अनुशीलन—दूरी का ज्ञान उत्तेजनाओं के संकेत से ही न होकर नेत्रीय अनुशीलन (accommodation) से भी होता है। दूरस्थ उत्तेजनाओं का प्रतिबिम्ब नेत्रपटल पर ठीक से डालने के लिए आँख का लेंस फैलता है जिससे सीलियरी (ciliary) मांसपेशी का तनाव कम हो जाता है। समीपवर्ती उत्तेजनाओं का प्रतिबिम्ब नेत्रपटल पर अच्छी तरह केन्द्रित कर सकने के लिए लेंस की गोलाई बढ़ती है जिससे

सीलियरी मांसपेशी में अधिक आकुंचन (contraction) होने से तनाव बढ़ जाता है। नेत्रीय अनुशीलन में सीलियरी मांसपेशी पर जितना अधिक तनाव पड़ता है उत्तेजना उतनी ही पास और जितना कम तनाव पड़ता है उतनी ही दूर मालूम पड़ती है।

उत्तेजनाओं की गहराई और ठोसपन का ज्ञान प्रकाश और छाया के सम्मिलित प्रभाव से होता है। चित्रकार प्रकाश और छाया द्वारा ही चित्रों में गहराई, ठोसपन और उभरेपन का प्रभाव पैदा करते हैं। उत्तेजना की दूरी, दिशा और आकार का ज्ञान एक आँख से भी किया जा सकता है किन्तु गहराई और ठोसपन का ज्ञान एक आँख से अच्छी तरह नहीं हो पाता। गहराई और ठोसपन का ज्ञान भली भाँति करने के लिए दोनों आँखों से देखने की अपेक्षा होती है। ठोस उत्तेजना का प्रतिबिम्ब दोनों आँखों पर एक सा नहीं पड़ता। ठोस वस्तु को देखने में दोनों आँखें एक ही उत्तेजना के दो विभिन्न संगठनों को मनस् के न्यूरोनों में भेजती हैं। उनमें से एक अकेला संगठन उत्तेजना के चपटे रूप को ही दिखाता है। किन्तु वही दोनों विभिन्न संगठन जब नेत्रपटल पर समन्वित होते हैं तो उत्तेजना का ठोसपन सजीव बन जाता है। ठोसपन का गुण दोनों संगठनों में अलग अलग नहीं होता वरन् उनके मिलने से पैदा होता है। यह अनुभव आप किसी ठोस वस्तु को एक आँख और दोनों आखों से देखने पर कर सकते हैं। सीढ़ियाँ उतरते समय एक आँख बन्द कर लीजिए। देखिए कहीं आप गिर न पड़ें!

समय जानना

सामाजिक व्यवहार में समय की आवश्यकता बहुत पड़ती है हमें हर काम समय से करना पड़ता है। दैनिक जीवन में 'आज', 'कल', 'परसों', 'अभी' आदि की अनिवार्यता पर कुछ कहना अनावश्यक है। समय के ज्ञान में 'देर' (duration) का अनुभव होता है और हमारे सारे कार्य-

क्रम 'देर' के आधार पर ही बनते हैं। हम हर काम उतनी ही देर में कर लेना चाहते हैं जितनी 'देर' उसमें लगना चाहिए।

आज तो हमारे पास 'देर' (duration) जानने के लिए घड़ियाँ हैं, दिन हैं, तारीखें हैं, किन्तु 'देर' जानने के इन साधनों के विकास के पीछे एक बड़ा रोचक इतिहास है। सभ्यता के शैशव काल में मनुष्य 'देर' का अनुमान रात और दिन, मौसम के परिवर्तन और चाँद के घटने-बढ़ने से करता था। 'देर' का अनुमान प्राकृतिक शक्तियों के प्रकट और अप्रकट होने के आधार पर किया जाता था।

'देर' (duration) का अनुमान अवधान के विभाजन पर भी निर्भर होता है। अवधान का विभाजन नष्ट हो जाने पर समय का ध्यान नहीं रह जाता। किसी काम में तन्मयता से लग जाने पर अवधान का विभाजन नष्ट हो जाता है और हम यह अनुमान कर सकने में असमर्थ रहते हैं कि हमें काम करने में कितनी 'देर' लगी। 'देर' के अनुमान पर संचारीभावों (emiotions) का भी प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे प्राणी में उद्दीपन पैदा करके उसके अवधान के विभाजन को नष्ट कर देते हैं। अत्यधिक शारीरिक उद्दीपन में समय की सुध नहीं रहती।

देर के अनुमान पर देर के अन्दर होने वाली घटनाओं की संख्या का भी प्रभाव पड़ता है। घटनाओं की संख्या जितनी अधिक होती है समय उतना ही 'लम्बा' लगता है। काम में व्यस्त आदमी का 'दिन लम्बा' होता है।

मन लगा लेने वाले कामों में लगने वाली 'देर' लम्बी नहीं लगती क्योंकि मन लगने से अवधान का विभाजन नहीं हो पाता और समय जल्द कट जाता है। तबियत उबाने वाले दिन काटे नहीं कटते। आप शिक्षालय में पाँच घंटे रहते हैं किन्तु वे पाँच घंटे आपको पहाड़ के समान लगते हैं किन्तु खेल कूद के पाँच घंटे जल्दी बीत जाते हैं।

'देर' के अनुभव के विषय में एक प्रचलित सिद्धान्त यह है कि मनस् शारीरिक क्रियाओं, साँस लेने और नाड़ी चलने की गति आदि को 'गिनता' है जिससे हमें 'देर' का अनुभव होता है। हमारा शरीर स्वयं 'देर' और समय बताने वाली एक 'रासायनिक घड़ी' है। बुखार और शरीर के अस्वस्थ होने पर यह 'रासायनिक घड़ी' तेज चलने लगती है जिससे समय जल्द बीतता है। समय के ज्ञान पर शारीरिक परिवर्तनों का भी प्रभाव पड़ता है। बचपन में शारीरिक परिवर्तन शीघ्रतापूर्वक होते हैं जिनकी तुलना में समय की गति मन्द लगती है। वृद्धावस्था में शारीरिक परिवर्तन शीघ्रतापूर्वक नहीं होते इसलिए बुढ़ापे में समय जल्दी बीतता सा लगता है। इन सिद्धान्तों के सच हो सकने का थोड़ा बहुत आधार समय-ज्ञान की परीक्षाओं से मिल चुका है।

गति को जानना

गति का ज्ञान बोधवाहक धरातल के क्रमिक रूप से उत्तेजित होने पर होता है। बदन पर चीटीं के चलने से त्वचा के बोधवाहक ग्राहक क्रमशः उत्तेजित होते चले जाते हैं जिससे हमें चीटीं के रेंगने का ज्ञान होता है। गति का ज्ञान मांसपेशियों के आकुंचन और फैलाव से भी होता है। हाथ हिलाने पर कुछ मांसपेशियों में आकुंचन होता है और उनकी विरोधी मांसपेशियों में फैलाव जिससे हाथ में गति मालूम पड़ती है।

गति का ज्ञान एक सीमा के भीतर ही होता है। घड़ी की बड़ी सुई गतिशील लगती है किन्तु छोटी नही लगती। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि आँख से दो गज दूर पर प्रति सेकंड २ मिलीमीटर से कम रफ़्तार और १५० मिलीमीटर से ज्यादा रफ़्तार से गतिशील वस्तुओं की गतिशीलता दिखाई नहीं पड़ती। उत्तेजना जितनी दूर होती है उसकी गति उतनी ही धीमी मालूम पड़ती है। गतिशीलता का अनुमान कर सकने में गलती होती

है और वह दुर्घटना का कारण बन सकती है। अभ्यास से गतिशीलता के अनुमान को बहुत कुछ उन्नत किया जा सकता है।

गतिशीलता के भ्रम

स्थिर और ध्रुव उत्तेजनाओं को गतिशील समझना और गतिशील उत्तेजनाओं का गतिहीन लगना गतिशीलता के भ्रम हैं। आपने बादलों की ओट में चाँद को भागते देखा होगा। किन्तु चाँद नहीं भागता, भागते तो बादल हैं। गतिशीलता देखने के लिए कोई न कोई ध्रुव पृष्ठभूमि होना चाहिए। विस्तृत आकाश में बादलों के भागने का अनुमान करने के लिए कोई ध्रुव पृष्ठभूमि नहीं मिलती इसलिए चाँद भागता सा लगता है क्योंकि बादल चाँद के भागने का अनुमान कराने की ध्रुव पृष्ठभूमि बन जाते हैं। गतिशीलता का अनुभव अपने परिवेश की ध्रुवता के प्रसंग से भी होता है। स्टेशन पर खड़ी रेलगाड़ी में बैठे रहने पर आपने अनुभव किया होगा कि जब पास खड़ी कोई दूसरी गाड़ी चलती है तो आपको लगता है कि आपकी ही गाड़ी चल रही है। दूसरी गाड़ी आपके ध्रुव परिवेश का अंग बन चुकती है जिससे उसकी ध्रुव पृष्ठभूमि के प्रसंग में आप गति का आरोप अपनी गाड़ी पर कर बैठते हैं।

आप दीवार को पृष्ठभूमि बनाकर अपने किसी हाथ की उँगली नाक की सीध में कर लीजिए। अब आप दोनों आँखों को बारी बारी बहुत जल्द बन्द करते और खोलते रहिए। आपको लगेगा कि उँगली इधर उधर चल रही है। यदि आप एक आँख बन्द करने और दूसरी खोलने में ·०६ सेकंड से ज्यादा लगाएँ तो उँगली गतिशील नहीं लगेगी। मनोविज्ञान में आपके इस अनुभव को फाई-व्यापार (phi-phenomenon) कहा जाता है।

सिनेमा के चित्र आपको चलते फिरते दिखाई देते हैं किन्तु वास्तव में उनमें गति नहीं होती। उनको इस तरह दिखाया जाता है कि ·०६ सेकंड

में आँख के सामने लगातार १७ चित्र आते हैं जिससे उनकी १७ विभिन्न और ध्रुव स्थितियों में ऐसा संगठन हो जाता है कि वे चलते फिरते मालूम होने लगते हैं। नेत्रपटल पर पहले चित्र से बना प्रतिबिम्ब हटने से पहले ही दूसरे चित्र का, दूसरे के बाद तीसरे का··· प्रतिबिम्ब बनता जाता है और उन सब के संगठन से चित्रों में गतिशीलता का अनुभव होने लगता है।

प्रश्न

१—ग्राहकों में आँख का महत्व बताते हुए उसके विभिन्न भागों की रचना को चित्र बनाकर स्पष्ट कीजिए।

२—देखने की क्रिया कैसे सम्भव होती हैं और उसमें आँख के विभिन्न भागों का क्या स्थान होता है ?

३—दृष्टि संवेदन का क्षेत्र मनस् में कहाँ होता है और वह दोनों आँखों से किस तरह सम्बन्धित होता है ? चित्र बनाकर दिखाइए।

४—गोधूलि-बेला में रंगों के दिखाई न देने का क्या कारण है ?

५—रंगों का वर्गीकरण करते हुए रंगों के विरोध को विस्तार से समझाइए।

६—अँधेरे कमरे में से चिलचिलाती धूप में आने पर आँखें क्यों चौंधिया जाती हैं ? पर्किन्जे व्यापार का उल्लेख करते हुए व्याख्या कीजिए।

७—प्रकाश की उत्तेजनाओं का अन्तर बताते हुए रंग की ध्रुवता का कारण समझाइए।

८—रंगों की विविधता का क्या कारण है? इस प्रसंग में रंग घोलने के किसी तरीके का वर्णन कीजिए।

९—उत्तर-संवेदन किसे कहते हैं? उत्तर-संवेदन के भेदों को स्पष्ट करते हुए उनका कारण बताइए।

१०—रंग-विषयक यंग-हेल्महोल्त्स सिद्धान्त के आधार पर रंग घुलने और विषमोत्तर-संवेदन की व्याख्या कीजिए।

११—रंग घोलने का क्या तात्पर्य है? इस प्रसंग में रंग घुलने के नियमों का उल्लेख कीजिए।

१२—कान के विभिन्न भागों की रचना चित्र बनाकर दिखलाइए।

१३—कान के भीतरी भाग की रचना चित्र द्वारा स्पष्ट करते हुए यह बताइए कि सुनने के समय भीतरी कान में क्या होता है और भीतरी कान मनस् के किस क्षेत्र से और किस तरह सम्बन्धित होता है?

१४—सुनने की उत्तेजना क्या है और उसमें क्या भेद होते हैं?

१५—कभी कभी आप अपने परिचितों को बिना देखे केवल उनकी आवाज़ मात्र सुनकर ही पहचान लेते हैं। इसका कारण समझाइए।

१६—मूलनाद और अंशनाद किसे कहते हैं? संगीत में क्या ताल का होना जरूरी है? क्यों?

१७—त्वचीय-बोध और उसके प्रमुख रूपों पर प्रकाश डालिए।

१८—चक्कर खाने पर व्यक्ति स्थिर न रहकर डगमगाने क्यों लगता है?

१९—स्वाद के गुणों का उल्लेख करते हुए स्वादेन्द्रिय का चित्र बनाइए और स्वाद लेने का वर्णन कीजिए।

२०—गन्ध के प्रमुख गुण क्या हैं और उनका अनुभव कैसे होता है ? क्या स्वाद और गन्ध में कोई सम्बन्ध है ?

२१—त्वचीय-बोध, स्वाद लेने और सूँघने के अनुशीलन पर टिप्पणियाँ लिखिए।

२२—दिशा और दूरी का ज्ञान कराने में विभिन्न ग्राहकों की क्रियाओं का उल्लेख कीजिए।

२३—'दूरी जानने के संकेत उत्तेजनाओं के अतिरिक्त शरीर में भी होते हैं।' इस कथन के आशय की व्याख्या कीजिए।

२४—क्या आप काने आदमी को भरे बाज़ार में तेज़ सवारी चलाने की आज्ञा देने के पक्ष में हैं ? कारण बताइए।

२५—'देर' जानने के संकेतों का वर्णन करते हुए उदाहरण सहित यह समझाइए कि 'देर' जानने पर किन बातों का प्रभाव पड़ता है।

२६—गति का ज्ञान कैसे होता है ? इस प्रसंग में गतिशीलता के कुछ भ्रमों का उल्लेख कीजिए।

२७—फाई-व्यापार का उत्तर-संवेदन से यदि कोई सम्बम्ध हो तो उसे स्पष्ट कीजिए।

५

संचारी भाव

...जीवनदास के मुख पर वर्णहीन संकल्प अंकित था। वह संकल्प जो आत्महत्या का सूचक है। वे बिछौने से उठे मगर हाथ पैर थर थर काँप रहे थे। कमरे की प्रत्येक वस्तु उन्हें आँख फाड़ फाड़कर देखती हुई सी जान पड़ती थी। अलमारी के शीशे में अपनी परछाईं दिखाई दी। चौंक पड़े, वह कौन? ख्याल आ गया, यह तो अपनी छाया है। उन्होंने अलमारी से एक चम्मच और एक प्याला निकाला। प्याले में वह जहरीली दवा थी जो डाक्टर ने उनकी छाती पर मलने के लिए दी थी। प्याले को हाथ में लिए चारों ओर सहमी हुई दृष्टि से ताकते हुए वह प्रभावती के सिरहाने आकर खड़े हो गए। हृदय में करुणा का संचार हुआ। "आह! (जिसकी माँग में सिन्दूर भरा था उसे) क्या मेरे ही हाथों मरना लिखा था? मैं ही इसका यमदूत बनूँगा! यह अपने ही कर्मों का फल है। मैं आँखें बन्द करके वैवाहिक बन्धन में फँसा...यह उसी अदूरदर्शिता का परिणाम है कि आज मैं यह दुर्दिन देख रहा हूँ।"

हठात् उनके पैरों में कम्पन हुआ, आँखों में अँधेरा छा गया, नाड़ी की गति बन्द होने लगी। वे करुणामयी भावनाएँ मिट गईं...वे सँभल कर झुके और प्याले में दवा का एक चम्मच निकालकर प्रभावती के मुँह में डाल दिया...प्याले को रखते ही उनके काँपते हुए पैर स्थिर हो गए, मूर्च्छा के सब लक्षण जाते रहे। चित्त पर भय का प्रकोप हुआ।

वह कमरे में एक क्षण भी न ठहर सके...घर से इस तरह बाहर निकले जैसे किसी ने उन्हें ढकेल दिया हो...घर सड़क पर था। द्वार पर ताँगा मिला। उस पर जा बैठे...(ताँगेवाले ने यह समझकर कि वे स्टेशन जायँगे उन्हें स्टेशन पहुँचा दिया)।

गाड़ी के आने में घण्टों की देर थी। जीवनदास प्लेटफार्म पर जाकर टहलने लगे। धीरे-धीरे उनकी गति तीव्र होने लगी मानों कोई उनका पीछा कर रहा हो। जाड़े के दिन थे। लोग सरदी के मारे अकड़े जाते थे, किन्तु जीवनदास को ओढ़ने-बिछाने की भी सुधि न थी। उनकी चैतन्य शक्ति नष्ट हो गई थी; केवल अपने दुष्कर्म का ज्ञान जीवित था। ऐसी शंका होती थी कि प्रभावती मेरे पीछे दौड़ी चली आती है; कभी पड़ोसियों के धर-पकड़ की आवाज कानों में आती थी। उनकी कल्पना प्रतिक्षण उत्तेजित होती जाती थी, यहाँ तक कि वह भय से माल के बोरों के बीच में जा छिपे। एक-एक मिनट पर चौंक पड़ते थे और सशंक नेत्रों से इधर उधर देखकर फिर छिप जाते थे। उन्हें अब यह भी स्मरण न रहा कि मैं यहाँ क्या करने आया हूँ, केवल अपनी प्राण रक्षा का ज्ञान शेष था। वे उन बोरों के बीच में इस तरह पैंतरे बदल रहे थे मानों बोरे उन्हें घेरना चाहते हों...

यह है प्रेमचन्द की 'प्रारब्ध' नामक कहानी के पात्र लाला जीवनदास के मन में क्रमिक रूप से उठने वाले भावों का एक वर्णन। मृत्युशय्या पर पड़े लाला जीवनदास अपने बचने की कोई उम्मीद न देखकर अपनी पत्नी प्रभावती को वैधव्य के कलंक से बचाने के लिए उसे ज़हर देकर अपने मरने से पहले ही मार डालना चाहते थे। हत्या करने के कठोर संकल्प से उनका मुख वर्णहीन हो गया। जब वे अलमारी से ज़हर निकालने गए तो उनके मन का चोर उनकी परछाई से ही डर गया। अपनी पत्नी के पास पहुँचे तो दिल पसीजने लगा लेकिन उनके वर्णहीन संकल्प ने विजय पाई और

उन्होंने दिल पर पत्थर रखकर अपनी पत्नी को ज़हर पिला दिया। इसके बाद उनको डर लगा और वे घर से भागे, उनके कान बजने लगे। उन्हें हर चीज़ मुँह बाए खाने को दौड़ती दिखाई पड़ने लगी।

यह तो रहा भय-संचार का चित्रण। अब ज़रा यह देखिए कि घृणा का संचार कैसे होता है। पं० चोखेलाल शर्मा एक पत्रिका के सम्पादक थे। अपनी पत्नी का देहान्त होने के बाद वे स्त्रियों से विशेष अनुराग रखने लगे। अपनी पत्रिका की लेखिकाओं के प्रति उनकी बड़ी कृपादृष्टि रहती थी और वे उनकी रचनाओं की प्रशंसा करने ही से न थकते वरन् उन्हें निमंत्रण देने से भी न चूकते। आखिरकार एक लेखिका ने उनका निमंत्रण स्वीकार कर ही तो लिया।

...आज कामाक्षी का शुभागमन है।

शर्मा जी ने प्रातःकाल हजामत बनवाई, साबुन और बेसन से स्नान किया। (नाखूनी किनारे की) धोती, कोकटी का ढीला चुन्नटदार कुरता पहना और मलाई के रंग की रेशमी चादर डाल ली। इस ठाठ से आकर दफ़्तर में बैठे तो सारा दफ़्तर गमक उठा। दफ़्तर की भी खूब सफ़ाई करा दी गई थी। बरामदे में गमले रखवा दिए गए थे, मेज़ पर गुलदस्ते सजा दिए गए थे। गाड़ी नौ बजे आती है, अभी साढ़े आठ बजे हैं। इस परेशानी में कोई काम नहीं हो रहा है। बार बार घड़ी की ओर ताकते हैं, फिर आईने में अपनी सूरत देखकर टहलने लगते हैं...

ठीक साढ़े नौ बजे चपरासी ने आकर एक कार्ड दिया। लिखा था—'कामाक्षी'।

शर्मा जी ने उसे देवी जी को लाने की अनुमति देकर एक बार फिर आईने में अपनी सूरत देखी और एक मोटी सी पुस्तक पढ़ने लगे, मानों स्वाध्याय में तन्मय हो गए हों। एक क्षण में देवी जी ने कमरे में कदम रक्खा। शर्मा जी को उनके आने की खबर न हुई।

देवी जी डरते-डरते समीप आ गईं तब शर्मा जी ने चौंक कर सिर उठाया मानों समाधि से जाग पड़े हों और खड़े होकर देवी जी का स्वागत किया। मगर यह वह मूर्ति न थी जिसकी उन्होंने कल्पना कर रक्खी थी। यह एक काली, मोटी, अधेड़, चंचल औरत थी जो शर्मा जी को इस तरह घूर रही थी मानों उन्हें पी जायगी। शर्मा जी का सारा उत्साह, सारा अनुराग ठंढा पड़ गया। वह सारी मन की मिठाइयाँ जो वे महीनों से खा रहे थे, पेट में शूल की भाँति चुभने लगीं। कुछ कहते-सुनते न बना...

देवी जी एक बड़ा सा पुलिन्दा मेज़ पर पटककर रूमाल से मुँह पोंछकर बोलीं..."आपके प्रोत्साहन का यह शुभ फल है कि मैंने इतनी कविताएँ रच डालीं...कहिए तो दो-चार सुनाऊँ।"...और अनुमति की प्रतीक्षा न कर तुरन्त पुलिन्दा खोलकर एक कविता सुनाने लगीं। शर्मा जी को ऐसा मालूम होने लगा जैसे कोई भिगो भिगोकर जूते मार रहा है। कई बार उन्हें मतली आ गई जैसे एक हज़ार गधे कानों के पास खड़े होकर अपना स्वर अलाप रहे हों...

लाला जीवनदास और पं० चोखेलाल शर्मा की भाँति विषम परिस्थितियों में पड़ने पर प्रत्येक प्राणी के मन में उसकी स्थिति विशेष के अनुकूल भावों का संचार होता है और उन भावों के संचार से उसकी तत्कालीन शारीरिक या मानसिक दशा में विकार उत्पन्न होता है जिसका प्रभाव उसकी प्रतिक्रियाओं पर पड़ता है। क्रोध, डर, घृणा, प्रेम, लज्जा, दया, करुणा, हर्ष, उत्सुकता आदि भावों का संचार प्रतिक्रिया पर प्रभाव डालता है और चूँकि मनोविज्ञान में प्राणी के प्रतिक्रियात्मक पक्ष का अध्ययन किया जाता है इसलिए उसकी प्रतिक्रियाओं पर प्रभाव डालने वाले भावों के अध्ययन की अवहेलना नही की जा सकती।

भावों का संचार कब होता है ?

भावों का संचार उद्देश्यमूलक होता है। प्रत्येक भाव के संचार के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य रहता है। प्रेमचन्द के 'रसिक सम्पादक' पं० चोखेलाल शर्मा का मन कामाक्षी को देखने से पहले जिन अनुरागमय कोमल भावों की तरंगों पर तैर-तैर कर हिलकोरे खा रहा था और अन्दर ही अन्दर उछल रहा था उसके पीछे उनकी कल्पना की प्रतिमूर्त्ति कामाक्षी जैसी सुन्दरी से सम्भाषण का आनन्द लेने का उद्देश्य था।

किंतु भावों का संचार उद्देश्य के पराजित होने से भी होता है। जब चोखेलाल जी की कल्पित सुन्दरी 'काली, मोटी और अधेड़' निकली तो उनका उद्देश्य पराजित हो गया और उसने उनमें घृणा के भाव का संचार कर दिया। घृणा के संचार से उनकी 'मन की मिठाइयाँ जिन्हें वे महीनों से खा रहे थे पेट में शूल की तरह चुभने लगीं' और कामाक्षी (नामक उत्ते-जना) के प्रति उनकी प्रतिक्रिया बदल गई जिससे कामाक्षी के कविता सुनाने पर उन्हें 'ऐसा मालूम होने लगा जैसे कोई भिगो भिगोकर जूते मार रहा हो' या 'एक हज़ार गधे कानों के पास खड़े होकर अपना स्वर अलाप रहे हों।' अपना दिल टटोलिए। यदि आप भी कभी चोखेलाल जी की परिस्थिति में पड़े होंगे तो आपको भी यही अनुभव हुआ होगा। क्यों ?

भावों का संचार उद्देश्य के अप्रत्याशित या सहज रूप से पूरा हो जाने पर भी होता है। सुन्दर स्त्री से सम्भाषण करने की इच्छा चोखेलाल जी की तरह सबको और आपको भी रहती है और यदि वह सुयोग आपको यात्रा करने या अन्य किसी परिस्थिति में बिना प्रयत्न के ही दैवात् मिल जाय तो आपमें अनुराग के कोमल भावों का संचार हो जायगा और आपकी बाछें खिल जाएँगी। उस समय आप हर्ष से फूले नहीं समाएँगे और आपका 'मन नाचने' लगेगा। यदि आप किसी अनिन्द्य सुन्दरी से विवाह करने के

प्रयत्नशील हों और आपको सफलता भी मिल रही हो उस समय यदि, ईश्वर न करे, किसी दुर्योग से आपके सारे किए-कराए पर पानी फिर जाय तो ऐसे भावों का संचार होगा जिससे आपका 'मन बैठ जायगा' और 'हाथों के तोते उड़ जाएँगे ।'

भावों का संचार कोई जघन्य काम करने के पहले या कर डालने के बाद उस पर विचार करने से भी होता है। जीवनदास के मन में अपनी पत्नी को ज़हर देने से पहले और ज़हर दे डालने के बाद भय का संचार हुआ था जिससे वे अपना मानसिक संतुलन खोकर अनर्गल व्यवहार करने लग गए थे। रात में भूत-प्रेतों की कहानियाँ पढ़ने या ख्याल आने से मन में अक्सर भयमिश्रित सिहरन का संचार हो जाता है।

क्रोध, डर, घृणा, प्रेम, लज्जा, करुणा, भय, हर्ष, उत्सुकता, प्रफुल्लता आदि असंख्य भाव ऐसे हैं जो हमारे मन में सदा नहीं रहते। उनका संचार अवसर और परिस्थिति विशेष में ही होता है इसलिए उन्हें संचारी-भाव (emotions) कहा जाता है।

संचारी भाव क्या हैं ?

यों तो प्रत्येक व्यक्ति संचारी भावों को जानता है किन्तु उनकी निश्चित परिभाषा कर सकना या भाषा द्वारा उनका वर्णन कर सकना अत्यन्त कठिन है। हाँ, संचारी भावात्मक प्रतिक्रिया का वर्णन कर सकना और उसकी परिभाषा दे सकना अवश्य आसान है। संचारी भावों में तीन बातें होती है : आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन, चेष्टात्मक अभिव्यक्ति और किसी न किसी तरह का अनुभव। क्रोध में खून खौलने लगना, दिल की धड़कन का तेज़ हो जाना आदि आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन हैं; दाँत पीसने लगना, मुट्ठी का भिंच जाना आदि चेष्टात्मक अभिव्यक्ति है और शरीर में आग लग जाने का बोध क्रोध के संचारी भाव का अनुभव है। संचारी भावों के इन तीनों

पत्तों, उनके निर्देशकों (आन्तरिक और बाह्य परिवर्तनों), निर्देशकों और अनुभव के पारस्परिक सम्बन्ध, शारीरिक आधार आदि समस्याओं पर विचार करके ही संचारी भावों को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

संचारी भाव प्रेरकों के रूप में

भूख, प्यास, आत्मरक्षा आदि शारीरिक प्रवृत्तियों की भाँति संचारी भाव भी उद्देश्यमूलक होते हैं और प्राणी को परिवेश की किसी विषम परिस्थिति से संतुलन कर सकने के लिए व्यवहार करने को प्रेरित करते हैं। प्रत्येक संचारी भाव के पीछे कोई न कोई उद्देश्यमूलक व्यवहार अवश्य होता है जैसे डर के पीछे भागना। प्राणी के उद्देश्यमूलक व्यवहार में संचारी भावों का वही महत्व है जो शारीरिक प्रवृत्तियों का। किंतु उद्देश्यमूलक होते हुए भी संचारी भावों और शारीरिक प्रवृत्तियों में भेद किया जा सकता है।

शारीरिक प्रवृत्तियों और संचारी भावों दोनों में आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन होते हैं किंतु संचारी भावों का सम्बन्ध बाह्य उत्तेजनाओं से होता है और शारीरिक प्रवृत्तियों का शारीरिक आवश्यकताओं की आन्तरिक उत्तेजनाओं से।

शारीरिक प्रवृत्तियों के विपरीत संचारी भाव परिस्थिति की व्यक्तिगत सार्थकता पर निर्भर होने से संज्ञात्मक होते हैं। जो उत्तेजना एक व्यक्ति में क्रोध का संचारी भाव उत्पन्न करती है हो सकता है कि वह अन्य व्यक्तियों में न करे। संचारी भाव उत्पन्न करने के लिए उत्तेजना को व्यक्ति के लिए सार्थक होना चाहिए। हमारा नौकर चाय की प्याली गिरा दे तो हम उस पर क्रोधित होते हैं किंतु यदि सड़क पर कोई व्यक्ति चाय की प्याली ले जा रहा हो और वह उससे गिर जाय तो हम उस व्यक्ति पर क्रोधित नहीं होते क्योंकि उस व्यक्ति का प्याली गिरा देना 'हमारे लिए' सार्थक नहीं होता।

संचारी भावों पर यदि ध्यान दिया जाय तो वे मिटने लगते हैं किन्तु शारीरिक प्रवृत्तियाँ ध्यान देने पर नहीं मिटतीं। वास्तव में शारीरिक प्रवृत्ति की तीव्रता, उदाहरण के लिए भूख की तीव्रता, हमारा ध्यान हठात् ही खींच लेती है। संचारी भावों पर ध्यान दे सकना असम्भव होता है क्योंकि वे ध्यान देने के क्षण से ही मिटने लगते हैं।

संचारी भाव अनुभव के रूप में

आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनों के अतिरिक्त संचारी भावों का अनुभव भी होता है। गुस्सा होने पर जब व्यक्ति दाँत पीसने लगता है और उसका चेहरा तमतमा जाता है तो उसे गुस्सा 'लगता' भी है। यह ठीक है कि संचारी भाव के अनुभव (जैसे गुस्सा 'लगने') को संचारीभावात्मक व्यवहार की भाँति नहीं देखा जा सकता किन्तु फिर भी संचारी भाव के अनुभव (गुस्सा 'लगने') के चेतन अनुभव से इनकार नहीं किया जा सकता। ज़रा याद कीजिए कि आपको 'कलेजा मुँह को आने', 'दिल बल्लियों उछलने', 'मीठी मीठी टीस उठने', 'पैरों के तले ज़मीन खिसक जाने', 'किसी के आँखों में खटकने' और 'ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह जाने' का अनुभव कितनी बार हुआ है।

संचारी भाव के अनुभव का व्यक्तिगत और सामाजिक महत्व है। कलाकार को अपने कलात्मक सृजन में प्रफुल्लता मिलती है, वैज्ञानिक को अपने अनुसन्धानों में उत्सुकता और कौतूहल मिलता है। यदि मनुष्य संचारी भावों का चेतन अनुभव कर सकने में अक्षम होता तो ललित कलाएँ और विज्ञानीय आविष्कार नहीं होते, स्त्रियाँ अपने सबसे बड़े आभूषण 'लज्जा' से वंचित रह जातीं और मनुष्य को अपने जीवन और संसार में कोई रागात्मक रुचि न होती।

संचारी भाव प्रतिक्रिया के रूप में

अपने स्पष्ट शारीरिक परिवर्तनों के कारण ही संचारी भावों का अन्य मानसिक क्रियाओं से तीव्र भेद होता है। अन्य मानसिक क्रियाओं जैसे संज्ञा करने, याद करने या सोचने में उतने तीव्र, स्पष्ट और पूरे शरीर को आलोड़ित कर देने वाले शारीरिक परिवर्तन नहीं होते जितने क्रोध, भय आदि संचारी भावों के समय होते हैं। संचारी भावों में शरीर के अन्दर भी परिवर्तन होते हैं और बाहर भी।

प्रबल संचारी भावों (जैसे क्रोध) से होने वाले आन्तरिक परिवर्तनों में ऐड्रीनल ग्लैंड रक्त प्रवाह में ऐड्रीनिन (adrenin) नामक पदार्थ का स्राव प्रचुर मात्रा में करने लगने लगता है। इस स्राव से सचारी भावों में उनकी विशिष्ट प्रबलताएँ उत्पन्न होती हैं। ऐड्रीनिन के स्राव के प्रभाव से लिवर (liver) में जमा शक्कर रक्त में मिलने लग जाती है जिससे होने वाले परिवर्तनों से रक्त जल्द जमने (clot होने) लग जाता है, इसलिए रक्त का दबाव बढ़ जाता है, नाड़ी की गति तेज़ हो जाती है, फेंफड़े फैल जाते हैं जिससे ज्यादा हवा अन्दर आ सके।

इन आन्तरिक परिवर्तनों से प्राणी अपनी पूरी शक्ति से प्रतिक्रिया करने के योग्य बन जाता है और ऐसे ऐसे चमत्कार कर बैठता है जो सामान्य शारीरिक स्थिति में नहीं कर सकता। संचारी भाव की प्रबलता के प्रभाव में लोग कठिन से कठिन काम आसानी से कर डालते हैं जो उनके लिए सामान्य स्थिति में कर सकना असम्भव होता है। संचारी भाव की प्रबलता पीड़ा के प्रति संवेदन-शीलता को कम कर देती है और प्राणी में देर तक काम कर सकने का उद्दीपन पैदा करती है।

संचारी भावों से होने वाले वाह्य शारीरिक परिवर्तन परिवेश की उत्तेजनाओं का सामना करने में सहायक बनते हैं। क्रोध में मुट्ठियों का भिंच

जाना प्राणी को शत्रु पर आक्रमण करने के लिए तैयार कर देता है; डर के मारे 'पैरों में पर लग जाने' से प्राणी डरावनी उत्तेजना से दूर भाग सकने को तैयार हो जाता है।

वाह्य परिवर्तनों में होने वाले नाक, मुँह, आँखों, गालों आदि की मांसपेशियों के विभिन्न संगठनों से हम अन्य लोगों को प्रभावित भी करते हैं। मुस्कराने या हँसने में मुख के विभिन्न भागों की मांसपेशियों में जो संगठन हो जाता है उसका दूसरे लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, इसलिए मुख की मांसपेशियों के विभिन्न संगठनों (हँसने, मुस्कराने, गाल फुला लेने, नाक-भौं सिकोड़ लेने आदि) का सामाजिक महत्व है।

यद्यपि संचारी भाव प्राणी का उसकी विषम परिस्थितियों से संतुलन कराने में सहायक बनते हैं किन्तु वे कभी कभी उसका संतुलन नष्ट भी कर देते हैं। काम करते करते खिसिया जाने पर काम अच्छी तरह नहीं हो सकता; जिस आदमी पर 'भूत सवार' हो जाता है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह अनर्गल व्यवहार करने लग जाता है।

संचारी भावों के निर्देशक

संचारी भावों के वाह्य निर्देशकों को अच्छी तरह देखा जा सकता है। वाह्य व्यवहार, मुख की विभिन्न मुद्राएँ और स्वर का परिवर्तित हो जाना वाह्य निर्देशक होते हैं। हाथ पैर पटकना, भागना, पीछे हट जाना आदि वाह्य व्यवहार संचारी भावों के सूचक हैं। मुख-मुद्रा का परिवर्तन मुख के विभिन्न अंगों जैसे माथा, भौं, नाक, आँखों और ओठों आदि की मांसपेशियों के विशिष्ट संगठनों से होता है। मुख-मुद्राओं में विशिष्टता ले आने वाले मांसपेशीय संगठन की जटिल विविधता का वर्णन भाषा द्वारा कर सकना दुष्कर है इसलिए यहाँ दिए गए कुछ चित्रों को देखिए। इन चित्रों

में मुख के विभिन्न अंगों के मांसपेशीय संगठन द्वारा उत्पन्न मुख-मुद्राओं को देखकर आप तत्सम्बन्धी संचारी भाव को आसानी से जान लेगें।
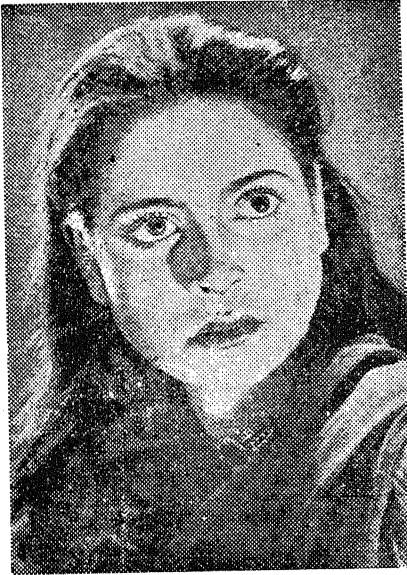
चित्र ३५

विभिन्न मुख-मुद्राएँ उत्पन्न करने में माथा, भौं, आँखों और ओंठो सबका विशेष योग होता है। क्रोध में माथे पर बल पड़ जाते हैं, घृणा में नाक-भौं सिकुड़ जाती है। किंतु फिर भी मुखमुद्रा में आँख और मुँह की प्रधानता रहती है।

आँख व्यक्ति के तत्कालिक अवधान को बताती है। डर लगने और रुचि लेने पर आँखें फैल जाती हैं क्योंकि दोनों दशाओं में व्यक्ति दृश्य

उत्तेजना पर ज़्यादा ध्यान देता है। ऊपर देखती हुई आँखों में आत्मसमर्पण का भाव होता है, नीचे झुकी हुई आँखों का अर्थ परिवेश से विमुख हो जाना है जिसके अनेक कारण हो सकते हैं। लज्जा में आँखें इसीलिए नीचे झुक जाती हैं।

चित्र ३६

मुँह तो संचारी भावों की अभिव्यक्ति का और भी उत्तम निर्देशक है। मुँह के ओठों की बनावट और स्थिति व्यक्ति की बहुत सी विशेषताओं को प्रकट करती है। कुछ ओंठ ऐसे होते हैं जिन्हें देखते ही चूमने को जी चाहता है। ओंठों से व्यक्ति का भोलापन और टेढ़ापन भी प्रकट होता है।

कुछ ओंठ खाऊपन के सूचक होते हैं, कुछ से दृढ़ संकल्प परिलक्षित होता है। लटके हुए ओंठों से उजड्डुपन और मूर्खता टपकती है।

चित्र ३७

स्वर परिवर्तन भी संचारी भावों का निर्देशक होता है। अभिनेता और भाषण देने वाले अपने स्वर के माध्यम से बहुत से संचारी भावों को व्यक्त करते हैं। क्रोध में स्वर कर्कश हो जाता है, शोक में भर्रा जाता है। भयभीत आदमी की घिग्गी बँध जाती है। प्रेम का स्वर पुचकार-भरा होता है।

रक्त-प्रवाह, हृदय की गति और साँस लेने आदि क्रियाओं में परिवर्तन होना संचारी भावों के आन्तरिक निर्देशक हैं। शरीर-रचना के प्रसंग में

यह देखा जा चुका है कि उपर्युक्त शारीरिक क्रियाओं का संचालन अनु-कंपिक व्यवस्था (sympathetic system) से होता है। अनुकंपिक व्यवस्था के उद्दीप्त होने पर पाचन-क्रिया रुक जाती है और लार बहने का अवरोध हो जाता है। डर में गला इसीलिए सूख जाता है। प्राचीन काल में चीन में अपराधी का पता उसकी लार बहने की प्रतिक्रिया के आधार पर ही लगाया जाता था। संदिग्ध व्यक्ति परीक्षा के लिए एक जगह लाए जाते थे

चित्र ३८

और उन पर अभियोग लगाकर उनके मुँह में सूखे चावल भर दिए जाते थे। थोड़ी देर बाद चावल बाहर निकलवाये जाते थे और जिसके मुँह के चावल (डर के कारण लार न बहने और मुँह सूखा रहने से) सूखे ही रह जाते थे उसे अपराधी समझ लिया जाता था।

शरीर-विज्ञान वेत्ताओं ने संचारी भावों में होने वाले आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनों को जानने और नाप सकने के लिए अनेक यंत्रों का आविष्कार कर डाला है। विभिन्न संचारी भावों में रक्त-प्रवाह, साँस, हृदय और नाड़ी की गति, त्वचा का दबाव और ग्लैंडों की प्रतिक्रिया आदि पर विशद खोजें की जा चुकी हैं।

खोजों के आधार पर यह पता चला है कि हर्ष में पेट खूब सक्रिय रहता है जो खाने का सबसे अच्छा समय होता है। हर्ष में गाल ब्लैडर (gall bladder) उद्दीप्त रहता है और रक्त प्रवाह तथा साँस लेने में थोड़ी सी वृद्धि हो जाती है। हर्ष में शरीर के सारे अवयवों में पूर्ण नियमन रहता है जिससे शरीर की कार्य-कुशलता बढ़ जाती है।

क्रोध में ऐड्रीनल ग्लैंडों की प्रतिक्रिया तेज़ हो जाती है जिसके असर से हृदय उद्दीप्त हो जाता है। पेट और गाल ब्लैडर निष्क्रिय हो जाते हैं और लिवर (liver) और गुर्दों (kidneys) का काम धीमा पड़ जाता है। साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है। ऐसी स्थिति खाने के लिए अनुकूल नहीं होती।

क्रोध की भाँति डर में भी ऐड्रीनल ग्लैंड तेज़ी से क्रिया कर प्राणी को भागने या लड़ने के लिए तैयार करते हैं। शोक में केवल गाल ब्लैडर ही उद्दीप्त होता है। बाइल (bile) का प्रवाह बढ़ जाता है और पेट में भी आ सकता है जिससे भूख नहीं लगती। साँस लेने और हृदय की गति धीमी पड़ जाने से बेचैनी होने लगती है। ऐसे समय भी खाना नहीं खाना चाहिए।

सैद्धान्तिक व्याख्या : जेम्स-लांगे सिद्धान्त

संचारी भावों का अनुभव कैसे होता है और शारीरिक परिवर्तनों से उनका क्या सम्बन्ध है ? इन प्रश्नों का प्रचलित और साधारण उत्तर यह

है : संचारी भाव उत्पादक उत्तेजना से ग्राहकों में होने वाली न्यूरोनीय प्रेरणा मनस् में पहुँचती है और मनस् अपनी क्रिया द्वारा उस उत्तेजना की सार्थकता को समझता है। उत्तेजना की सार्थकता समझ लेने पर मनस् में होने वाली न्यूरोनीय प्रेरणा प्रभावकों की ओर प्रवाहित होती है जिससे प्रभावकों द्वारा शारीरिक परिवर्तन होते हैं। शारीरिक परिवर्तनों से होने वाली न्यूरोनीय प्रेरणा फिर मनस् की ओर प्रवाहित होती है और तब संचारी भाव का अनुभव होता है। मानसिक क्रिया संचारी भाव और शारीरिक परिवर्तनों की मध्यस्थ होती है और इस प्रकार संचारी भाव शारीरिक परिवर्तनों के पूर्ववर्त्ती होते हैं। जंगली शेर से सामना पड़ने पर मनस् को ग्राहकों द्वारा शेर का संवेदन होता है। तब हम मानसिक क्रिया द्वारा शेर की सार्थकता कि वह आदमी को मार डालने वाला पशु है और उससे हमें अपनी जान का ख़तरा है समझते हैं। शेर की सार्थकता समझ लेने पर शारीरिक परि-वर्तन होते हैं, साँस रुक जाती है. पसीना छूटने लगता है। फिर जब मनस् को इन शारीरिक परिवर्तनों का संवेदन होता है तो हमें डर लगता है और हम बचने या भागने की प्रतिक्रिया करते हैं।

किन्तु मनोवैज्ञानिकों को यह प्रचलित सैद्धान्तिक उत्तर मान्य नहीं है। इस प्रचलित सिद्धान्त के विरोध में विलियम जेम्स और लांगे नामक दो मनोवैज्ञानिकों ने स्वतन्त्र रूप से एक ही सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था जो जेम्स-लांगे सिद्धान्त नाम से विख्यात है। जेम्स-लांगे सिद्धान्त के अनुसार शेर को देखते ही पहले शारीरिक परिवर्तन (साँस रुक जाना, हाथ पाँव फूल जाना, पसीना छूटने लगना आदि) होते हैं और उन शारीरिक परि-वर्तनों से शरीर की तत्काल जो दशा हो जाती है वही संचारी भाव है। इस प्रकार शारीरिक परिवर्तन सचारी भावों के पूर्ववर्त्ती होते हैं। शेर रूपी उत्तेजना प्रभावकों से तत्काल शारीरिक परिवर्तन कराती है और मनस् द्वारा उन परिवर्तनों का अनुभव ही संचारी भाव होता है। जेम्स के शब्दों

में संचारीभाव "उत्तेजना मिलने पर आन्तरिक क्रियाओं (पसीना छूटना, हाथ पाँव फूलना, साँस रुक जाना आदि) से उत्पन्न संवेदनों का प्रक्षिप्त प्रभाव (reflex effect) होता है।" शारीरिक परिवर्तनों के न होने पर संचारी भावों का अनुभव नहीं हो सकता। डरावनी उत्तेजना से अगर शारीरिक परिवर्तन न हों तो हमें डर का ज्ञान मात्र ही होगा किन्तु डर के 'लगने' का अनुभव नहीं होगा। संचारीभाव प्रचलित सिद्धान्त के अनुसार मानसिक क्रिया का परिणाम न होकर मनस् पर शारीरिक परिवर्तनों का प्रक्षिप्त प्रभाव (reflex effect) होता है।

जेम्स-लांगे सिद्धान्त का मुख्य आशय यह है कि संचारी भावों और शारीरिक परिवर्तनों में मानसिक क्रिया की मध्यस्थता नहीं होती। इसका समर्थन करने के लिए जेम्स ने अपने बालपन की एक घटना का उल्लेख किया है। जेम्स ने कहीं जाते समय एक घोड़ा देखा जिसके बहुत ख़ून बह रहा था। खेल खेल में जेम्स ने अपनी छड़ी को ख़ून में इधर उधर खूब साना और वहाँ से चल दिया। छड़ी से खून चू रहा था और जेम्स के मन में किसी तरह का कोई भाव नहीं था। सहसा उसकी आँखों में अँधेरा छा गया, कानों में भनभनाहट होने लगी और वह डर के मारे बेहोश हो गया। जेम्स का कहना है कि इस घटना में उसके शारीरिक परिवर्तन और उनके परिणाम स्वरूप डर का संचार केवल उत्तेजना (ख़ून) की उपस्थिति मात्र से ही हुए थे, मानसिक क्रिया की मध्यस्थता से नहीं। अभिनय या मद्यपान द्वारा कृत्रिम रूप से शारीरिक परिवर्तन उत्पन्न करने पर भावों का संचार होने लगता है। अतः जेम्स-लांगे सिद्धान्त के अनुसार संचारी भावों का अनुभव शारीरिक परिवर्तनों पर निर्भर होता है और मानसिक क्रिया की अपेक्षा नहीं रखता।

जेम्स-लांगे सिद्धान्त की आलोचना

यह सच है कि शरीर के कुछ अंगों का भावों के संचार से ज्यादा घनिष्ठ

सम्बन्ध होता है। अनुकंपिक व्यवस्था (sympathetic system) के उत्तेजित होने का प्रभाव बहुत व्यापक होता है जिससे तत्सम्बन्धी क्रियाओं (साँस लेने, दिल धड़कने आदि) में या तो अवरोध (inhibition) हो जाता है या वे तेज़ी से होने लगती हैं। अनुकंपिक व्यवस्था का व्यापक प्रभाव ऐड्रीनल (adrenal) ग्लैंडों के कारण होता है। अनुकंपिक व्यवस्था के उत्तेजित होने से ऐड्रीनल ग्लैंड सक्रिय हो जाते हैं और वे ख़ून में ऐड्रीनैलिन नामक पदार्थ का संचार अधिक मात्रा में करने लग जाते हैं जिसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है।

किंतु इससे पर्याप्त रूप से यह सिद्ध नहीं हो पाता कि संचारीभावों और शारीरिक परिवर्तनों में तादात्म्य है। यदि उनमें तादात्म्य होता तो प्रत्येक संचारी भाव के अपने विशिष्ट शारीरिक परिवर्तन भी होते। किंतु इसके विपरीत अनेक संचारी भावों में प्रायः एक ही तरह के शारीरिक परिवर्तन होते हैं। आँसू हर्ष के भी होते हैं और शोक के भी। डर और क्रोध दोनों संचारी-भावों में शरीर काँपने लगता है। इसके अतिरिक्त शिक्षित व्यक्ति क्रोध को एक तरह से प्रकट करता है, अशिक्षित व्यक्ति दूसरी तरह से। भयभीत होने पर हम काँपते हैं। काँपना भय का शारीरिक परिवर्तन है। लेकिन जब हम जाड़ा लगने पर काँपते हैं तो हमें भय का संचारी भाव नहीं होता। यदि संचारीभाव शारीरिक परिवर्तनों के ही परिणाम होते तो जाड़े से काँपने में भी भय का संचार होना चाहिए।

प्रयोगशालाओं में पशुओं पर किए गए प्रयोगों से भी संचारी भावों और शारीरिक परिवर्तनों में तादात्म्य होने का खण्डन हुआ। शेरिंग्टन ने एक कुत्ते पर प्रयोग किए। यह कुत्ता कुछ लोगों को पसंद करता था और कुछ लोगों को नहीं। शेरिंग्टन ने कुत्ते के धड़ से मनस् तक न्यूरोनीय प्रेरणाओं को ले जाने वाले आन्तरिक बोधवाहक न्यूरोनों को असम्बन्धित कर दिया जिससे वह आंतरिक अंगों के संवेदन से वंचित हो गया। किंतु कुत्ते

ने फिर भी क्रोध, भय, हर्ष आदि संचारी भावों के लक्षणों को प्रकट किया। व्यक्तियों में कृत्रिम रूप से शारीरिक परिवर्तन करके भी देखा गया कि उन कृत्रिम परिवर्तनों से भावों का संचार नहीं हो पाता। इन प्रयोगों के आधार पर संचारी भावों और शारीरिक परिवर्तनों की पूर्ववर्त्तिता पर सन्देह किया जाने लगा और जेम्स-लांगे सिद्धान्त की मान्यता के विरुद्ध संचारी भावों के अनुभव में मानसिक क्रिया का उचित महत्व स्वीकार किया गया।

हाइपोथैलेमसिक सिद्धान्त

शरीर विज्ञानवेत्ताओं ने पशुओं पर प्रयोग करके संचारी भावात्मक व्यवहार में थैलेमस या हाइपोथैलेमस (hypothalamus) की महत्ता पर बड़ा ज़ोर दिया। उन्होंने अपने प्रयोगों में विद्युतधारा से बिल्लियों की हाइ-पोथैलेमस को उत्तेजित करके यह देखा कि "बिल्ली अपने कान खड़े कर लेती है, गुर्राने और दुम फटकारने लगती है...।" हाइपोथैलेमस को निकाल देने पर कुत्ते और बिल्ली संचारी भावात्मक व्यवहार नहीं कर पाते।

जेम्स-लांगे सिद्धान्त की सत्यता में सन्देह करते हुए और संचारी भावों में हाइपोथैलेमस के महत्व को स्वीकार करते हुए कैनन नामक शरीर विज्ञान-वेत्ता ने संचारी भावों की व्याख्या के लिए हाइपोथैलेमसिक सिद्धान्त प्रति-पादित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार संचारी भाव और शारीरिक परिवर्तन एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं और उनमें तादात्म्य नहीं होता। इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि संचारी भावों का अनुभव और शारीरिक परिवर्तन दोनों ही हाइपोथैलेमस की क्रिया से होते हैं और साथ साथ होते हैं। बोधवाहक प्रेरणाओं का प्रवाह हाइपोथैलेमस में आकर मनस् और मेरुदंड की ओर एक साथ होता है जिससे संचारी भावों का अनुभव और शारीरिक परिवर्तन भी एक साथ होते हैं।

इस सिद्धान्त से जेम्स-लांगे सिद्धान्त की कुछ कठिनाइयाँ अवश्य हल हो जाती हैं। पशुओं की अनुकंपिक व्यवस्था असम्बन्धित कर देने पर भी उनकी

हाइपोथैलेमस की प्रेरणाओं का प्रवाह मनस् की ओर होता है जिससे उनके व्यवहार से संचारी भावों के लक्षण प्रकट होते हैं। कृत्रिम रूप से शारीरिक परिवर्तन उत्पन्न करने पर यदि हाइपोथैलेमस सक्रिय न हो सके तो संचारी भावों का अनुभव नहीं होता। संचारी भावों का अनुभव मानसिक क्रिया की मध्यस्थता और शारीरिक परिवर्तनों के परिणामों से स्वतन्त्र रहकर हाइपोथैलेमस की सक्रियता पर निर्भर होता है।

किंतु इस सिद्धान्त में भी कमियाँ है। हाइपोथैलेमस को कृत्रिम रूप से उत्तेजित करने पर जो संचारी भावात्मक व्यवहार होता है वह स्वाभाविक रूप से होने वाले संचारी भावात्मक व्यवहार से भिन्न होता है। कृत्रिम रूप से उत्तेजित हाइपोथैलेमसिक क्रिया में बिल्ली पिंजड़े के अन्दर केवल बेचैन होकर इधर-उधर भटकती ही है किंतु बाहर निकलने का मार्ग होते हुए भी उसकी उपेक्षा करती है और कृत्रिम उत्तेजना का प्रभाव मिटते ही बिल्ली की सारी प्रतिक्रियाएँ एकदम रुक जाती है जब कि स्वाभाविक संचारी भाव का प्रभाव उत्तेजना के न रहने पर भी कुछ देर तक बना रहता है और धीरे-धीरे मिटता है। इससे साबित होता है कि कृत्रिम रूप से उत्पन्न संचारी भावात्मक प्रतिक्रियाएँ यंत्रवत् होती हैं और उनमें स्वाभाविकता नहीं होती।

यद्यपि संचारी भावों की व्याख्या के उपर्युक्त दोनों सिद्धान्त अपर्याप्त हैं, किन्तु फिर भी उन दोनों में सत्यता का अंश है जिससे उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि संचारी भावों के अनुभव में शारीरिक परिवर्तनों और हाइपोथैलेमस की क्रिया के नियंत्रण के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता किंतु संचारी भावों के अनुभव के पीछे एकमात्र इन्हीं दो कारणों को मान लेना या उनमें से किसी एक पर निर्विवाद रूप से अनुचित ज़ोर देकर मानसिक क्रिया का बिल्कुल ही बहिष्कार कर देना न्यायसंगत नहीं है।

संचारी-भावों का विकास

संचारी-भावों को समझने के लिए अब तक उनके विभिन्न पक्षों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार किया जा चुका है। अब एक प्रश्न का उत्तर देना और रह जाता है : संचारी भाव जन्मजात होते हैं या उन्हें अर्जित किया जाता है? यह प्रश्न विवादग्रस्त है। यदि संचारी भाव जन्मजात होते हैं तो बच्चों में उनके लक्षण मिलने चाहिए। नवजात बच्चों के व्यवहार के अवलोकन से पता चला है कि उनमें केवल 'उद्दीपन' मात्र ही होता है। तीन महीने बाद उस उद्दीपन में परेशानी और प्रसन्नता ये दो विशेषताएँ आ जाती हैं। बच्चे के विकास के साथ साथ 'परेशानी' से क्रोध, घृणा, डर और फिर ईर्ष्या उत्पन्न होती है। 'प्रसन्नता' से उत्फुल्लता और अनुराग और बाद में हर्ष प्रकट होने लगता है।

संचारी भावों के विकास पर शारीरिक परिपक्वता और अनुभवों का बहुत प्रभाव पड़ता है। परिपक्वता के साथ संचारी भावों के प्रकट करने के ढंग में भी परिवर्तन होता जाता है। बच्चा अपना क्रोध रोकर और हाथ पाँव पटक पटक कर प्रदर्शित करता है किन्तु वयस्क आँखें लाल करके या बातचीत से। संचारी भावों के जन्मजात न होने के अनेक प्रमाण हैं। बच्चे आग या साँप से नहीं डरते किन्तु सापेक्षीकरण और शिक्षा द्वारा उनमें डर उत्पन्न हो जाता है। इससे साबित होता है कि संचारी भाव सीखने और शिक्षा द्वारा अर्जित किए जाते हैं। प्रयोगों द्वारा यह भी पता चला है कि संचारी भावों में होने वाले आन्तरिक परिवर्तनों पर भी सीखने का प्रभाव पड़ता है जिससे दो व्यक्तियों के एक ही संचारी भाव से होने वाले आन्तरिक परिवर्तनों में अन्तर होता है।

संचारी भावों का कोई विशुद्ध रूप न होने से उनका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। चित्र ३९ को देखिए। यह मुद्रा उत्सुकता, कौतूहल और आश्चर्य तीनों संचारी भावों की हो सकती है। संचारी भावात्मक अनुभव में

बहुत से संचारी भाव मिले रहते हैं। हम खेल में जीत जाते हैं किन्तु हमें गहरी चोट भी लग जाती है। उस अवसर पर हमारे अन्दर जीतने के गर्व और चोट लगने के दुख का मिश्रित संचारी भाव होता है। परेशानी डर की

चित्र ३६

और खिन्नता क्रोध की हलकी प्रतिक्रिया होती है। इसी प्रकार घृणा, उद्विग्नता, प्रेम, करुणा आदि भी मिश्रित संचारी भाव होते हैं।

संचारी भावों में व्यक्तिगत भेद

संचारी भावों में व्यक्तिगत भेदों का कारण सामान्यतः आनुवंशिकता (heredity) में माना जाता है। इस सम्बन्ध में कैलविन हॉल ने सफेद

चूहों पर प्रयोग करके परीक्षा की। अत्यधिक संचारी भावात्मक क्षमता रखने वाले और बिल्कुल न रखने वाले सफेद चूहों की संतान की संचारी भावात्मक क्षमता का कई पीढ़ियों तक अध्ययन किया गया। परीक्षाओं से पता चला कि चूहों की संतान की संचारी भावात्मक क्षमता पर आनुवंशिक या पैतृक प्रभाव नहीं पड़ा।

व्यक्ति की संचारी भावात्मक क्षमता पर उसके परिवेश का प्रभाव अवश्य पड़ता है। परीक्षाओं द्वारा यह पता चला है कि जो व्यक्ति बचपन में बहुत बीमार रहा करते हैं उनका स्वभाव आगे चलकर चिड़चिड़ा बन जाता है और वे जल्द क्रोधित और भयभीत होने लग जाते हैं।

संचारी भाव और बीमारियाँ

चिकित्सकों की खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि संचारी भाव पेट सम्बन्धी बहुत से रोगों का कारण होते हैं। यह देखा जा चुका है कि डर, शोक आदि में पेट की क्रिया ठीक तरह से नहीं हो पाती और वह कब्ज़ या आँत सम्बन्धी अनेक रोगों का कारण बन सकती है। आन्तरिक रोगों के अतिरिक्त संचारी भावों का प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। संचारी भावों का परिवेश से उचित नियमन न कर सकने पर व्यक्ति में अनेक मानसिक विकार उत्पन्न हो सकते हैं। वह पागल या चिड़चिड़ा बन सकता है। उसके मन में अज्ञात भय और शंकाएँ घर कर सकती हैं जिनका प्रभाव पारिवारिक, दैनिक और सामाजिक जीवन पर पड़ता है।

मूड

कुछ संचारी भावात्मक प्रतिक्रियाओं का प्रभाव बहुत देर तक बना रहता है। उसे मूड (mood) कहा जाता है। मूड संचारीभाव का हलका रूप होता है। हम कभी प्रसन्नता के मूड में रहते हैं और कभी खिन्न रहते

हैं। पढ़ने लिखने का भी मूड हुआ करता है। किसी मूड के होने पर उसी के समान भाव का संचार बहुत जल्द हो जाता है। खिन्न मन बैठे व्यक्ति को बात बात पर क्रोध आता है। मूडों का प्रभाव हमारे विचारों और क्रियाओं पर पड़ता है। कुछ मूड शारीरिक स्वास्थ्य और लक्ष्य प्राप्ति की सफलता-विफलता पर भी निर्भर होते हैं।

संचारी भावों का उचित निर्माण

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों ही के लिए संचारी भावात्मक प्रतिक्रिया का उचित निर्माण करने की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य की संचारी भावात्मक समस्याओं का आदि उसके प्रारम्भिक जीवन के इतिहास में होता है। बचपन में जिस उत्तेजना के प्रति जैसी संचारीभावात्मक प्रतिक्रिया अर्जित कर ली जाती है वह बाद के पूरे जीवन पर प्रभाव डालती रहती है। बच्चे अपनी संचारी भावात्मक प्रतिक्रिया अपने माँ-बाप की प्रतिक्रियाओं का अनुकरण करके सीखते हैं। माँ-बाप जिस बात पर हर्षित होते हैं बच्चा भी उसी बात पर हर्षित होना सीख जाता है। जैसी संचारी भावात्मक प्रतिक्रियाएँ माँ-बाप की होती हैं वैसी ही उनके बच्चों की बन जाती हैं। हिन्दू माँ-बाप अपने बच्चों को 'हौआ' से डराकर, उनके सामने गाली गलौज और अश्लील मज़ाक करने से बाज़ न आकर उनकी संचारी भावात्मक प्रतिक्रिया को ऐसा बना देते हैं जिससे वे बड़े होकर निहायत बदशऊर, उजड्ड, झेंपू, गन्दे, अश्लील और आत्म-सम्मान को बेंच देने वाले बन जाते हैं।

हिन्दू समाज की असंख्य संचारी भावात्मक समस्याएँ उसकी कुरीतियों, बाल-विवाह, जाति विभेद आदि जैसी अनेक सड़ी हुई प्रथाओं का परिणाम हैं जिससे भारतीय बच्चे ऐसे गन्दे और दूषित वातावरण में पलते हैं जो उनकी संचारी भावात्मक प्रतिक्रियाओं को भ्रष्ट कर देने में अत्यधिक सहायक

बनता है। यदि हिन्दू समाज अपनी संचारी भावात्मक समस्याओं को सुलझाना चाहता है (मुझे तो इसमें सन्देह है) तो शिक्षा में सुधार करने या योजनाएँ बनाने से पहले घर घर का वातावरण ऐसा बनाना पड़ेगा जिसमें बच्चों की संचारी भावात्मक प्रतिक्रियाओं का निर्माण स्वस्थ और समुन्नत हो सके। सत्य नारायण की कथा सुनने या ठाकुर जी को भोग लगाने से समस्याएँ नहीं सुलझतीं।

संचारी भावात्मक प्रतिक्रिया का उचित निर्माण करने के लिए परिवेश से अवांछित उत्तेजनाओं को हटा देना चाहिए जिससे उनसे संचारी भावात्मक सम्बन्ध न बन सके। संचारी भावात्मक प्रतिक्रिया के निर्माण का तात्पर्य संस्कृति और सभ्यता को उन्नत बनाने वाली उत्तेजनाओं और मानवोचित गुणों से मनुष्य का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करवाना है और उसे स्वार्थपरायण मूड से निकल कर समाज-सापेक्ष मूड बनाने में सहायता देना है। हमें आदर्श का ढिंढोरा पीटने वालों की जरूरत नहीं है; जरूरत तो है आदर्श को चरितार्थ करने का उपाय बताने वालों की।

संचारी भावों के प्रदर्शन का सामाजिक महत्व होता है इसलिए संचारी भावों का प्रदर्शन उचित ढंग से कर सकने की कला सीखना चाहिए। संचारी भावों का दमन नहीं करना चाहिए क्योंकि उनका दमन मानसिक स्वास्थ्य और संतुलन के लिए अहितकर होता है और उससे मानसिक विकार पैदा हो जाते हैं। गुस्से को पीना नहीं चाहिए, थूक देना चाहिए लेकिन थूकना ज़रा ढंग से चाहिए जिससे वह कहीं अपने ऊपर ही न गिर पड़े।

प्रश्न

१—संचारी भाव क्या होते हैं? अपने अनुभव से कोई उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

२—संचारी भाव कब प्रकट होते हैं और उनका मूलप्रवृत्तियों से क्या सम्बन्ध होता है ?

३—संचारी भावों के प्रतिक्रियात्मक पक्ष का क्या व्यावहारिक महत्व है ? उदाहरण देकर समझाइए।

४—संचारी भावों के निर्देशकों पर प्रकाश डालिए।

५—संचारी भावों के अनुभव और उनके निर्देशकों में क्या सम्बन्ध होता है ? अपने पक्ष के समर्थन के लिए उदाहरण दीजिए।

६—जेम्स-लांगे सिद्धान्त और हाइपोथैलेमसिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

७—संचारी भाव जन्मजात होते हैं या अर्जित करने के परिणाम ? अपने मत को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

८—संचारी भावात्मक असंतुलन से कैसी बीमारियाँ हो सकती हैं ? उनके निवारण का उपाय बताने का प्रयत्न कीजिए।

९—अपना उचित संचारी भावात्मक निर्माण करने के लिए किन बातों की अपेक्षा होती है ? आप इस दिशा में सफल होने के लिए क्या करेंगे ?

१०—'संचारीभावों का सामाजिक महत्व है।'

'संचारी भावों का दमन नहीं करना चाहिए।'

क्या उपर्युक्त दोनों कथनों में कोई विरोध है ? यदि है तो उसे मिटाने के उपाय बताइए।

६

सीखना

हम परिवेश को जानने के साधनों और परिवेश से अपना कुछ संतुलन कर सकने की क्रियाओं पर विचार कर चुके हैं। परिवेश को जानने और उससे कुछ सीमा तक अपना संतुलन कर सकने के वे साधन जिन पर विचार किया जा चुका है जन्मजात होते हैं; उन्हें सीखना नहीं पड़ता। किंतु इतना ही काफी नहीं है। हमारा परिवेश (environment) विशाल होता है और उसके प्रत्येक पक्ष से अपना संतुलन कर सकने के लिए हमें बहुत सी नई बातें सीखना पड़ती हैं। मनुष्य का परिवेश आहार, निद्रा, भय और मैथुन तक ही सीमित नहीं है। उसके परिवेश के अनेक पक्ष हैं, सामाजिक, व्यापारिक, वैधानिक इत्यादि। परिवेश के इन पक्षों के प्रति बिना सीखे संतुलन नहीं किया जा सकता। मनुष्य ने अपनी शिक्षा, पूर्वजों के अनुभवों और परम्परा से आज तक जो कुछ भी सीखा है यदि वह उससे छीन लिया जाय तो मनुष्य का सारा परिवेश निरर्थक बन जायगा और वह अपने निरर्थक परिवेश का कठपुतला मात्र होकर रह जायगा।

किसी बच्चे को दियासलाई की डिब्बी दे दीजिए तो वह उससे बड़े हर्षपूर्वक खेलने लगेगा; कभी उसे बजाएगा, कभी मुँह में रक्खेगा। किंतु यदि आप एक बार उसी दियासलाई से उसका हाथ जला दें तो वह फिर दियासलाई की डिब्बी को छुएगा तक नहीं। फिर जलाए जाने पर वह उस जगह जाने से भी डरेगा जहाँ दियासलाई रक्खी होगी। यदि दो तीन बार बच्चे का हाथ जलने पर उसे दियासलाई शब्द मालूम हो जाय तो वह दिया-

सलाई का नाम भर ले देने से डर कर चिल्लाने लगेगा। यह घटना स्वाभाविक रूप से सीखने का एक अच्छा उदाहरण है। यह तो हम देख ही चुके हैं कि प्राणी का सारा व्यवहार किसी उत्तेजना के प्रति की गई प्रतिक्रिया होता है। दूध का जला जिस तरह छाछ को फूँक फूँककर पीता है उसी तरह दियासलाई से जला बच्चा दियासलाई के नाम से भी डरने लगता है। जलने के पहले दियासलाई के प्रति उसकी प्रतिक्रिया हर्षपूर्वक खेलने के रूप में होती थी। जलने के बाद दियासलाई के प्रति उसकी प्रतिक्रिया में नया परिवर्तन हो जाना ही सीखना है। सीखना किसी उत्तेजना के प्रति व्यवहार का बदल जाना है।

सीखना और परिपक्वता

किंतु व्यवहार शरीर की प्राकृतिक वृद्धि के साथ-साथ भी बदलता है। क्या इसे भी सीखना कहा जाय? नहीं। शारीरिक विकास से व्यवहार में जो परिवर्तन आ जाते हैं उन्हें परिपक्वता (maturity) कहना ठीक होगा। परिपक्वता और सीखना अन्योन्याश्रित हैं और व्यवहार परिवर्तन का कारण किसी एक को मान लेना गलत होगा। सीखने से व्यवहार पुनर्व्यवस्थित बनता है। व्यवहार में जो भी न्यूरोनीय व्यवस्था रहती है वह सीखने से दृढ़ बनती है। शरीर-रचना के प्रसंग में हमने देखा था कि हमारा मनस् विभिन्न न्यूरोनीय प्रेरणाओं का ऐसा संगठन करता है जिससे हम व्यवस्थित ढंग से क्रिया कर सकने में समर्थ हो पाते हैं। यह संगठन और व्यवस्था ही सीखना है चाहे वह बोधवाहक हो या क्रियावाहक। समुचित न्यूरोनीय संगठन और व्यवस्था के लिए मनस् और मांसपेशियों के परिपक्व होने की अपेक्षा होती है। बहुत छोटा बच्चा वस्तुओं में भेद नहीं कर पाता क्योंकि भेद कर सकने की क्रिया के लिए जिस न्यूरोनीय व्यवस्था की आवश्यकता होती है बच्चे का मनस् अपरिपक्व होने से वह व्यवस्था नहीं कर पाता। छोटा बच्चा चल नहीं पाता क्योंकि उसकी मांसपेशियों में क्रियावाहक संगठन कर सकने योग्य

परिपक्वता नहीं होती। खाना, पीना, चलना, साँस लेना, दौड़ना, वस्तुओं में भेद कर सकना आदि क्रियाएँ ऐसी हैं जो जन्मजात होती हैं और परिपक्वता के साथ-साथ प्राणी उन्हें अनायास ही सीख जाता है। यहाँ सीखने से हमारा तात्पर्य उन न्यूरोनीय बोधवाहक और क्रियावाहक संगठनों से है जो प्राणी में जन्मजात या उसकी परिपक्वता का परिणाम न होकर चेष्टा द्वारा सीखे जाते हैं। उदाहरण के लिए पढ़ना, बुनना, बाइसिकिल चलाना, चिंतन करना आदि को लिया जा सकता है। सीखने से प्राणी की बोधवाहक और क्रियावाहक न्यूरोनीय प्रेरणाओं में नया सम्बन्ध स्थापित होता है जो जन्मजात या पहले नहीं होता और उसको स्थापित करने के बाद प्राणी परिवेश से अपना संतुलन और भी अधिक कुशलता से कर सकने की क्षमता अर्जित कर लेता है। अतएव सीखने से तात्पर्य प्राणी की अर्जित क्रियाओं से है, जन्मजात क्रियाओं से नहीं।

परिवेश से भली भाँति संतुलन कर सकने के लिए न्यूरोनीय प्रेरणाओं में नए सम्बन्ध अनेक प्रकार से स्थापित किए जा सकते हैं। नीचे सीखने के कुछ प्रमुख प्रकारों पर दृष्टिपात किया जायगा।

सीखने के प्रकार : (१) सापेक्षीकरण

यह देखा जा चुका है कि हर प्रतिक्रिया तत्सम्बन्धी उत्तेजना मिलने पर ही होती है। उत्तेजना और तत्सम्बन्धी प्रतिक्रिया में सक्रिय सम्बन्ध होता है। यदि किसी उत्तेजना से तत्सम्बन्धी प्रतिक्रिया नहीं होती तो वह उत्तेजना उस प्रतिक्रिया के लिए तटस्थ उत्तेजना कही जाती है। खाना देखकर मुँह में लार का आना, सुई चुभने पर पैर का हट जाना, तेज प्रकाश में पुतली का सिकुड़ जाना आदि उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओं में सक्रिय सम्बन्ध है। घंटी सुनकर मुँह में लार नहीं आती, किताब देखकर पुतली नहीं सिकुड़ती और दरी छूने पर पैर नहीं हटते क्योंकि यहाँ उत्तेजनाओं और प्रति-

क्रियाओं में सक्रिय सम्बन्ध नहीं है। मुँह में लार आने, पुतली सिकुड़ने और पैर हटने की प्रतिक्रियाओं के लिए घंटी, किताब और दरी आदि की अपेक्षा नहीं होती इसलिए वे उपर्युक्त प्रतिक्रियाओं के लिए तटस्थ उत्तेजनाएँ होती हैं। सक्रिय उत्तेजनाओं से तो तत्सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं का होना स्वाभाविक है किंतु सिखाए जाने पर वही प्रतिक्रियाएँ तटस्थ उत्तेजनाओं से भी होने लगती हैं। इस विषय पर प्रकाश डालने के लिए यहाँ रूसी शरीर विज्ञानवेत्ता ईवान पावलोफ की खोजों का अध्ययन कर लेना आवश्यक है।

ईवान पावलोफ मनोवैज्ञानिक नहीं था, शरीर विज्ञानवेत्ता था। पाचन क्रिया सम्बन्धी अध्ययन करते समय उसे सीखने के एक महत्वपूर्ण प्रकार का पता चला। तब से उसने इस बात का बड़ा विशाल अध्ययन किया कि सीखने में मनस् किस प्रकार क्रियाएँ करता है। अपनी प्रयोगशाला में वह कुत्तों पर प्रयोग करता था। उसने एक कुत्ते की लार सम्बन्धी ग्लैंड की नली (duct) निकाल दी और कुत्ते के निचले जबड़े में रबड़ की नली लगा दी जिससे कुत्ते की लार कटोरे में इकट्ठी की जा सके (चित्र ४०)। इस प्रकार एक निश्चित समय में कुत्ते की लार कितनी टपकी यह नाप सकना सम्भव हो गया।

पावलोफ ने कुत्ते को खाना देने के पहले घंटी बजाना शुरू किया। खाना आते ही कुत्ते के मुँह से लार बहने लगती थी क्योंकि लार बहने की प्रतिक्रिया के लिए खाना सक्रिय उत्तेजना है। बाद में कुत्ते को घंटी बजाने और खाना देने की दोनों उत्तेजनाएँ लगातार साथ-साथ दी जाने लगीं। थोड़े दिनों के बाद देखा गया कि केवल घंटी बजाने से ही कुत्ते के मुँह से लार बहने लगती थी। इस प्रकार खाने और कुत्ते की लार बहने में पहले जो सम्बन्ध था वही अब पावलोफ के उपर्युक्त प्रयोग के बाद घंटी और लार में स्थापित हो गया। खाना-लार की जगह घंटी-लार के इस नए सम्बन्ध स्थापित होने को पावलोफ ने सापेक्षीकरण (conditioning) नाम

दिया। किसी सक्रिय उत्तेजना (खाने) से होने वाली प्रतिक्रिया (लार बहने) का किसी तटस्थ उत्तेजना (घंटी) से भी होने लगना सापेक्षी-करण है।
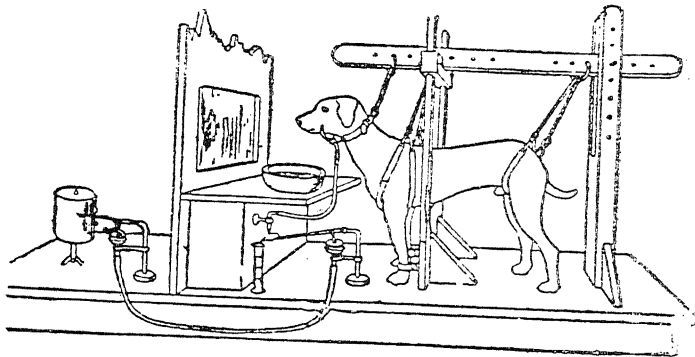
चित्र ४०

इसके बाद पावलोफ और उसके साथियों ने कुत्ते की लार बहने की प्रतिक्रिया का देखने, सूँघने और छूने आदि की विभिन्न उत्तेजनाओं से सापेक्षीकरण किया। पावलोफ का विचार था कि विभिन्न उत्तेजनाओं द्वारा सापेक्षीकरण करने पर कान, आँख, नाक, खाल आदि और लारवाही यंत्र में कुछ नए 'न्यूरोनीय द्वार' बन जाते हैं जिनका संचालन कोर्टेक्स (cortex) से होता है। अब अनेक प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि यद्यपि सामान्यत: सापेक्षीकरण में कोर्टेक्स का भाग रहता है तथापि सापेक्षीकरण कोर्टेक्स पर निर्भर नहीं होता। कोर्टेक्स निकाल दिए जाने पर भी प्राणी का सापेक्षीकरण करना सम्भव है। किंतु यह विवादग्रस्त विषय है कि कोर्टेक्सरहित अवस्था में प्राणी के सापेक्षीकरण को वास्तविक सापेक्षी-करण कहा जा सकता है या नहीं। पावलोफ का विश्वास था कि प्राणी जो

कुछ भी सीखता है उस सब को सापेक्षीकरण कहा जा सकता है। "तरह-तरह की आदतें, शिक्षा और हर प्रकार का संयम और दीक्षा सापेक्षीकृत प्रक्षिप्त क्रियाओं (conditioned reflexes) की एक लम्बी श्रृंखला के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

सापेक्षीकरण की दिशा

सापेक्षीकरण अनुसन्धान का बहुत बड़ा विषय रहा है और उससे सम्बन्धित अनेक जटिल प्रश्न हैं। वास्तव में सापेक्षीकरण की क्रिया उतनी सरल है नहीं जितनी कि लग सकती है। पहला प्रश्न सापेक्षीकरण की दिशा के बारे में है। सापेक्षीकरण किस दिशा में होता है और क्यों होता है ? यह ठीक है कि घंटी की आवाज़ लार बहने की प्रतिक्रिया के लिए तटस्थ उत्तेजना है किन्तु घंटी सुनकर कुत्ता अपने कान खड़े कर सकता है जो स्वाभाविक है। फिर खाने की उत्तेजना से कान खड़े करने की प्रतिक्रिया का सापेक्षीकरण क्यों नहीं होता ? सक्रिय उत्तेजना (खाना) तटस्थ उत्तेजना (घंटी) से होने वाली स्वाभाविक प्रतिक्रिया (कान खड़े होने) का सापेक्षीकरण क्यों नहीं करती; तटस्थ उत्तेजना (घंटी) ही सक्रिय उत्तेजना (खाने) की प्रतिक्रिया (लार बहने) का सापेक्षीकरण क्यों करती है ? दूसरे शब्दों में सापेक्षीकरण घंटी से लार बहने की दिशा में ही क्यों होता है, खाना देखकर कान खड़े होने की दिशा में क्यों नहीं होता ?

इसलिए नहीं होता कि खाने और लार बहने का सम्बन्ध आन्तरिक प्रेरणा (भूख) पर आधारित होने से अधिक प्रबल होता है। सापेक्षीकरण आन्तरिक प्रेरणा की प्रबलता की दिशा में ही होता है। लार बहना एक प्रबल और प्रधानता रखनेवाली आन्तरिक प्रेरणा पर आधारित खाना खाने की प्रतिक्रिया की तैयारी का ही उपकरण है। यदि घंटी की आवाज इतनी तेज होती कि वह कुत्ते में डर की प्रतिक्रिया पैदा कर सकती तो सापेक्षीकरण

विपरीत दिशा में होता और कुत्ता खाना सामने होने पर भी घंटी की डरावनी आवाज सुनकर अपने कान खड़े कर भाग जाता। यह बिल्ली पर प्रयोग करके देखा गया है। जब बिल्ली चूहे पर झपटती थी तभी उसे बिजली की करेंट का झटका मार दिया जाता था। कई बार झटका मारने के बाद यह देखा गया कि तब बिल्ली चूहे को देखते ही भागने लगती थी। तब चूहे का दिखाई पड़ना उसके लिए तर माल की आशा न होकर मौत का सामना हो गया था। तब चूहे (खाने) को देखकर बिल्ली के मुँह में लार नहीं आती थी वरन् आँखों के सामने मौत का अँधेरा नाच उठता था क्योंकि यहाँ आत्मसंरक्षण की आन्तरिक प्रेरणा खाने की आन्तरिक प्रेरणा से अधिक प्रबल हो गई थी जिससे सापेक्षीकरण आत्मसंरक्षण की प्रतिक्रिया (भागने) की दिशा में होने लगा था।

उत्तेजनाओं की पुनरावृत्ति

दूसरा प्रश्न यह है कि सापेक्षीकरण सक्रिय और तटस्थ उत्तेजनाओं को कितनी बार साथ साथ देने पर हो सकता है? सापेक्षीकरण के लिए क्या सक्रिय और तटस्थ उत्तेजनाओं की पुनरावृत्ति (repetition) आवश्यक है? पावलोफ के प्रयोगों में खाने और घंटी की उत्तेजना अनेक बार दी जाती थी इसलिए सापेक्षीकरण के लिए उनकी पुनरावृत्ति को आवश्यक समझा जाता था। किन्तु वाट्सन और अन्य मनोवैज्ञानिक अपने प्रयोगों से इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कभी कभी सक्रिय और तटस्थ उत्तेजनाओं को केवल एक ही बार देने से सापेक्षीकरण हो सकता है। वाट्सन ने अपने प्रयोगों से बच्चों में डर की प्रतिक्रिया का सापेक्षीकरण करके देखा। बच्चे के सामने एक खरगोश लाया गया और उसी क्षण बड़ी डरावनी आवाज की गई। बच्चा तत्काल खरगोश की ओर से विमुख हो डरकर भाग गया। एक ही बार के प्रयोग से बच्चे में ऐसा पक्का सापेक्षीकरण हो गया कि वह खरगोश को देखते ही भागने लगता था। खरगोश अब बच्चे के लिए खेलने

की चीज न होकर बचने की चीज बन गया। किन्तु बच्चे का यह सापेक्षी-करण उसकी संचारी-भावात्मक (emotional) प्रतिक्रिया पर आधारित था। इससे यही सिद्ध होता है कि जहाँ प्रतिक्रिया संचारी भावात्मक होती है वहाँ सापेक्षीकरण के लिए सक्रिय और तटस्थ उत्तेजनाओं की पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं होती। किन्तु यह देखा गया है कि जो प्रतिक्रियाएँ संचारी भावात्मक नहीं होती वहाँ सापेक्षीकरण उत्तेजनाओं की पुनरावृत्ति के अनुपात से ही दृढ़ बनता है।

सापेक्षीकरण में उत्तेजनाओं की पुनरावृत्ति के अलावा भी महत्वपूर्ण बातें होती हैं। सापेक्षीकरण ठीक से तभी हो सकता है जब सक्रिय और तटस्थ उत्तेजनाओं पर पूरा ध्यान दिया जाय। यदि कोई तीसरी उत्तेजना पूरी तरह से ध्यान देने में बाधक बन जाती है तो सापेक्षीकरण नहीं हो पाता। सापेक्षीकरण बाधक उत्तेजनाओं के अभाव में ही अच्छी तरह हो पाता है। पावलोफ ने इसीलिए बाद में अपने कुत्ते को खिड़की रहित अकेले कमरे में रखकर उस पर प्रयोग किए और तब पावलोफ को कुत्ते के सापेक्षीकरण में उत्तेजनाओं की अधिक पुनरावृत्ति नहीं करना पड़ती थी। सापेक्षीकरण में बाहरी उत्तेजनाएँ ही बाधक नहीं होती, प्राणी के शरीर की आन्तरिक उत्तेजनाएँ भी बाधक बन सकती हैं। इसलिए बाधक उत्तेज-नाओं के पूरी तरह हटाए जाने पर ही सापेक्षीकरण भली भाँति हो सकता है। आन्तरिक बाधक उत्तेजनाओं को हटा सकना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य होता है। शायद पुनरावृत्ति किसी सीमा तक बाधक उत्तेज-नाओं को ही हटाने में सहायक बनती हो।

उत्तेजनाओं का क्रम और अवधि-सम्बन्ध

सापेक्षीकरण करने के लिए साधारणतः तटस्थ उत्तेजना को पहले देना चाहिए और सक्रिय उत्तेजना को बाद में। यह क्रम उलट देने पर भी कुछ दशाओं में सापेक्षीकरण होना सम्भव है। पावलोफ के प्रयोग में घंटी-खाना

या खाना-घंटी की उत्तेजना के इन दोनों क्रमों से सापेक्षीकरण हो सकता है किन्तु सक्रिय उत्तेजना को तटस्थ उत्तेजना के बाद देना अधिक उपयुक्त है। सापेक्षीकरण हो चुकने पर प्रतिक्रिया तटस्थ उत्तेजना (घंटी) मिल चुकने के बाद होती है इसलिए इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि तटस्थ उत्तेजना तब तक मिलती रहे जब तक प्रतिक्रिया ठीक से न होने लगे। यदि कोई लड़का कमरे में घुसते ही अपनी किताबें ठीक से न रखकर इधर उधर डाल देता है तो उससे किताबें उठवाकर उसे कमरे से बाहर जाकर फिर अन्दर आकर किताबें ठीक से रखने को कहिए। थोड़े दिनों बाद कमरे के दरवाजे को देखने से ही लड़के के अन्दर ऐसा सापेक्षीकरण हो जायगा कि वह अन्दर आने पर किताबें ठीक से रखने लगेगा। हमारा शरीर इस ढंग से क्रिया करने की चेष्टा करता रहता है जिससे उसकी शक्ति का अपव्यय न हो। शक्ति का अपव्यय रोकने की प्रधानता के कारण व्यक्ति उस काम को शीघ्र करने लगता है जिसको सिखाने के लिए उसकी शक्ति का अपव्यय जबर्दस्ती कराया जाय।

लार बहना, झटका खाने पर शरीर के किसी अंग उँगली आदि को हटा लेना आदि साधारण प्रक्षिप्त (reflex) क्रियाओं के सापेक्षीकरण के लिए तटस्थ और सक्रिय उत्तेजनाओं को देने की अवधि में ०.२ से ०.६ सेकेंड का अन्तर अभीष्ट है। इस अवधि के बढ़ाए जाने पर भी सापेक्षीकरण हो जाता है। पावलोफ के प्रयोग में घंटी और खाने की उत्तेजना देने में दो मिनट का अन्तर किया जा सकता है किन्तु तब सापेक्षीकरण हो जाने के बाद घंटी बजाए जाने पर कुत्ते की लार दो मिनट के बाद ही टपकना शुरू होगी क्योंकि कुत्ता लार टपकाने की प्रतिक्रिया को दो मिनट तक रोक रखना सीख लेता है।

सापेक्षीकरण का महत्व

मनुष्य के दैनिक व्यवहार का बहुत बड़ा भाग सापेक्षीकरण द्वारा ही

अर्जित किया जाता है। विभिन्न लोगों, स्थितियों, विचारों, पदार्थों, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक दृष्टिकोणों आदि के प्रति मनुष्य का राग या विराग जीवन के प्रारम्भ में अर्जित सापेक्षीकरण का ही परिणाम होता है। जो लोग, स्थितियाँ, विचार या पदार्थ सुखदायी होते हैं उनके प्रति मनुष्य की भावना रागात्मक हो जाती है और जो दुखदायी होते हैं उनके प्रति विरागात्मक। चूँकि मनुष्य की भावनाएँ उसके चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं इसलिए चरित्र और व्यक्तित्व के विकास में सापेक्षीकरण का बड़ा महत्व है। साधारण मनुष्य की पाप-पुण्य, अच्छाई बुराई की धारणाओं, घृणा और प्रेम की प्रवृत्तियों और भाषा के अभिधात्मक सम्बन्धों का सापेक्षीकरण उसके समाज में प्रतिष्ठित मापदंडों और व्यक्तिगत सम्पर्क से प्राप्त अनुभवों द्वारा होता रहता है।

किन्तु सापेक्षीकरण का प्राणी पर अवांछनीय प्रभाव भी पड़ सकता है। कुछ बच्चों में हाथी को देखकर डर की प्रतिक्रिया का ऐसा सापेक्षीकरण हो जाता है कि वे घर से बाहर निकलने में डरने लगते हैं जो अवांछनीय है। इसी प्रकार मनुष्य के सामाजिक, व्यक्तिगत, राजनैतिक या धार्मिक दृष्टिकोणों का भी अनेक प्रकार से अवांछनीय सापेक्षीकरण हो सकता है। ऊँची जगह जाने में डरना, सीढ़ी पर चढ़ने में काँपना, बहता पानी देख कर भयभीत हो जाना, खून देखकर हाथ पाँव फूल जाना आदि अवांछनीय सापेक्षीकरण के कुछ उदाहरण हैं। अवांछनीय सापेक्षीकरण की निर्मूलता और अनर्गलता जानते हुए भी लोग अपने पर नियंत्रण कर सकने में असफल रहते हैं। अवांछनीय सापेक्षीकरण कुशलता प्राप्ति में बाधक बनकर जीवन की सफलता के मार्ग में रोड़ा बन सकता है। क्या अवांछनीय सापेक्षीकरण का उच्छेद कर सकने के उपाय हैं? हैं।

सापेक्षीकरण का उच्छेद

सापेक्षीकृत प्रतिक्रियाओं का निर्माण चूँकि व्यवहार में होता है इस-

लिए उनका उच्छेद (extinction) भी सम्भव है। सापेक्षीकरण को यदि समय समय पर पुनर्शक्त (reinforce) न किया जाय तो वह धीरे धीरे लुप्त होने लगता है। पावलोफ के प्रयोग में यदि कुत्ते को बहुत अवधि तक घंटी के बाद खाना न दिया जाय तो उसमें घंटी से लार बहने की प्रतिक्रिया क्षीण पड़ते पड़ते लुप्त होने लगेगी। किन्तु यह भी देखा गया है कि लुप्त हो चुकी सापेक्षीकृत प्रतिक्रिया कभी कभी फिर प्रस्फुटित हो जाती है; इसलिए सापेक्षीकरण के अधिक सक्रिय उच्छेद के लिए कोई दूसरा उपाय ढूँढ़ना चाहिए।

एक अच्छा उपाय पुनर्सापेक्षीकरण (reconditioning) है। पुनर्सापेक्षीकरण द्वारा जिस उत्तेजना से पहले ही सापेक्षीकरण हो चुका है प्राणी का उस उत्तेजना से ऋणात्मक समायोजन (negative adaptation) कराया जाता है। जब कोई पहले पहल किसी कारखाने या बाज़ार के पास रहता है तो वहाँ के शोरगुल से परेशान होता है किन्तु धीरे धीरे उसका उस शोरगुल से ऋणात्मक समायोजन हो जाता है और तब वह परेशान नहीं होता। घोड़ा शुरू शुरू में अपने मुँह में लगाम नहीं लगाने देता किन्तु धीरे धीरे उसका लगाम के प्रति ऋणात्मक समायोजन कर दिया जाता है और वह लगाम लगाने देता है।

सापेक्षीकरण के उच्छेद का एक और उपाय सापेक्षीकरण करने वाली उत्तेजना को किसी वांछनीय संचारी भावात्मक (emotional) प्रतिक्रिया से सम्बन्धित कर देना है। यदि कोई बच्चा बिल्ली से डरता है तो जिस समय बच्चे में किसी सुखद प्रतिक्रिया (खेलने आदि) की प्रधानता हो उस समय उसे दूर पर बिल्ली को खेलते हुए दिखाया जाय। इस प्रकार बच्चे की उस समय प्रधानता रखने वाली सुखद प्रतिक्रिया (खेलना) बिल्ली की उत्तेजना से सम्बन्धित हो जायगी और तब बिल्ली की उत्तेजना से हो गई डर की पुरानी सापेक्षीकृत प्रतिक्रिया (डर) का उच्छेद हो जायगा।

लेकिन इसमें बड़ा सावधान रहना चाहिए कि कहां बिल्ली को देखकर बच्चे की डर की प्रतिक्रिया उसके खिलौनों आदि से सम्बन्धित न हो जाय। यदि किसी व्यक्ति को कोई ऐसी चीज़ खिलाना है जिसमें उसे रस न मिलता हो तो उस चीज़ को उसकी मनचाही चीज़ों के साथ देना चाहिए। मन-चाहे खानों के प्रति उस व्यक्ति की सुखमय प्रतिक्रिया नापसन्द चीज़ से सम्बन्धित की जा सकती है।

(२) चूक और चेष्टा

ज्ञान-विज्ञान की महान् से महान् खोजों का मूल दैनिक जीवन के बहुत मामूली से लगने वाले अनुभवों में होता है। फलों को पेड़ों से गिरते हुए कौन नहीं देखता? किन्तु इस साधारण दैनिक अनुभव से गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की खोज करने के लिए इसे न्यूटन की आँख से देखना चाहिए। खौलते पानी की पतीली के ढक्कन को उछलते हुए सभी देखते हैं किन्तु यह जेम्स वाट की ही पैनी दृष्टि थी जिसने इस मामूली अनुभव के पीछे भाप की वह अदम्य शक्ति देख ली जो वर्तमान मानव सभ्यता के पहिए की धुरी बनी हुई है। जीवन के साधारण अनुभवों और घटनाओं को यदि पैनी दृष्टि से देखा जाय तो उनसे महत्वपूर्ण तथ्यों का पता चल सकता है। मनोविज्ञान के सिद्धान्त दैनिक अनुभवों से प्राप्त तथ्य ही तो हैं। ऐसी मनोरंजक घट-नाओं की कमी नहीं है किन्तु यहाँ उस मनोरंजक घटना को सुनिए जिससे सीखने के एक महत्वपूर्ण प्रकार पर प्रकाश पड़ा।

प्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री लायड मॉर्गन अपने पालतू कुत्ते के साथ सबेरे टहलने जाया करते थे। टहलते समय कभी कभी वे खिलवाड़ के लिए अपनी छड़ी कुत्ते के आगे फेंक देते थे। कुत्ता दौड़कर छड़ी अपने मुँह में दबाकर अपने स्वामी के पास ले आता था। एक दिन टहलते टहलते वे ऐसी जगह जा पहुँचे जहाँ तारों का एक घेरा बना हुआ था। कौतूहलवश उन्होंने अपनी छड़ी तारों के घेरे के उस पार फेंक दी। घेरे में कुत्ते के उस

पार निकल सकने भर के लिए एक छेद था। कुत्ता उस छेद में से निकल गया और छड़ी को मुँह में दबाकर उसी छेद से इधर आने लगा किन्तु छड़ी उसके मुँह में बीच से दबी होने से नहीं निकल सकी। कुत्ते ने बार बार चेष्टा की कि वह छड़ी सहित छेद से निकल आए किन्तु हर बार उसकी चेष्टा विफल रही। वह छड़ी को मुँह से छोड़कर बार बार फिर पकड़ता था और छेद से निकलने की कोशिश में चूक जाता था। अकस्मात उसने छड़ी के एक सिरे को मुँह से पकड़ा और इस बार वह छड़ी सहित छेद से इधर निकल आया।

प्रश्न उठता है कि यदि छड़ी दुबारा घेरे के उधर फेंक दी जाती तो क्या कुत्ता उसको सिरे से पकड़कर छेद से फिर इधर निकल आता? क्या कुत्ते ने छेद से निकल सकने के लिए छड़ी को सिरे से पकड़ना सीख लिया था? इसके उत्तर के लिए मॉर्गन ने छड़ी फिर घेरे के उधर फेंक दी। कुत्ता फिर छेद से उधर जाकर छड़ी को लाने लगा किन्तु फिर चूक गया। स्पष्ट था कि उसने अपने पूर्व अनुभव से कुछ नहीं सीखा। बार बार कोशिश करने और चूकने पर अकस्मात उसने छड़ी फिर सिरे से पकड़ ली और छेद से छड़ी सहित निकल आया। किन्तु इस बार की चेष्टा में उसे उतना समय नहीं लगा जितना पहली बार की चेष्टा में लगा था; शायद यह एक संयोगमात्र ही रहा हो। किन्तु देखा यह गया कि दिन प्रतिदिन कुत्ते की चूक (error) और उसकी सफल चेष्टा (trial) में समय का अन्तर क्रमशः घटता रहा और एक दिन उसने एक बार भी चूक (error) न करके छड़ी को सिरे से पकड कर छेद से निकल आना सीख लिया। इससे इस तथ्य का पता चला कि सीखने में चूक और चेष्टा (trial and error) का भी सापेक्षीकरण के बराबर ही महत्व है।

चूक-चेष्टा के प्रयोग

इसके बाद प्रयोगशालाओं में चूक-चेष्टा के अनेक प्रयोग करके सीखने

से सम्बन्धित बहुत से तथ्यों का अनुसन्धान किया गया। प्रयोगशालाओं में पशुओं पर ही अधिक प्रयोग किया गया किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य चूक-चेष्टा द्वारा कुछ नहीं सीखता। पशुओं के व्यवहार में उतनी जटिलता नहीं होती जितनी मनुष्य के व्यवहार में होती है इसलिए पशुओं पर प्रयोग कर सकना अपेक्षतया आसान होता है और सीखने के जो नियम उन पर लागू होते हैं वही मनुष्य के सीखने पर भी लागू होते हैं। पशुओं पर सीखने का प्रयोग करने के लिए पहले उनका उनके परिवेश (environment) से सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है और फिर समुचित दंड या पुरस्कार द्वारा उनका परिवेश से पुनर्संतुलन (readjustment) कराया जाता है। पशुओं का उनके परिवेश से सम्बन्ध तोड़ने के लिए मनोवैज्ञानिक या तो उन्हें किसी ऐसे पिंजड़े में बन्द कर देते हैं जिससे बाहर निकल सकना उनके लिए एक समस्या बन जाती है या उन्हें किसी भूल भुलैया (maze box) में छोड़ देते हैं जिसमें चक्करदार अनेक गलियारे होते हैं किन्तु लक्ष्य तक पहुँचने का केवल एक ही गलियारा होता है। तब प्रयोगकर्त्ता यह देखता है कि परिवेश से पुनर्संतुलन करने (समस्या का हल करने या भूलभुलैया में लक्ष्य तक पहुँचने) के लिए पशु ने कैसे चेष्टा की और कितनी बार की, वह कितनी बार चूका और सफलता से पुनर्संतुलन करने में उसे कितना समय लगा? यह कह सकना कठिन है कि प्राणी बिना उद्देश्य के भी सीख सकता है या नहीं। चूक-चेष्टा के इन प्रयोगों में पशुओं के सामने उनकी उद्देश्यात्मक प्रतिक्रिया को सन्तुष्ट कर सकने वाली उत्तेजनाएँ इस तरह प्रस्तुत की जाती हैं जिन तक पहुँचने में कोई बाधा पड़े।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक ने प्रारम्भ में बिल्लियों पर प्रयोग किए। भूखी बिल्ली को पिंजड़े में बन्द कर दिया और खाना पिंजड़े के बाहर रख दिया गया जो उसकी पहुँच के बाहर था। आन्तरिक उद्देश्य

भूख से प्रेरित होकर बिल्ली खाने तक पहुँचने की चेष्टा करने लगी किन्तु पिंजड़ा उसमें बाधक बनता था। खाने तक पहुँच सकना उसके लिए एक समस्या थी जिसको हल कर सकने का सही साधन केवल एक ही था— पिंजड़े के दरवाज़े से निकलने के लिए चिटकनी खोलना। बिल्ली देर तक पिंजड़े में इधर उधर भटक भटक कर पंजे और मुँह मारती रही। सहसा उसका पंजा चिटकनी पर पड़ गया जिससे दरवाजा खुल गया और वह बाहर आ कर खाने तक पहुँच गई। क्या बिल्ली ने बाहर आने के लिए चिटकनी खोलना सीख लिया? क्या वह पिंजड़े से बाहर निकलने और चिटकनी खोलने का सम्बन्ध जान गई?

नहीं। दूसरी बार उसे जब पिंजड़े में फिर बन्द किया गया तो वह फिर बाहर निकलने के लिए पंजे और मुँह मार मार कर अनावश्यक चेष्टाएँ करती रही जिससे स्पष्ट था कि उसने भी मॉर्गन के कुत्ते की भाँति अपने पूर्व अनुभव से कुछ नहीं सीखा। किन्तु दिन प्रतिदिन उसकी चेष्टाओं में लगने वाला समय कम होता गया और एक दिन उसने भी मार्गन के कुत्ते की भाँति बिना चूके बाहर आना सीख लिया।

इसी भाँति चूहों को भूलभुलैया (maze) में रखकर प्रयोग किए गए। भूलभुलैया के बीचोबीच कोई खाने की चीज़ रख दी जाती है। भूल-भुलैया के अनेक चक्करदार गलियारों में से केवल एक गलियारा ही खाने तक पहुँचता है, शेष गलियारे बीच ही में रुक जाते हैं (चित्र ४१)। चूहे को जब पहली बार भूलभुलैया में छोड़ा जाता है तो वह चक्कदार गलियारों में इधर उधर भटकता और सूँघता सा घूमता रहता है। घूमते घूमते वह खाने तक पहुँच जाता है। तब उसे निकाल कर भूलभुलैया में फिर से छोड़ा जाता है। अब वह जल्दी जल्दी इधर उधर चक्करदार गलियारों में घूम कर खाने तक पहुँचने की चेष्टा करता है। इस प्रयोग की अनेक बार आवृत्ति कराने पर चूहा धीरे धीरे इधर उधर के गलियारों में व्यर्थ भटकना छोड़ता जाता

है और भूलभुलैया के आदि से खाने के अन्त तक दिनोंदिन शीघ्र पहुँचता रहता है।

प्रयोगों की व्याख्या

अब बिल्ली ने पिंजड़े से बाहर निकलने और चूहे ने भूलभुलैया के चक्करदार गलियारों से खाने तक पहुँचने में जो चेष्टाएँ कीं उनकी व्याख्या करने की समस्या पैदा होती है। बिल्ली और चूहे की असफल चेष्टाएँ दिन प्रतिदिन क्यों छूटती चली जाती हैं? क्या उनमें उत्तेजना और प्रति-

चित्र ४१
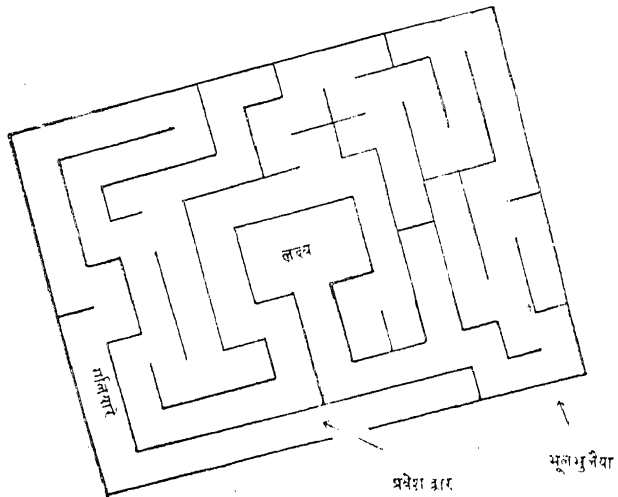
क्रिया के सम्बन्ध को जान सकने की क्षमता आ जाती है? इन प्रश्नों की व्याख्या के लिए थार्नडाइक ने 'प्रभाव का नियम' (Law of Effect) प्रतिपादित किया। इस नियम के अनुसार सफलता की दिशा में जो चेष्टा

की जाती है उससे सन्तोष होता है और इसलिए उसका प्रभाव प्रतिक्रिया और न्यूरोनीय व्यवस्था के सम्बन्ध को दृढ़ बनाता है। असफल चेष्टाओं के प्रति खीझ पैदा होती है जिससे उनका प्रभाव प्रतिक्रिया और न्यूरोनीय व्यवस्था के सम्बन्ध को दृढ़ नहीं बना पाता। बार बार की चेष्टा से बिल्ली और चूहे की न्यूरोनीय व्यवस्था पर सफल चेष्टाओं की छाप पड़ती रहती है और ज्यों ज्यों वह छाप गहरी होती जाती है त्यों त्यों बिल्ली और चूहे की असफल चेष्टाएँ आप से आप छूटती जाती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि बाद में वे बिना चूके ही पिंजड़े से निकलने और भूलभुलैया में खाने तक पहुँचने की सही प्रतिक्रिया करना सीख जाते हैं।

(३) सीखने में सूझ-बूझ

किन्तु इस व्याख्या पर आक्षेप उठाया गया है। न्यूरोनीय व्यवस्था पर उन्हीं क्रियाओं की छाप गहरी पड़ती है जो बार बार की जाती हों। उपर्युक्त दोनों प्रयोगों में बिल्ली और चूहे की असफल चेष्टाएँ उनकी सफल चेष्टाओं से बहुत ज्यादा थीं अतएव उनकी न्यूरोनीय व्यवस्था पर असफल क्रियाओं की छाप गहरी पड़ना चाहिए जिसका यह अर्थ हुआ कि उन्हें पिंजड़े से बाहर निकलना और भूलभुलैया के चक्करदार गलियारों से खाने तक पहुँच जाना नहीं सीखना चाहिए था। किन्तु फिर भी यदि वे लक्ष्य तक पहुँचने की सफल क्रियाओं को सीख गए तो इसका कारण सीखने के पीछे उनकी सूझ-बूझ (insight) को मानना पड़ेगा, न्यूरोनीय व्यवस्था पर पड़ी छापों को नहीं।

जर्मनी के मनोवैज्ञानिकों किफ्का और कीलर आदि ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सीखने में पशु भी सूझ-बूझ से काम लेते हैं। पशुओं की सूझ-बूझ (insight) का यह अर्थ नहीं है कि वे सीखते समय मनुष्यों की भाँति विचार करते हैं या आगा-पीछा सोचते हैं। पशुओं की सूझ-बूझ का यही अर्थ है कि वे उत्तेजना और प्रतिक्रिया के

सम्बन्ध की सार्थकता को जान जाते हैं। पिंजड़े से निकलने और भूलभुलैया के चक्करदार मार्गों से खाने तक पहुँचने की समस्या बिल्ली और चूहे जैसे पशुओं के लिए अत्यन्त जटिल है जिससे सीखने में उनकी सूझ-बूझ प्रदर्शित नहीं की जा सकती। बच्चों को भी यदि वैसी ही जटिल समस्यायें दी जाँय तो वे भी समस्याओं के सार्थक सम्बन्ध को न समझ पाकर चूक-चेष्टा (trial and error) द्वारा ही सीखने का प्रयत्न करने लगेंगे। इस बात को ध्यान में रखकर कीलर ने सरल समस्याओं को बनाकर कुत्तों, मुर्गियों
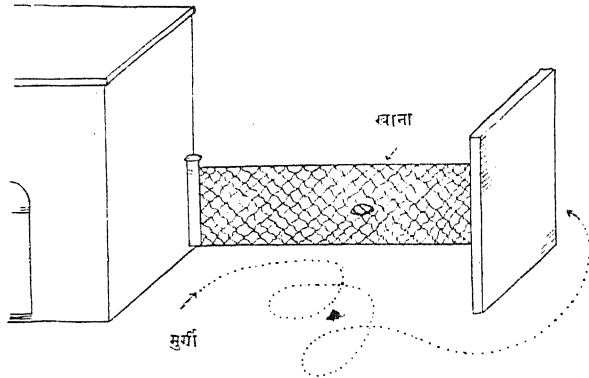
चित्र ४२

और बन्दरों आदि पशुओं पर प्रयोग किए। उसने एक जालीदार दीवार के उधर खाना रख दिया। जालीदार दीवार के इधर मकान और एक दीवार थी। मकान और दीवार के बीच एक मुर्गी को छोड़ दिया गया। पहले तो मुर्गी जालीदार दीवार के उस पार रक्खे खाने को न देख सकी और इधर ही दीवार और मकान के बीच चक्कर काटती रही किन्तु जब उसने खाना देखा तो उसके व्यवहार में एकदम परिवर्तन आ गया और वह दीवार के पीछे से होकर खाने तक पहुँच गई (चित्र ४२)।

खाने को न देख पाने तक मुर्गी के लिए मकान और दीवार का वह अर्थ नहीं था जो खाने को देखने के बाद हो गया। खाने को देखने के बाद उसने जालीदार दीवार के उस पार रक्खे खाने और इधर की दीवार के नए सम्बन्ध को जान लिया या उनकी सार्थकता को देख लिया। जब तक उसने खाना नहीं देखा था तब तक इधर की दीवार उसके लिए एक अर्थहीन बाधा थी किन्तु खाने को देख लेने के बाद वही अर्थहीन बाधा एक सार्थक बाधा हो गई जिसके बगल से घूमकर खाने तक पहुँचा जा सकता था। इस सार्थकता से मुर्गी की बोधवाहक व्यवस्था (sensory organisation) में भी परिवर्तन हो गया और उसने दीवार की बाधा और खाने के नए सम्बन्ध की सार्थकता को जान लिया। नए सम्बन्ध की सार्थकता को जान लेने और परिणाम स्वरूप बोधवाहक व्यवस्था में नया परिवर्तन हो जाने को ही कीलर ने 'सूझ-बूझ' (insight) कहा।

पशुओं में उत्तेजना और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध की सार्थकता को जान लेने की सूझ-बूझ आ जाने का प्रदर्शन करने के लिए कीलर ने लंगूरों पर प्रयोग किए। एक लंगूर को पिंजड़े में बन्द कर दिया गया और पिंजड़े के बाहर केले रख दिए गए जो लंगूर की पहुँच के अन्दर नहीं थे। पिंजड़े में बाँस की दो छोटी लकड़ियाँ डाल दी गईं जो एक दूसरे में घुसेड़ कर जोड़ी जा सकती थीं। लंगूर पहले तो केलों तक पहुँचने के लिए पिंजड़े की सलाखों से हाथ बढ़ा बढ़ा कर चूक-चेष्टा करता रहा किन्तु कुछ देर बाद उसने चेष्टा करना छोड़ दिया। फिर उसने एक लकड़ी उठाकर उससे केलों को अपनी ओर सरकाने की चेष्टा की लेकिन लकड़ी केलों तक पहुँच सकने के लिए छोटी थी और लंगूर की यह चेष्टा भी असफल रही। अन्त में वह मन मारकर बैठ गया और दोनों लकड़ियों से खेलने लगा। अकस्मात् उसमें सूझ-बूझ जाग्रत हो गई। उसने लकड़ियों को एक दूसरे में घुसेड़कर केलों तक पहुँचाने के लिए लम्बा बना लिया। किन्तु केलों को सरकाते वक्त दोनों

लकड़ियाँ फिर अलग हो गईं। लंगूर का इस समय का व्यवहार ध्यान देने योग्य था। वह केलों की ओर से ध्यान हटाकर लकड़ियों को जोड़ने में जुट गया मानो उसे इस नए आविष्कार से बड़ा सन्तोष मिल रहा हो। लकड़ियों को फिर से जोड़कर वह केलों को अपने पास तक सरका लाने में सफल हो गया। केलों की उत्तेजना और लकड़ियों को जोड़कर केलों को सरका लाने की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध की सार्थकता को जान लेने के बाद लंगूर से फिर कभी चूक नहीं हुई। यह प्रयोग सूझ-बूझ द्वारा सीखने का अच्छा उदाहरण है। सूझ-बूझ (insight) उम्र और पूर्व अनुभव पर निर्भर होती है और उसके जाग्रत हो जाने पर चूकने की सम्भावना नहीं रह जाती।

मनुष्यों का सीखना

मनुष्यों के सीखने की क्रियाओं का अध्ययन करने के लिए भी भूल-भुलैया (maze) आदि बनाकर प्रयोग किया जाता है। यों तो मनुष्य जीवन भर कुछ न कुछ सीखता रहता है किन्तु उस सबका अध्ययन कर सकने के लिए न तो उसकी परिस्थितियों पर नियंत्रण रक्खा जा सकता है और न ही उसकी अपने पूर्व अनुभव और शिक्षा से लाभ उठाने की क्षमता को अलग किया जा सकता है। भूलभुलैया या अन्य तरह की पहेलियाँ मनुष्य के लिए भी नई होती हैं और उन पर नियंत्रण भी रक्खा जा सकता है जिससे मनुष्य जब उन्हें सीखता है तो उसकी हर चेष्टा का ठीक ठीक अवलोकन हो सकता है। भूलभुलैया को सीखने की समस्या नई होने के कारण उसे सीखने में मनुष्य अपनी पहले की अर्जित कुशलता या शिक्षा से लाभ नहीं उठा पाता।

मनुष्य के लिए भूल-भुलैया लकड़ी के तख्ते को खोदकर बनाई जाती हैं। पहले मनुष्य की आँखों पर पट्टी बाँध दी जाती है जिससे वह भूल भुलैया को पूरी तौर से न देख पाए। इसके बाद उससे उँगली से भूल-भुलैया के चक्करदार गलियारों से सही मार्ग को ढूँढ़ने की चेष्टा करने को

कहा जाता है। मनुष्य और चूहे आदि पशुओं की भूल-भूलैया सीखने की तुलना करके यह देखा गया है कि जितने समय में मनुष्य भूलभुलैया का सही गलियारा सीखता है उतने ही समय में चूहा भी सीख लेता है। किन्तु मनुष्य और चूहे आदि के भूलभुलैया सीखने में बड़ा अन्तर होता है। मनुष्य भूलभुलैया सीखने में मौखिक सहायता ले सकता है। वह मन ही मन में यह हिसाब लगा सकता है कि सही मार्ग ढूँढ़ने के लिए उँगली को इतनी बार इधर, इतनी बार उधर, फिर इतनी बार ऊपर और नीचे फेरना चाहिए। चूहा यह नहीं करता। भूलभुलैया सीख चुकने के बाद मनुष्य उसके सही गलियारे का चित्र बना सकता है और भूलभुलैया के नक्शे को खींच सकता है। चूहा यह भी नहीं कर सकता। मनुष्यों से यह पूछे जाने पर कि वे भूलभुलैया कैसे सीखते हैं यह पता चला है कि वे सही गलियारे ढूँढ़ने के लिए सामान्य दिशा और विशेष स्थलों का सहारा लेते हैं जिस प्रकार आप अपने मित्र का मकान ढूँढ़ने में बिजली के खम्भों या दुकानों का सहारा लेते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य को पहेलियाँ देकर उनका समाधान सीखने पर भी प्रयोग किए गए हैं। आपने मेलों में तार के बने गोरख धन्धे नामक खिलौने देखे होंगे जिनमें कोई न कोई गोरख धन्धा यानी जटिल पहेली होती है। तारों के जाल में एक छल्ला पड़ा होता है और समस्या होती है उसे निकाल लेना। आप खिलौने को हाथ में लेकर गौर से देखते हैं कि छल्ला शायद आपके किसी पूर्व परिचित सिद्धान्त को लागू करने से निकल आए और आप मन ही मन चूक-चेष्टा (trial and error) द्वारा उसके हर सम्भावित हल को सोचते हैं। आप खिलौने को घुमाकर छल्ले और तारों का कोई सार्थक सम्बन्ध जानने की चेष्टा करते हैं। हो सकता है कि आपके सामने तारों का कोई ऐसा भाग आ जाय जो आपकी सूझ-बूझ को जाग्रत कर दे। अगर आप छल्ले और तारों का सार्थक सम्बन्ध नहीं समझ पाते

तो आप तुक बैठाने के लिए छल्ले के साथ इधर उधर खींचतान करना शुरू कर देते हैं।

इससे यह परिणाम निकलता है कि सूझ-बूझ (insight) आपकी अपनी बोध-वाहक व्यवस्था (sensory organisation) कर सकने की शक्ति पर निर्भर होती है। किसी समस्या के प्रति यदि आप अपनी समुचित बोधवाहक व्यवस्था नहीं कर पाते तो आपका व्यवहार चूक-चेष्टा का हो जाता है। बड़े बड़े विचारशील व्यक्ति भी संकट के समय अपना हाथ दिखाने या मंत्रजाप करने में लग जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे संकट का समाधान कर सकने के लिए अपनी समुचित बोधवाहक व्यवस्था नहीं कर पाते।

इन प्रयोगों से एक यह भी परिणाम निकलता है कि चूक-चेष्टा (trial and error) और सूझ-बूझ (insight) साथ साथ चलती है। कीलर के प्रयोग में बन्दर पहले तो केलों तक पहुँचने के लिए चूक-चेष्टा ही करता रहा, बाद में लकड़ियों को जोड़ लेने से उनमें सूझ-बूझ जाग्रत हो सकी। छल्ले को तारों से निकालने में सूझ-बूझ से काम लेने के पहले आप भी मन ही मन चूक-चेष्टा द्वारा हर सम्भावित हल करते रहे थे केवल आपकी चूक-चेष्टा की अभिव्यक्ति ही तो आपके वाह्य व्यवहार में नहीं हुई। मनुष्य को चूक-चेष्टा वहाँ ज्यादा करनी पड़ती है जहाँ किसी काम को सीखने में विशेष प्रकार के मांसपेशीय संगठन (muscular pattern) की जरूरत पड़ती है जैसे टाइप करना, नाचना या एक पहिए की बाइसिकिल चलाना आदि।

सीखने का लेखा

यह ठीक है कि 'सीखने' को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखा जा सकता और इसलिए उसका लेखा भी नहीं बनाया जा सकता किन्तु सीखते समय प्राणी

के व्यवहार क्रम को प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है और उसका लेखा तैयार किया जा सकता है। सीखने का अर्थ है कुशलता प्राप्त करना और प्राणी ज्यों ज्यों कुशलता प्राप्त करता जाता है त्यों त्यों उसके व्यवहार में अन्तर पड़ता जाता है और उसके व्यवहार के अन्तर का लेखा बनाकर प्राणी के सीखने से सम्बन्धित अनेक बातों का अनुमान और निर्देशन किया जा सकता है, जैसे प्राणी के सीखने की उन्नति की गति कैसी रही, सीखने में उसे कितना समय लगा और वह कितना सीख पाया।

मान लीजिए आप किसी बच्चे को दो का पहाड़ा सिखा रहे हैं। आप उसके सीखने का लेखा यों बना सकते हैं : पहले आप एक ग्राफ (graph) तैयार कर लीजिए जिसमें एक ओर गलतियों का खाना रहे और दूसरी ओर दिन या समय लगने का। यदि बच्चा पहले दिन ग्यारह गलतियाँ करता है तो आप पहले दिन और ग्यारह गलतियों के खाने में एक बिन्दु लगा दीजिए। इसी तरह बच्चा पहाड़ा सीखने में जितने दिन लगाए और रोज जितनी गलतियाँ करे आप उसी हिसाब से दिनों और गलतियों के खानों में बिन्दु लगाते चले जाइए। जब बच्चा पहाड़ा अच्छी तरह सीख जाय और कोई गलती न करे तो आप ग्राफ में बने सारे बिन्दुओं पर एक रेखा खींच दीजिए (चित्र ४३)। आप देखेंगे कि यह रेखा तिर्यक् (curved) होगी। यह तिर्यक-रेखा (curve) बच्चे के पहाड़ा सीखने का लेखा है जिससे आप यह निर्देशन कर सकते हैं कि पहाड़ा सीखने की कुशलता प्राप्त करने में बच्चे को कितने दिन लगे, उसने प्रतिदिन के हिसाब से कितनी गलतियाँ कीं और सीखने की कुशलता की दिशा में उसकी उन्नति की गति कैसी रही।

टाइप करना सीखना, तारबर्की सीखना आदि जैसी अनेक प्रकार की बोधवाहक-क्रियावाहक कार्य कुशलताओं का लेखा इसी प्रकार बनाया जा सकता है और तिर्यक-रेखाओं (curves) के आधार पर सीखने का निर्दे-

शन किया जा सकता है। तिर्यक-रेखाओं के उतार-चढ़ाव के आधार पर यह पाया गया है कि हर व्यक्ति की कोई काम सीखने की क्षमता अलग अलग होती है।
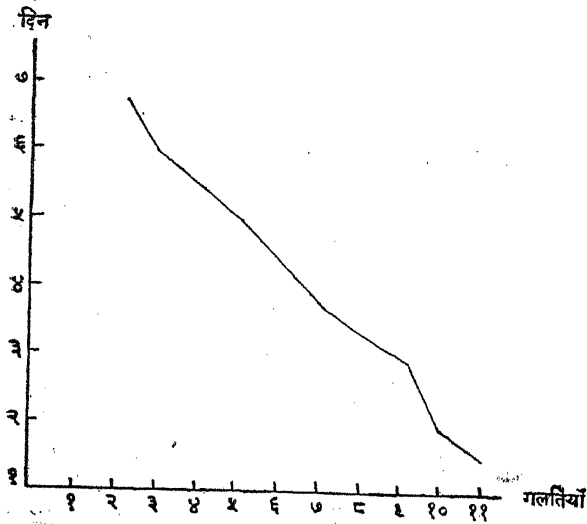
चित्र ४३

सीखने की तिर्यक-रेखाओं (curves) के उतार-चढ़ाव के अध्ययन से यह पता चलता है कि शुरू शुरू में सीखने की गति अच्छी रहती है, फिर मामूली सी होती चली जाती हैं और एक स्थल ऐसा आता है जहाँ अभ्यास से कुशलता में और वृद्धि होना रुक जाता है। ऐसे स्थल पर सीखने की तिर्यक-रेखा समतल हो जाती है। तिर्यक-रेखा के समतल हो जाने वाले स्थल को तिर्यक-रेखा का पठार (plateau) कहते हैं (चित्र ४४)। तिर्यक-रेखा के पठार का सामान्य अर्थ यह होता है कि व्यक्ति में सीखने की

जितनी शारीरिक सीमा थी वह उस तक पहुँच चुका है। सीखने की शारीरिक सीमा वस्तुत: मांसपेशियों की कार्यशक्ति और न्यूरोनीय प्रवाह की गति से निर्धारित होती है जो प्राणी की परिपक्वता पर निर्भर है।
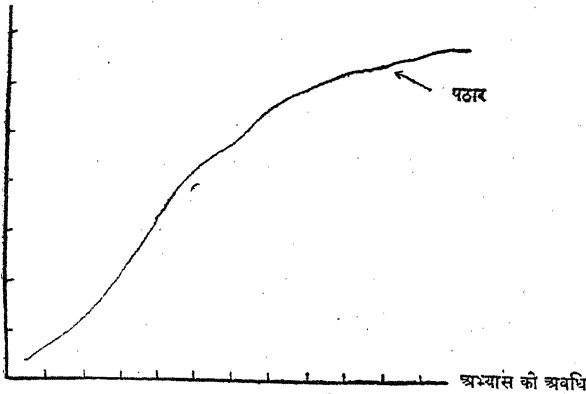
चित्र ४४

किन्तु तिर्यक-रेखा (curve) प्राणी के व्यवहार क्रम का लेखा होती है उसके 'सीखने' का नहीं इसलिए तिर्यक-रेखा के पठार की व्याख्या सावधानी से करना चाहिए। पठार की सही व्याख्या में यही कहा जा सकता है कि पठार सीखने में प्रकट रूप से कोई उन्नति न होने का ही निर्देशन करता है, सीखने की शारीरिक क्षमता या सीमा का निर्देशन नहीं करता। तिर्यक-रेखा में पठार आने के अनेक कारण हो सकते हैं।

यदि व्यक्ति सीखने में कुछ समय के लिए रुचि न ले तो उसके सीखने की तिर्यक-रेखा में पठार आ जाता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि उस व्यक्ति के सीखने की शारीरिक क्षमता का अन्त हो चुका है।

हो सकता है कि वही व्यक्ति फिर उस काम में रुचि लेकर उसे दुगने उत्साह से सीखे और पठार के बाद उसके सीखने की तिर्यक-रेखा उसकी कार्य कुशलता की वृद्धि का फिर निर्देशन करने लगे।

व्यक्ति यदि किसी समस्या को हल करते समय कोई नया ढंग अपनाता है तो तिर्यक-रेखा (curve) में पठार आ जाता है। कोई व्यक्ति एक उँगली से टाइप करना सीख रहा हो और उसकी गति अच्छी हो गई हो और यदि वह इतने के बाद पाँचों उँगलियों से टाइप सीखने का नया ढंग अपना ले तो उसके सीखने की तिर्यक-रेखा में पठार (plateau) आ जायगा क्योंकि वह अपने नए ढंग में पुराने ढंग से अर्जित कुशलता से लाभ नहीं उठा सकेगा।

सीखने में किसी प्रकार की बाधा पड़ने से भी तिर्यक-रेखा में पठार आ जाता है। जिस विद्यार्थी ने रटने-घोटने की आदत डाल ली है उसे यदि कोई ऐसी बात बताई जाय जिसे रटने की सम्भावना न हो तो उस विद्यार्थी के सीखने की तिर्यक-रेखा में पठार आ जायगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह उस बात को सीख नहीं सकता वरन् उसका रट्टूपन उस बात को सीखने में बाधा डालता है।

बहुत से कामों को सीखने की तिर्यक-रेखा में पठार नहीं आते जिससे स्पष्ट है कि पठार सीखने का अनिवार्य अंग नहीं होते। सीखने के लेखे में पठारों का आना काम की जटिलता और व्यक्ति के उस काम को सीखने के ढंग और अपनी पूर्व शिक्षा-दीक्षा से लाभ उठा सकने की क्षमता पर निर्भर होता है।

प्रश्न

१—प्राणी के जीवन में सीखने के महत्व पर प्रकाश डालिए।

२—सापेक्षीकरण किसे कहते हैं और उसकी खोज किसने और कैसे की थी ?

३—'मनुष्य का सारा व्यवहार प्रक्षिप्त क्रियाओं की एक लम्बी शृंखला के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।' व्याख्या कीजिए।

४—सापेक्षीकरण किस दिशा में होता है और क्यों होता है ? अपने पक्ष के समर्थन के लिए उदाहरण दीजिए।

५—क्या सापेक्षीकरण करने के लिए उत्तेजनाओं की पुनरावृत्ति करना आवश्यक है ? उदाहरण सहित समझाइए।

६—क्या सापेक्षीकरण का उच्छेद कर सकना सम्भव है ? यदि है तो उसका सब से अच्छा उपाय क्या है ? उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

७—सापेक्षीकरण के उच्छेद में पुनर्सापेक्षीकरण का क्या महत्व है ? आप अपनी किसी आदत को छोड़ने के लिए पुनर्सापेक्षीकरण करने का प्रयत्न किस तरह करेंगे ?

८—सीखने के चूक और चेष्टा के प्रकार की व्याख्या कीजिए।

९—चूक और चेष्टा के प्रयोग अधिकतर पशुओं पर ही किए गए हैं फिर उनसे प्राप्त निष्कर्ष मनुष्य के सीखने पर किस तरह लागू हो सकते हैं ? इस विषय पर अपना मत उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

१०—चूक और चेष्टा पर किए गए प्रयोगों की व्याख्या कीजिए।

११—सीखने में पशुओं की सूझ-बूझ का क्या तात्पर्य है ? पुस्तक में वर्णित किसी प्रयोग का उल्लेख करते हुए स्पष्ट कीजिए।

१२—'सीखने में मनुष्य भी चूक-चेष्टा से काम लेता है', इस कथन पर उदाहरण सहित प्रकाश डालिए।

१३—चूक-चेष्टा और सूझ-बूझ से सीखने में यदि कोई पारस्परिक सम्बन्ध हो तो उसे स्पष्ट कीजिए।

१४—'सूझ-बूझ प्राणी की बोध-वाहक व्यवस्था कर सकने की शक्ति पर निर्भर होता है', इस कथन का आशय समझाते हुए उसके पक्ष में किसी प्रयोग का उल्लेख कीजिए।

१५—सीखने का लेखा कैसे बनाया जाता है और उसका अध्ययन कैसे किया जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर सीखने का लेखा बनाकर दीजिए।

१६—सीखने के लेखे की तिर्यक-रेखाओं में पठार आने के क्या कारण होते हैं ? तिर्यक-रेखा के पठार का चित्र बनाते हुए पठार की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

७

सीखना और याद रखना

परिवेश से संतुलित व्यवहार कर सकने की क्षमता का विकास सीखने से होता है। मूलप्रवृत्तियों (instincts) के स्तर से हटकर परिवेश से अपना संतुलन करने में प्राणी पूर्व अनुभव से सीखी कुशलता का उपयोग करता है। संतुलित व्यवहार पूर्व अनुभव और नवीन स्थिति में संघर्ष का परिणाम होता हैं। जो प्राणी प्रक्षिप्त (reflex) क्रियाओं और मूलप्रवृत्तियों के स्तर से उठकर परिवेश से अपना संतुलन कर सकने में असमर्थ रहते हैं विकास क्रम में उनका विनाश हो जाता है। संसार के प्राणियों की अनेक जातियों के विनाश का यही कारण है। सीखने का महत्व इसी से स्पष्ट है कि मनुष्य धन, शक्ति और समय लगाकर उन बातों को सीखने की चेष्टा करता है जो उसके उद्योग-धन्धों और सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक होती हैं।

उत्तेजना और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध की सार्थकता को अच्छी तरह जान लेना सीखना है और अच्छी तरह से सीख लेना याद रखना है। यद्यपि याद रखने का तात्पर्य सामान्यत: मौखिक (verbal) सीखना ही समझा जाता है, जैसे किसी कविता को याद रखना, किंतु एक अर्थ में हमारा शरीर भी सीखी गई कुशलता को 'याद रखता' है। सीखना एक क्रिया है और याद रखना उस क्रिया से अर्जित कुशलता से लाभ उठा ले जाने की क्षमता है।

सीखने पर प्रभाव डालने वाली बातें

संसार का हर प्राणी किसी उद्देश्य से ही कुछ सीखता है। यदि सीखने

के पीछे कोई उद्देश्य न हो तो यह कह सकना कठिन है कि प्राणी सीखने का इरादा भी रक्खेगा या नहीं। उद्देश्य के न होने पर भी सीख सकना सम्भव है या नहीं ? यह तो एक विवादग्रस्त प्रश्न है किंतु प्रयोगों द्वारा सीखने पर उद्देश्य की प्रभावशीलता निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है। प्राणी बिना किसी उद्देश्य के भी सीख सकता है लेकिन तब उसके सीखने में वह कुशलता नहीं आ पाती जो उद्देश्य के रहने पर आती है।
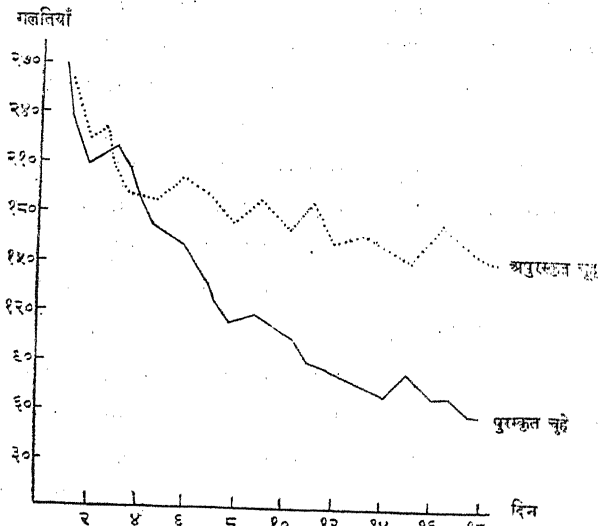
चित्र ४५

सीखने में उद्देश्य की प्रभावशीलता सिद्ध करने के लिए टोलमैन नामक मनोवैज्ञानिक ने चूहों पर प्रयोग किए। भूखे चूहों को भूलभुलैया (maze) सिखाई गई। कुछ चूहों को भूलभुलैया का सही गलियारा पाने पर खाना मिला और कुछ को नहीं मिला। फिर खाना पाने और न पाने वाले चूहों

के सीखने की तुलना की गई और यह देखा गया कि जिन चूहों को खाना मिलता रहा वे तो भूलभुलैया का सही गलियारा सीखने में उन्नति करते रहे किंतु जिनको खाना नहीं मिला वे उन्नति नहीं कर सके। इसके बाद जिन चूहों को खाना मिलता रहा था उन्हें खाना देना बन्द कर दिया गया और जिन्हें मिलता था उन्हें दिया जाने लगा। तुलना करने पर यह देखा गया कि जिन्हें पहले खाना मिलता रहा था किंतु अब नहीं मिलता था वे भूलभुलैया के सही गलियारे पर जाने में अवनति कर रहे थे और जिन्हें पहले खाना नहीं मिलता था किंतु अब मिलने लगा था वे सही गलियारे पर जाने में उन्नति कर रहे थे (चित्र ४५)।

मनुष्य के सीखने पर उद्देश्य की प्रभावशीलता का निश्चय कर सकने के लिए पर्याप्त प्रयोग नहीं किए गए हैं। इसका कारण मनुष्य के गौण उद्देश्यों पर नियंत्रण कर सकने की कठिनाई है। प्रयोगों द्वारा यह साबित हो चुका है कि मनुष्य यदि अपने सीखने की प्रगति को जानता रहता है तो वह जल्दी सीखता है। सीखने की प्रगति जानते रहने से मनुष्य में अपनी सफल क्रियाओं को दुहराने की प्रवृत्ति पैदा होती है जिससे वह अपनी असफल क्रियाओं को ठीक करता चलता है।

मनुष्यों को सिखाने के लिए पुरस्कार और दंड का विधान मानव समाज में प्राचीन काल से चला आ रहा है। समाज में प्रतिष्ठित व्यवहार के लिए मनुष्य को पुरस्कार और अप्रतिष्ठित के लिए दंड सदा दिया जाता रहा है। किंतु पुरस्कार और दंड के पीछे कुछ सिद्धान्त काम करते हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती यद्यपि अब तक प्रायः की जाती रही है।

वास्तविक पुरस्कार वही होता है जो व्यक्ति की किसी तत्कालीन इच्छा को सन्तुष्ट करे। भरे पेट व्यक्ति को अच्छे काम के लिए खाने की चीज देना निरर्थक पुरस्कार है। पुरस्कार की सार्थकता व्यक्ति की इच्छा पूर्ति पर निर्भर होती है। हो सकता है कि जिसे पुरस्कार समझा जा रहा हो वह किसी व्यक्ति

के लिए पुरस्कार न हो। इसलिए किसी व्यक्ति को कोई पुरस्कार देने से पहले यह पता लगा लेना चाहिए कि वह पुरस्कार उस व्यक्ति के लिए सार्थक होगा या नहीं। पुरस्कार प्रतिक्रिया के तत्काल बाद ही मिलना चाहिए नहीं तो उसकी सार्थकता नष्ट हो जाने का भय है। अच्छे कामों के लिए अगले जन्म में फल मिलने के पुरस्कार का प्रलोभन देकर हम अपने समाज के नैतिक स्तर को आज तक ऊँचा नहीं कर सके हैं। "कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ के सर होने तक।"

दंड की अपेक्षा पुरस्कार का प्रभाव प्राणी पर ज्यादा हितकर पड़ता है क्योंकि वह पुरस्कार देने वाले व्यक्ति का सहयोगी और आज्ञाकारी बन जाता है। दंड का प्रभाव कभी-कभी दंड के उद्देश्य को पराजित कर सकता है और प्राणी दंड देने वाले के प्रति विद्वेष रखकर उसी काम को फिर कर सकता है जिसके लिए उसे दंड दिया गया हो। दंड देने से यदि प्राणी की प्रतिक्रिया में परिवर्तन नहीं होता और यदि वह निष्क्रिय बन जाता है तो दंड निरर्थक हो जाता है। दंड का उद्देश्य प्राणी को सही प्रतिक्रिया सिखाना है न कि उसे निष्क्रिय बनाना। दंड भी तभी प्रभावशाली होता है जब वह प्रतिक्रिया के क्षण ही दिया जाय क्योंकि इससे दंड और प्रतिक्रिया का साहचर्य दृढ़ बनता है और मनुष्य अपनी प्रतिक्रिया की गलती तत्काल जानकर उसे छोड़ने की चेष्टा करता है। पुरस्कार और दंड देने में कोई अपवाद नहीं होना चाहिए। अपवाद से पुरस्कार और दंड की सार्थकता घट जाती है।

सीखने पर अभ्यास का प्रभाव

आयु थोड़ी होती है और मनुष्य को सीखना बहुत कुछ पड़ता है। संसार की सारी बातों का सीख सकना असम्भव है। मनुष्य अपने जीवन की सीमित आयु के भीतर मतलब की बातें ही सीख सकता है। अन्य दैनिक कामों से फ़ुर्सत पाने के बाद मान लीजिए किसी व्यक्ति के पास दिन भर में

केवल चार घंटे बचते हैं और उन्हें वह टाइप करना सीखने में लगाना चाहता है। वह अपने समय का उपयोग दो तरह से कर सकता है। वह चार घंटों को या तो छोटे-छोटे टुकड़ों में वितरित करके रोज कई बार अभ्यास करे या एकत्रित रूप में लगातार चारों घंटे। उसे वितरित (distributed) और एकत्रित (massed) अभ्यास में किसे अपनाना चाहिए ? अभ्यास की इन दो प्रणालियों में से किससे ज्यादा अच्छी तरह सीखा जा सकता है ?

इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि सीखने की अनेक स्थितियों में वितरित अभ्यास एकत्रित अभ्यास से सामान्यतः उत्तम पड़ता है। किंतु कुछ स्थितियों में एकत्रित अभ्यास द्वारा सीखने से अधिक कुशलता आती है। विभिन्न स्थितियों में किए गए प्रयोगों से वितरित और एकत्रित अभ्यास द्वारा सीखने पर सापेक्ष प्रभाव डालने वाली अनेक बातों का पता चला है।

यदि सीखने की सामग्री थोड़ी हो तो एकत्रित (massed) अभ्यास वितरित (distributed) अभ्यास से उत्तम होता है। कोई काम करने के लिए पहले 'तैयारी' करना पड़ती है। आप जब पढ़ने बैठते हैं तो पहले पानी पी लेते हैं, फिर किताब खोलकर उसे मेज़ पर ठीक से रखते हैं, फिर पेंसिल नुकीली करते हैं, फिर अपना ध्यान चारों ओर से समेट कर पुस्तक पर एकाग्र करते हैं, तब पढ़ना शुरू करते हैं। इस 'तैयारी' में समय लगता है और यदि आप पढ़ने के समय को वितरित करके रोज कई बार पढ़ें तो बहुत सा समय फिर से 'तैयार' होने में नष्ट होगा। एकत्रित अभ्यास में एक बार 'तैयार' हो जाने के बाद फिर 'तैयार' होने के लिए समय नष्ट नहीं होता।

सीखने में यदि शारीरिक या मानसिक चेष्टा ज्यादा करना पड़ती है तो वितरित (distributed) अभ्यास से ज्यादा अच्छी तरह सीखा जाता है। एकत्रित अभ्यास से शरीर या मनस् थक जाता है जिससे सीखने की

क्षमता घट जाती है। वितरित अभ्यास से बीच बीच में विश्राम मिलता रहता है जिससे शरीर या मनस् सीखने के लिए फिर तरोताज़ा हो जाता है।

शरीर-रचना के प्रसंग में देखा जा चुका है कि एक बार उत्तेजना मिलने पर शरीर के स्नायु संज्ञाशून्य हो जाते हैं और उनकी संज्ञाशून्यता (refractory period) के समय किसी क्रिया की पुनरावृत्ति जल्दी नहीं हो सकती। एकत्रित अभ्यास में क्रिया की पुनरावृत्ति जल्दी जल्दी होती है किन्तु वितरित अभ्यास में विश्राम काल मिलते रहने से सीखने में शीघ्र पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं रहती। वितरित अभ्यास की प्रभावशीलता के मूल में शायद यही कारण होता हो।

वितरित (distributed) अभ्यास के विश्राम काल में व्यक्ति को सीखने के प्रसंग में की गई असफल प्रतिक्रियाओं के सम्बन्धों को भूल जाने का अवसर मिलता रहता है। असफल प्रतिक्रियाएँ दृढ़ नहीं बन पातीं और वे वितरित अभ्यास के विश्राम काल में क्षीण हो जाती हैं।

वितरित अभ्यास में दो प्रमुख समस्याएँ होती हैं : एक बार के अभ्यास में कितना समय लगाना चाहिए और दो अभ्यासों के बीच विश्राम काल में कितना अन्तर देना चाहिए ? टाइप करना सीखने के लिए चार घंटों में से एक बार के अभ्यास में तीस मिनट लगाना चाहिए या पैंतालीस या एक घंटा ? दूसरे, टाइप करने के दो अभ्यासों के बीच विश्राम काल डेढ़ घंटा होना चाहिए या दो या तीन ?

प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि सीखने की प्रगति पर प्रत्येक अभ्यास में लगाए जाने वाले समय और वितरित अभ्यासों के बीच विश्राम काल के अन्तर दोनों का प्रभाव पड़ता है। सीखने की कुशलता के लिए प्रत्येक अभ्यास में लगाया जाने वाला समय और वितरित अभ्यासों के बीच विश्राम काल का अन्तर सीखने की विभिन्न स्थितियों में अलग अलग होता है और सीखने वाले व्यक्ति और उसके उद्देश्य से निर्धारित होता है।

सामग्री को सीखने के ढंग का प्रभाव

सीखने की सामग्री को दो तरह से सीखा जा सकता है : या तो प्रत्येक अभ्यास में पूरी सामग्री को एकदम से या फिर थोड़ा थोड़ा करके। पूरी सामग्री (whole) को एकदम से सीखने में ज्यादा कुशलता आती है या प्रत्येक अभ्यास में उसके एक हिस्से (part) को सीखने से ? मान लीजिए आप भूलभुलैया (maze) सीख रहे हैं। आप या तो प्रत्येक अभ्यास में पूरी भूलभुलैया सीखने का प्रयत्न कर सकते हैं या भूलभुलैया के चार हिस्से करके बारी बारी से प्रत्येक हिस्से को सीख सकते हैं। सामग्री को सीखने के इन दोनों ढंगों में कौन ढंग अच्छा है ? किस ढंग से कम समय में अधिक कुशलता आ सकती है ?

सामग्री को पूरा या थोड़ा थोड़ा करके सीखने पर किए गए प्रयोगों से इस बात पर कोई निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता कि सीखने के लिए कौन ढंग ज्यादा अच्छा है। बहुत से लोगों को एक ही काम पूरा और खण्ड खण्ड करके सिखाकर जब उनके सीखने के परिणाम की तुलना की गई तो भी दोनों ढंगों की सापेक्षिक उत्तमता सिद्ध नहीं हो सकी। कुशाग्र बुद्धि के लोगों के लिए पूरी सामग्री सीखना अच्छा रहता है। वुडवर्थ ने सामग्री को पूरा और खण्ड खण्ड करके सीखने पर किए गए प्रयोगों का निष्कर्ष यों दिया है :

> ...सामग्री को पूरा सीखने की अपेक्षा उसके खण्डों को बारी बारी से सीखना आसान पड़ता है। खण्डों को सीखने में व्यक्ति समस्या से अपना संतुलन भलीभाँति कर लेता है। खण्डों द्वारा सीखी गई कुशलता का कुछ अंश पूरी सामग्री सीखने के समय रहता है। किन्तु खण्डों को एक साथ शृंखलाबद्ध करने में व्यक्ति को और परिश्रम करना पड़ता है। हो सकता है कि खण्डों को सीखने से शक्ति और समय की बचत होती हो, किन्तु यह सीखने की सामग्री की कठिनता और व्यक्ति के

सीखने के कौशल पर निर्भर है। यदि व्यक्ति पूरी सामग्री को सीखने के लिए अपना पर्याप्त संतुलन कर सकता है तो वह पूरी सामग्री को एकदम सीखने के प्रयत्नों से ही कम समय में अधिक कुशलता प्राप्त कर सकता है। किसी व्यावहारिक स्थिति में पूरी सामग्री को एकदम सीखना ही अच्छा होता है, किन्तु यदि किसी विशेष बात को सीखना हो तो उसके किसी खण्ड पर एकाग्र हो सकने में स्वतन्त्र रहना चाहिए...

याद रखना

अब तक हमने प्राणी कुशलता कैसे अर्जित करता है इसी पक्ष पर अधिक ज़ोर दिया है। प्राणी सीखने में जो कुछ अर्जित करता है उससे वह आगे चलकर लाभ उठाता है। यदि सीखी हुई क्रियाएँ याद न रहतीं तो हमें हर काम रोज़ नए सिरे से करना पड़ता और सारा सीखना बेकार हो जाता। सीखने से किसी उत्तेजना के प्रति प्रारम्भ में की जाने वाली प्रति-क्रियाओं में आवश्यक संशोधन हो जाता है। बाइसिकिल चलाना या तैरना सीख लेने के बाद व्यक्ति की क्रियाओं में बाइसिकिल चला सकने या तैरने के लिए आवश्यक संशोधन होता है जिससे वह बाद में बाइसिकिल या तैरने के समय अनाड़ी की भाँति वे चेष्टाएँ नहीं करता जिन्हें सीखते समय करता था। सीखने से क्रियाओं में जो आवश्यक संशोधन हो जाते हैं उनका बहुत समय तक न मिटना या दूसरे शब्दों में उन्हें धारण (retain) किये रहना ही याद रखना है।

भूलभुलैया सीख लेने के कुछ लम्बे समय तक चूहे या मनुष्य का लक्ष्य तक पहुँचने की सही प्रतिक्रिया में भूल-चूक न करना यह साबित करता है कि भूलभुलैया सीखने से उनकी क्रियाओं में हुए आवश्यक संशोधन नष्ट नहीं हुए और वे उनको धारण किए रहे—उनको भूलभुलैया के लक्ष्य तक पहुँचने की सही प्रतिक्रिया याद रही। याद रखने में शरीर के अन्दर किस

तरह के परिवर्तन या संशोधन होते हैं और वे कोषों में होते हैं या न्यूरोनीय-सामीप्यों (synapses) में या और कहीं यह विवादग्रस्त विषय है और इस पर अब तक कोई निश्चित मत नही बन सका है।

प्राणी को बहुत सी याद हो गई बातों का बोध तक नहीं होता। बचपन में आप पैरों पर खड़े होकर चल नहीं पाते थे। धीरे धीरे आपके पैरों की मांसपेशियों में चलने के लिए आवश्यक संशोधन होते गए और आपका शरीर उन्हें 'याद करता' गया यानी वे संशोधन नष्ट नहीं हुए। क्या आप को कभी ऐसा लगता है कि बचपन में सीखा गया चलना आपको आज तक याद है ? नहीं। आपको अनेक ऐसी बातें याद होंगी जिनके याद होने का शायद आपको कभी बोध भी न होता हो। यदि प्राणी में याद रखने या अर्जित कुशलता को धारण (retain) कर सकने की क्षमता न होती तो वह कुछ भी नहीं सीख पाता।

याद रखना एक ऐसी विशद् क्रिया का नाम है जिसके अन्दर पुनरावर्तन (recall), पहचानना और ऐसी बातों का धारण करना भी आ जाता है जो न मौखिक (verbal) हों और न जिनका कभी बोध होता हो। बचपन में आपने कविताएँ याद की होंगी। उनमें से कोई तो आपको ज्यों की त्यों याद हो सकती है और आप उसका पुनरावर्तन कर सकते हैं। कुछ ऐसी भी हो सकती हैं जो आपको याद न रही हों किंतु यदि दिखाई जाँय तो आप पहचान लेंगे कि बचपन में आपने उन्हें याद किया था।

सामान्यतः यह देखा गया है कि क्रियात्मक सीखना आसानी से नष्ट नहीं होता और प्राणी उसे जीवन भर याद रख सकता है। बाइसिकिल चलाना या तैरना क्रियात्मक सीखना है और यदि एक बार सीख लेने के बाद वह सात-आठ साल तक छूटा रहे तब भी वह अच्छी तरह याद रहेगा। सात-आठ साल बाद भी बाइसिकिल चलाने या तैरने में कोई कमी नहीं पड़ेगी। मौखिक सीखना अपेक्षाकृत अधिक आसानी से नष्ट हो जाता है।

आज याद की हुई कविता या कोई पाठ सात-आठ साल के बाद उसी अच्छी तरह याद नहीं रह पाता जिस तरह बाइसिकिल चलाना या तैरना रहता है।

याद रखने पर प्रभाव डालने वाली बातें

मनुष्यों के मौखिक सीखने पर पहले पहल एबिंगहाउस नामक मनोवैज्ञानिक ने प्रयोग किए थे। चूँकि मनुष्य सार्थक बातों को सीखने में अपनी अर्जित कुशलता से लाभ उठा सकता है इसलिए एबिंगहाउस ने अपने प्रयोगों में निरर्थक शब्दों को रक्खा जिससे उन्हें सीखने में मनुष्य अपनी पूर्व अर्जित कुशलता से लाभ न उठा सके। सार्थक शब्दों के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया निश्चित हो सकती है किंतु निरर्थक शब्दों के प्रति नहीं होती। जब मनुष्य को निरर्थक शब्दों का समूह सीखने को दिया जाता है तो वह उसे सीखने में अपनी पूर्व अर्जित कुशलता से लाभ उठा सकने से वंचित रह जाता है।

एक प्रयोग में कुछ मनुष्यों को क्रमशः २०० निरर्थक शब्द, २०० अमिश्रित अंक, सार्थक गद्य के २०० शब्द और सार्थक पद्य के २०० शब्द याद करने को दिए गए। उन सबको याद करने में जो समय लगा उसका ब्योरा यों है :

निरर्थक शब्दों को याद करने में औसतन ९३ मिनट लगे।

अमिश्रित अंकों को याद करने में औसतन ८५ मिनट लगे।

सार्थक गद्य के शब्दों को याद करने में औसतन २४ मिनट लगे।

सार्थक पद्य के शब्दों को याद करने में औसतन १० मिनट लगे।

इस ब्योरे से स्पष्ट है कि सार्थक गद्य और पद्य के शब्दों को याद करने में बहुत कम समय लगा। सार्थक शब्दों को याद करने में कम समय इसलिए लगता है कि मनुष्य उनसे पहले से ही परिचित होता है जिससे उसे बहुत

से अंश को याद नहीं करना पड़ता। सार्थकता स्वयं याद रखने का परिणाम होती है इसलिए सार्थक बात जल्द याद हो जाती है।

सार्थक शब्दों को याद कर लेना केवल पूर्व परिचय पर ही निर्भर नहीं होता। यदि सार्थक शब्द वाक्य में यथास्थान न हों तो उन्हें याद करना कठिन होता है। 'उर वीणा के तार न छेड़ो' वाक्य को याद कर लेना आसान है क्योंकि इसमें प्रत्येक सार्थक शब्द यथाथान है; किंतु 'वीणा न उर छेड़ो के तार' को याद करना कठिन है क्योंकि इसमें प्रत्येक शब्द सार्थक होते हुए यथास्थान नहीं है।

किंतु सभी निरर्थक शब्द अर्थहीन नहीं होते और वे कभी-कभी सार्थक शब्दों की ओर संकेत कर सकते हैं। तश् निरर्थक शब्द है किंतु वह ताश या तश्तरी आदि सार्थक शब्दों की ओर संकेत कर सकता है। किसी निरर्थक शब्द की सार्थक शब्दों की ओर संकेत कर सकने की शक्ति को उसकी अनुषंगिक महत्ता (association value) कहते हैं। अनुषंगिक महत्ता रखने से निरर्थक शब्द की अर्थहीनता घट जाती है और उस निरर्थक शब्द को अन्य निरर्थक शब्दों की अपेक्षा आसानी से याद किया जा सकता है।

सार्थकता के साथ साथ याद रखने पर दुहराने का भी प्रभाव पड़ता है। जो बात जितनी बार दुहराई जायगी वह उतनी ही दृढ़ता से याद हो सकेगी। सार्थकता और दुहराने के अतिरिक्त याद करने पर प्राणी के उद्देश्य और याद करने की सामग्री के प्रकार का भी प्रभाव पड़ता है। गद्य की अपेक्षा पद्य ज्यादा आसानी से याद हो जाता है।

धारण क्षमता-जानना

प्राणी जो कुछ सीखता है उसे धारण कर सकने की क्षमता रखता है इसलिए उसकी धारण-क्षमता की परीक्षा करके वह कितना याद रख सका है इसका पता लगाया जा सकता है। धारण-क्षमता का पता लगाने का सरल उपाय सीखी हुई बात को फिर से दुहराना है। जिस बात को जितने

प्रतिशत दुहराया जा सकता है उसकी धारण-क्षमता भी उतने ही प्रतिशत होती है।

धारण-क्षमता को जानने का एक और उपाय यह भी है कि प्राणी जो कुछ जिस तरह सीख चुका है वही उसे दुबारा फिर उसी तरह सीखने दिया जाय। मान लीजिए कि किसी चूहे ने भूलभुलैया सीखने में पहले बत्तीस प्रयत्न किए थे किंतु दूसरी बार वह उसी भूलभुलैया को आठ प्रयत्नों में ही सीख गया। पहली बार जिस भूलभुलैया को सीखने के लिए बत्तीस प्रयत्नों की अपेक्षा होती थी उसे फिर सीखने में केवल आठ प्रयत्नों की ही अपेक्षा हुई और इस प्रकार ७५ प्रतिशत प्रयत्नों की बचत हुई। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चूहे की भूलभुलैया का सही मार्ग धारण करने की क्षमता ७५ प्रतिशत थी।

एबिंगहाउस ने धारण-क्षमता की परीक्षा के इस उपाय को 'बचत का उपाय' (saving method) नाम दिया। इस उपाय से सीखी हुई चीज़ को फिर से सीखने में जितना समय लगता है, जितने बार प्रयत्न करना पड़ता है और जितनी गलतियाँ होती हैं उनकी पहली बार सीखने में लगे समय, किए गए प्रयत्नों और होने वाली गलतियों से तुलना करके समय, प्रयत्नों और गलतियों की 'बचत' देखी जाती है और वह बचत ही प्राणी की धारण-क्षमता की निर्देशक होती है।

पुनरावर्तन करना

प्राणी जो कुछ सीखता है उसका पुनरावर्तन (recall) किसी न किसी रूप में अवश्य कर सकता है। बचपन में याद की गई कविताओं का थोड़ा बहुत पुनरावर्तन किया जा सकता है चाहे वह सुनाकर किया जाय या लिखकर। पुनरावर्तन सीखने से अर्जित कुशलता को धारण करने का एक और प्रमाण है।

पुनरावर्तन करने की शक्ति लोगों में एक सी नहीं होती। कोई लम्बे

नामों का पुनरावर्तन कर सकता है और कोई नहीं। नीचे विभिन्न अंकों की संख्याएँ दी गई हैं। अपनी और अपने परिचितों की परीक्षा करके देखिए कि आप और वे एक प्रयत्न में कितने अंकों की संख्या का पुनरावर्तन कर सकते हैं।

५ ८ १ ७
४ ७ ३ ८ ५
७ ९ १ ३ २ ८
३ २ ५ ८ ७ ४ ६
१ ९ ७ ६ २ ४ ३ ५
५ ७ ८ ३ ६ १ ९ २ ४
९ ७ ३ ८ ४ ३ ५ १ २ ७

हो सकता है कि आपसे और आपके परिचितों से पहली परीक्षा में भूल हो जाय इसलिए इसी प्रकार विभिन्न अंकों की अन्य संख्याएँ बना लीजिए और चार-पाँच बार परीक्षा करके उन सबका औसत निकाल लीजिए। उस औसत से आप सबकी पुनरावर्तन करने की शक्ति का पता चला सकेंगे। मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रयोगों से यह पता चलाया है कि चार-पाँच साल के बच्चों में प्रायः चार अंकों की सख्या का पुनरावर्तन कर सकने की क्षमता होती है और वह क्षमता उनकी आयु के अनुसार बढ़ती है और फिर स्थायी बन जाती है।

पुनरावर्तन पर उत्तेजनाओं का प्रभाव

यद्यपि पुनरावर्तन सीखी गई उत्तेजना को धारण करने का संकेत करता है किन्तु पुनरावर्तन धारण किए जाने की निश्चित परीक्षा नहीं है। हो सकता है कि कोई व्यक्ति किसी सीखी हुई उत्तेजना का पुनरावर्तन न कर सके किन्तु इससे यह साबित नहीं होता कि वह व्यक्ति सीखी उत्तेजना को धारण नहीं कर सका है। यह ठीक है कि पुनरावर्तन उत्तेजना की अनु-

परिस्थिति में ही किया जाता है किन्तु पुनरावर्तन कर सकने के लिए किसी अन्य उत्तेजना के संकेत की आवश्यकता होती है।

पुनरावर्तन करने का संकेत देने वाली उत्तेजनाएँ बाह्य भी हो सकती हैं और आन्तरिक भी। किसी बच्चे को देखकर अपने बच्चे का याद हो आना या खिले हुए फूलों को देखकर अपनी प्रेमिका के साथ बाग़ में घूमने की विगत याद का ताज़ा हो जाना पुनरावर्तन करने की बाह्य उत्तेजनाएँ होती हैं। शारीरिक कष्ट में जीवन की दुखद घटनाओं या किसी की सेवाओं का याद आना आन्तरिक उत्तेजनाएँ होती हैं।

कभी कभी किसी एक अनुभव के प्रसंग में अनेक अनुभव याद आने लगते हैं। जब हम किसी घनिष्ठ मित्र को अपनी रामकहानी सुनाने लगते हैं तो प्रसंगवश ऐसी ऐसी बातों का पुनरावर्तन होने लग जाता है जो शायद चेष्टा करने पर भी न हो पाता।

पुनरावर्तन पर मानसिक विन्यास का प्रभाव भी पड़ता है। मानसिक विन्यास के पीछे कोई न कोई उद्देश्य रहने से पुनरावर्तन करने में आसानी होती है। प्रयोगों द्वारा यह पता चला है कि उद्देश्यमूलक विन्यास से पुनरावर्तन कर सकने की शक्ति स्थायी बनती है। जो विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने भर के लिए ही अपने पाठ को निरुद्देश्य होकर रट लेते हैं वे बाद में उसका पुनरावर्तन नहीं कर पाते।

पुनरावर्तन में बाधाएँ

कुछ उत्तेजनाओं का प्रभाव पुनरावर्तन करने में बाधक बनता है। डर के कारण बहुत सी बातों का समय पर पुनरावर्तन नहीं हो पाता। कुछ विद्यार्थी अध्यापक के प्रश्न पूछने पर इतना डर-सा जाते हैं कि वे प्रश्न का उत्तर जानते हुए भी उसे नहीं दे पाते। कुछ लोग सभाओं में बोलते समय इतना घबरा जाते हैं कि वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसका ठीक से पुनरावर्तन नहीं कर पाते। चिन्तित होने पर भी पुनरावर्तन में बाधा पड़ती है।

जब एक ही प्रकार की दो वस्तुएँ ध्यान में एक साथ आ जाती हैं तो पुनरावर्तन में बाधा पड़ती है। यदि हम किसी से कुछ कहने जा रहे हों और उसी क्षण कोई दूसरी बात ध्यान में आ जाय तो हम पहली बात का पुनरावर्तन नहीं कर पाते। आपने अनेक बार अनुभव किया होगा कि कभी कभी कोई बात ज़ुबान पर आकर ही रह जाती है।

पहचानना

पुनरावर्तन करने की अपेक्षा पहचानना आसान होता है क्योंकि पुनरावर्तन में उत्तेजना नहीं होती किन्तु पहचानने में होती है। पहचानने के लिए उत्तेजना का पूर्व अनुभव होना आवश्यक है। जिस उत्तेजना का अनुभव कभी नहीं हुआ है उसको पहचाना भी नहीं जा सकता।

पहचानने का सम्बन्ध धारण करने से उतना नहीं है जितना संज्ञा करने से। पहचानने और संज्ञा करने में केवल यही एक अन्तर है कि पहचानने में उत्तेजना से 'परिचित होने' का भाव रहता है जो संज्ञा करने में नहीं रहता।

पहचानने में गलतियाँ भी होती हैं और वे दो प्रकार की होती हैं: परिचित उत्तेजना को न पहचान सकना और नई या अपरिचित उत्तेजना को पहचानने में गलती करना। परिचित उत्तेजना को परिवर्त्तित रूप या परिवर्त्तित परिस्थितियों में पहचानने में गलती हो जाती है क्योंकि उसे उस रूप या उन परिस्थितियों में देखने के लिए हमारा विन्यास नहीं होता।

दूसरी ओर जब हमारा विन्यास परिचित उत्तेजना को पहचानने का होता है तो हम परिचित उत्तेजना से सादृश्य रखने वाली नई उत्तेजनाओं को परिचित समझ लेते हैं। सादृश्य जितना अधिक होता है पहचान करने की गलती भी उसी अनुपात से होती है, चाहे हमारा विन्यास न भी हो।

भूलना

प्राणी के जीवन में भूलने का भी उतना ही महत्व होता है जितना

याद करने का। यदि प्राणी निरर्थक बातों को न भूले तो उसको अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों से सम्बन्धित सार्थक बातें याद रख सकने में भी बाधा पड़ती रहे। धारण करने में असफल रहना ही भूलना है। याद की हुई बातों का भूलते रहना दैनिक अनुभव से स्पष्ट है। किन्तु यह कह सकना कठिन है कि धारण की हुई बातों के भूलने की गति क्या रहती है, वह शुरू शुरू में ज्यादा होती है या बाद में या स्थायी रहती है।

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए एबिंगहाउस ने अनेक प्रयोग किए। उसने निरर्थक शब्दों की कुछ तालिकाओं को अच्छी तरह याद करने के बाद कुछ समय का अन्तर देकर उन्हें फिर याद किया। अगर पहली बार तालिकाओं को याद करने में २० प्रयत्न करने पड़े थे और दो दिन बाद फिर याद करने पर १४ तो भूलना ६ प्रयत्नों के बराबर या ७० प्रतिशत हुआ। इस प्रकार एबिंगहाउस ने पहले २४ घंटों में भूलने की गति तेज़ पाई। निरर्थक शब्दों को भूलने की गति २० मिनट में लगभग ४२ प्रतिशत, २४ घंटों में ६६ प्रतिशत और तीन दिन बाद ७८ प्रतिशत रही। यह ठीक है कि इस प्रयोग के निष्कर्ष को सब लोगों पर लागू नहीं किया जा सकता किन्तु सामान्यतः यह देखा गया है कि भूलना शुरू शुरू में ज्यादा होता है और बाद में कम होता चला जाता है।

चूँकि धारण करना मनस् पर निर्भर होता है इसलिए मनस् को क्षति पहुँचने पर प्राणी अपनी धारण-क्षमता को खोकर सब कुछ भूल जाता है। मादक पदार्थों का ज़्यादा सेवन करते रहने से मनस् के कोषों पर प्रभाव पड़ता रहता है जिससे धारण-क्षमता घटती है।

एबिंगहाउस ने अपने प्रयोग में यह देखा कि वह निरर्थक शब्दों को २४ घंटे बाद उतना नहीं भूला था जितना ८ घंटे में। उसने इसका कारण नींद में माना। जाग्रतावस्था के आठ घंटों में जितना ज्यादा भूला गया उतना २४ घंटों में इसलिए नहीं भूला गया कि उनमें से कुछ घंटे सो

भी लिया गया था। इसके बाद उसने भूलने पर नींद का प्रभाव जानने के लिए अनेक प्रयोग किए। उन प्रयोगों से यह पता चला कि प्राणी जाग्रतावस्था की अपेक्षा नींद में कम भूलता है।

जाग्रतावस्था में ज्यादा भूलने का कारण नई नई बातों को सीखते रहना है जो पुरानी बातों को भूल जाने में सहायक बनती हैं। नई बात का पुरानी बात से जितना अधिक सादृश्य होगा नई के सामने पुरानी बात का भूल जाना भी उतना ही ज्यादा होगा।

भूलने का कारण संचारी-भावात्मक असंतुलन में भी होता है। आप अपने जिस परिचित के निमंत्रण में जाना भूल जाते हैं, जिस काम को करना भूल जाते हैं या जिस पते को भूल जाते हैं उसके पीछे आपका कोई न कोई संचारी भावात्मक उद्देश्य अवश्य होता है। पति-पत्नी में अगर अनबन रहती है तो पति चाभियाँ ठिकाने से रखना भूल जाता है और पत्नी दाल में नमक डालना।

क्या धारण-क्षमता को उन्नत किया जा सकता है ?

बहुत से लोगों की याद करने की शक्ति कमज़ोर होती है और वे उसे बढ़ाना चाहते हैं। धारण-क्षमता मानसिक स्तर की एक क्रियात्मक कुशलता है और उसे दवाओं और किसी जादू मंतर से उन्नत नहीं किया जा सकता। धारण-क्षमता कमज़ोर होती नही, उसे कमज़ोर बना लिया जाता है—अपनी उपेक्षा और लापरवाही से।

धारण-क्षमता चूँकि व्यक्ति की अपनी लापरवाही से कमज़ोर बनती है इसलिए यदि व्यक्ति सीखने में लापरवाही न करे तो उसकी धारण क्षमता अवश्य अच्छी बनेगी। जो बात सीखना हो उसमें रुचि लेना चाहिए। रुचि लेने से ध्यान लगता है जिससे सीखने में कसर नहीं रह पाती।

ऊपर यह देखा जा चुका है कि निरुद्देश्य होकर सीखना या रट लेना याद नहीं रहता इसलिए अच्छी तरह याद रखने के लिए रटना नहीं चाहिए

वरन् जिस बात को याद रखना है उसका अन्य उत्तेजनाओं से सम्बन्ध स्थापित कर लेना चाहिए जिससे उसका पुनरावर्तन करने में कठिनाई न हो या कोई बाधा न पड़े।

अच्छी धारण-क्षमता के लिए परिवेश से अपना समुचित संचारी भावात्मक संतुलन बनाना चाहिए। उचित संचारी भावात्मक संतुलन के अभाव में धारण-क्षमता को दृढ़ बनाने के सारे सुप्रयत्न असफल हो सकते हैं।

प्रश्न

१—अच्छी तरह से सीखने के क्या उपाय हैं ? विस्तारपूर्वक लिखिए।

२—सीखने पर अभ्यास का क्या प्रभाव पड़ता है ? अस्सी पंक्तियों की कविता अच्छी तरह से सीखने के लिए एकत्रित अभ्यास अच्छा रहेगा या वितरित ?

३—याद रखना किसे कहते हैं ? याद रखने पर किन बातों का प्रभाव पड़ता है ? उदाहरण देकर विवेचना कीजिए।

४—धारण-क्षमता जानने के क्या उपाय हैं ? क्या धारण-क्षमता को उन्नत किया जा सकता है ?

५—पुनरावर्तन पर उत्तेजनाओं का क्या प्रभाव पड़ता है ? पहचानने और पुनरावर्तन करने का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

६—टिप्पणियाँ लिखिए :

(१) पुनरावर्तन की बाधाएँ।

(२) पहचानने की गलतियाँ।

(३) भूलना।

८

प्रतीकात्मक क्रिया

अब तक हमने उत्तेजनाओं के रहने पर जो विभिन्न मानसिक क्रियाएँ होती हैं उनका अध्ययन किया है। किंतु कुछ मानसिक क्रियाएँ उत्तेजनाओं के न रहने पर भी होती हैं। कल्पना करना या सोचना, तर्क करना आदि ऐसी ही मानसिक क्रियाएँ हैं। मानसिक क्रिया उत्तेजना की अनुपस्थिति में कैसे सम्भव होती है?

उत्तेजना की अनुपस्थिति में हमारे मन में उस उत्तेजना का कोई प्रतीक (symbol) रहता है। प्रतीक किसी उत्तेजना का सूचक होता है। उत्तेजना के प्रतीक के प्रति वही प्रतिक्रिया की जाती है जो उत्तेजना के प्रति। प्रतीकात्मक क्रिया उत्तेजना के अभाव में उस उत्तेजना के किसी प्रतीक द्वारा क्रिया कर सकने की मानसिक क्षमता है। पहले से उपस्थित उत्तेजना के प्रति की गई क्रिया प्रतीक द्वारा न्यूनाधिक स्पष्ट रूप से जाग्रत होकर पुरानी उत्तेजना से अपना साहचर्य स्थापित कर लेती है। प्रतीकात्मक क्रिया के समय शरीर के प्रभावकों की क्रिया में अवरोध हो जाता है जिससे चिंतन करते समय शरीर निश्चल रहता है। प्रतीकात्मक क्रिया का स्थूल रूप पशुओं के व्यवहार में भी मिलता है।

पशु के सामने खाने के तीन एक से डिब्बे रख दिए जाते हैं। जिस डिब्बे के ऊपर प्रकाश दिखाया जाता है खाना उसी डिब्बे में होता है। पशु में खाने के डिब्बे और प्रकाश का सम्बन्ध पहले से ही अच्छी तरह सापेक्षीकृत कर दिया जाता है। इसके बाद पशु और खाने के डिब्बे के बीच कोई

बाधा डाल दी जाती है जिससे पशु डिब्बे को देख तो सके लेकिन उसे उसके पास जाने की प्रतिक्रिया में विलम्ब लगे। फिर किसी डिब्बे पर प्रकाश दिखाकर हटा लिया जाता है और थोड़ी देर बाद पशु और डिब्बे के बीच की बाधा भी हटा दी जाती है। अब पशु खाने के उस डिब्बे के पास पहुँचने का प्रयत्न करता है जिस पर प्रकाश दिखाया गया था। यदि वह सही डिब्बे तक पहुँचने में लगातार सफल होता है तो इसका कारण क्या हो सकता है? प्रकाश की उत्तेजना तो हटा ली जाती है इसलिए यह मानना पड़ता है कि सही डिब्बे तक पहुँचने के लिए पशु के अन्दर कोई न कोई संकेत अवश्य रहता होगा।

विलम्बित प्रतिक्रिया (delayed reaction) के इन प्रयोगों में यह देखा गया कि पशु को अधिक सफलता तब मिलती है जब वह उस डिब्बे की ओर अपना शारीरिक विन्यास कर लेता है जिस पर प्रकाश दिखाया जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पशु की सही प्रतिक्रिया का कारण उसका मांसपेशीय विन्यास होता है। प्रकाश की उत्तेजना हटाए जाने पर पशु खाने के डिब्बे तक पहुँचने के लिए अपने मांसपेशीय विन्यास का पुनरावर्तन करता है। मांसपेशीय विन्यास एक प्रकार का प्रतीक (symbol) है जिसकी सहायता से पशु खाने तक पहुँचने की सही प्रतिक्रिया करता है। एक अर्थ में पुनरावर्तन करना भी प्रतीकात्मक क्रिया ही है।

प्रतीकात्मक क्रिया का विकसित रूप मनुष्य के व्यवहार में मिलता है। बौद्धिक प्राणी होने से मनुष्य अपने व्यवहार में प्रतीकों (symbols) का उपयोग प्रचुरता से करता है। अब प्रतीकों के विभिन्न प्रकारों और उनका उपयोग कैसे किया जाता है इसका अध्ययन कर लेना चाहिए।

प्रतीकों के प्रकार : प्रतिमाएँ

प्रतीकों का एक अन्य प्रकार है प्रतिमाएँ (images)। उत्तेजनाओं के अभाव में उनकी जो प्रतिमाएँ हमारे सामने आती हैं वे पूर्व अनुभव पर

आधारित होती हैं। अनुभव प्रतिमाओं का पूर्ववर्ती होता है। जिन उत्तेजनाओं का कभी अनुभव नहीं होता मनस् में उनकी प्रतिमा भी नहीं बन सकती। प्रतिमाओं और अनुभव में यही भेद होता है कि प्रतिमाएँ अनुभव की भाँति वास्तविक, स्पष्ट और ध्रुव नहीं होतीं।

स्मृति प्रतिमाएँ—सोने के समय जब आप अपने दिन भर के अनुभवों का पुनरावर्तन करते हैं तो आपके सामने अनुभव के विषय की प्रतिमाएँ (images) आने लगती हैं। इन प्रतिमाओं को स्मृति-प्रतिमाएँ कहा जाता है क्योंकि उनके सहारे बीती बातों का स्मरण किया जाता है। स्मृति-प्रतिमाओं का आश्रय किसी भी ग्राहक में हो सकता है। आप जिन लोगों से मिले थे उनकी दृष्टि प्रतिमाएँ (visual images) सामने आती हैं, मर्मस्पर्शी संगीत की श्रवण-प्रतिमा (auditory image) सामने आती है। इसी प्रकार फूलों की सुगन्ध, किसी के जीवन-दायी स्पर्श, इमरती के स्वाद, असहनीय पीड़ा आदि की प्रतिमाएँ भी सामने आ सकती हैं।

स्मृति-प्रतिमाएँ केवल पुनरुत्पादक (reproductive) होती हैं क्योंकि उनके द्वारा पूर्व अनुभव का पुनरावर्तन ही होता है। पुनरुत्पादक होने के अतिरिक्त प्रतिमाएँ सृजनात्मक (creative) भी होती हैं। सृजनात्मक प्रतिमाओं में पूर्व अनुभव नए रूप में व्यवस्थित होकर सामने आता है। ललित कलाएँ सृजनात्मक प्रतिमाओं का अच्छा उदाहरण हैं। ललित-कलाओं में कलाकार अपने पूर्व अनुभव के आधार पर बनाई गई प्रतिमाओं को नया रूप दे देकर कलासृष्टि करता है।

आइडेटिक प्रतिमाएँ—कभी कभी आपने अनुभव किया होगा कि जब कोई बोल रहा होता है तो आप उसे ध्यान से नहीं सुनते किंतु उसके बोलना बन्द कर देने पर आपको उसके शब्द साफ सुनाई पड़ते हैं। कभी कभी कोई मनोहारी दृश्य देखने के बाद आप आँख बन्द कर लेने पर भी उसे कुछ देर तक स्पष्ट रूप से देखते रहते हैं। इस प्रकार की प्रतिमा को

आइडेटिक प्रतिमा (eidetic image) कहा जाता है। आइडेटिक प्रतिमा उत्तर-संवेदन (after-sensation) नहीं होती। उत्तर-संवेदन क्षणिक होता है किन्तु आइडेटिक प्रतिमा क्षणिक न होकर कुछ देर तक रहती है। आइडेटिक और स्मृति-प्रतिमा में भी भेद होता है। स्मृति-प्रतिमा पुनरावर्तन का परिणाम होती है किन्तु आइडेटिक (eidetic) प्रतिमा पुनरावर्तन मात्र न होकर उत्तेजनाओं की संज्ञा की भाँति ही स्पष्ट और ध्रुव होती है।

आइडेटिक प्रतिमा बच्चों में ज्यादा पाई जाती है। बच्चे किसी उत्तेजना को देख लेने के बाद भी उस उत्तेजना का ऐसा वर्णन करते हैं मानो उसे 'देख' ही रहे हों। आइडेटिक प्रतिमा का रूप बच्चों की रुचि और रुझान के अनुसार बदल सकता है। बच्चों को किसी उत्तेजना की आइडेटिक प्रतिमा वास्तविकता से बड़ी या छोटी लग सकती है, उसका रंग तेज़ या फीका लग सकता है। बच्चा ज्यों ज्यों बड़ा होता जाता है त्यों त्यों उसमें आइडेटिक प्रतिमाओं की कमी होती जाती है।

मतिभ्रम—कुछ प्रतिमाएँ ऐसी होती हैं जिनमें उत्तेजना की वास्तविकता का भ्रम हो जाता है। व्यक्ति यदि अपने में ही खोया रहे तो वाह्य जगत से उसका सम्पर्क कुछ देर के लिए टूट जाता है और उसे तत्कालीन मानसिक स्थिति जन्य प्रतिमाएँ वास्तविक लगने लगती हैं। ऐसी प्रतिमाओं को मतिभ्रम (hallucination) कहा जाता है। अन्य कहीं भ्रमों और उनके कारणों का उल्लेख किया जा चुका है। भ्रम उत्तेजना का यथार्थ रूप न देख सकने के कारण उसकी गलत व्याख्या करने का परिणाम होता है। भ्रम में कोई उद्देश्य और उत्तेजना की स्मृति प्रतिमा नहीं होती, केवल उत्तेजना और उसकी गलत व्याख्या ही होती है। मतिभ्रम (hallucination) में उत्तेजना की गलत व्याख्या मात्र ही न होकर स्मृति प्रतिमा को ही वास्तविक उत्तेजना समझ लिया जाता है। मतिभ्रम उद्देश्यमूलक होता है। प्यासे आदमी को रेगिस्तान में मृगमरीचिका में पानी का मतिभ्रम हो जाता

है। मतिभ्रम किसी उद्देश्य या आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए पूर्व अनुभव की स्मृति-प्रतिमाओं के आधार पर नई प्रतिमाओं का सृजन कर उन्हें वास्तविक समझ लेना है।

स्वप्न—स्वप्न देखना भी स्मृति-प्रतिमाओं के आधार पर नई प्रतिमाओं का सृजन करने का एक साधारण अनुभव है। संसार में शायद ही ऐसा व्यक्ति हो जिसने सोते जागते कोई स्वप्न न देखा हो। जागते समय जो स्वप्न देखे जाते हैं उन्हें दिवा-स्वप्न (day-dream) कहा जाता है। दिवा-स्वप्न उतने 'वास्तविक' और स्पष्ट नहीं लगते जितने कि रात के स्वप्न। दिवा-स्वप्नों द्वारा जगत की कठोर वास्तविकता से कुछ देर के लिए छुटकारा मिलता है और भविष्य का लक्ष्य सार्थक और साकार बनता है। इस प्रकार दिवा-स्वप्न संतुलन करने में सहायक बनते हैं किन्तु एक सीमा तक ही। केवल उन्हीं से सन्तुष्ट होने पर व्यक्ति लक्ष्य प्राप्ति के प्रति निष्क्रिय भी बन सकता है।

स्वप्न देखने की क्रिया के पीछे कोई रहस्य नहीं होता। स्वप्न देखना स्वाभाविक मानसिक क्रिया है और उसके लिए उत्तेजनाओं की आवश्यकता पड़ती है। सोते समय भी वाह्य जगत से हमारा सम्पर्क बना रहता है और बोधवाहक उत्तेजनाएँ मनस् में पहुँचती रहती हैं। सोते समय यदि हमारा हाथ खाट के नीचे लटक जाता है तो हम किसी ऊँचे पेड़ पर लटके होने का स्वप्न देख सकते हैं। गर्म मोजे पहने हुए ही सो जाने पर हम आग पर चलने का स्वप्न देख सकते हैं।

स्वप्न में उत्तेजना रहती है और मनस् सोते समय पूर्व अनुभव के आधार पर उस उत्तेजना की संज्ञा करता है। सोते समय चूँकि मनुष्य अपने परिवेश की पूरी स्थिति नहीं जानता इसलिए मनस् द्वारा की गई स्वप्न उत्पादक उत्तेजना की संज्ञा ९९ प्रतिशत गलत होती है। स्वप्नों पर किए गए प्रयोगों से यह पता चला है कि स्वप्न की प्रतिमाओं की प्रचुरता के सामने स्वप्न उत्पादक उत्तेजना बिल्कुल दब सी जाती है।

क्लाइन ने स्वप्नों पर प्रयोग करके यह देखा कि एक ही उत्तेजना विभिन्न लोगों में अलग अगल स्वप्न-प्रतिमाओं को जाग्रत करती है और प्रत्येक व्यक्ति की स्वप्न प्रतिमाओं के सामने उनकी उत्तेजना पूरी तरह से दब जाती है। क्लाइन ने सोते हुए मनुष्यों के हाथ के पीछे रुई का फाहा कई बार छुआया। इस उत्तेजना से एक व्यक्ति ने स्वप्न में गाय को अपना हाथ चाटते, दूसरे ने अपने शरीर से झबरे कुत्ते को बदन रगड़ते, तीसरे ने अपने आपको बिल्ली से खेलते देखा।

स्वप्नों की व्याख्या—एक ही वाह्य उत्तेजना से विभिन्न लोग विभिन्न तरह के स्वप्न क्यों देखते हैं? इस प्रश्न का उत्तर सबसे पहले मनोविज्ञान के एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय 'मनोविश्लेषण' (Psychoanalysis) के जन्मदाता फ्रायट ने देने की चेष्टा की थी। फ्रायट के अनुसार स्वप्न व्यक्ति की उन इच्छाओं की पूर्त्ति के प्रयत्न होते हैं जिनकी पूर्त्ति वह जाग्रतावस्था में नहीं कर पाता या जिन्हें लोकलाज से दबा देना पड़ता है। किन्तु फ्रायट की यह व्याख्या सर्वमान्य नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि स्वप्न उद्देश्यमूलक होते हैं।

बच्चों के स्वप्न एक हद तक इच्छापूर्त्ति के प्रयत्न ही होते हैं। ग़रीब बच्चे स्वप्न में लड्डू खाते हैं और अच्छे अच्छे कपड़े पहनते हैं। किन्तु बच्चों को भयावह स्वप्न भी आते हैं जिनका कारण उनके शारीरिक स्वास्थ्य, डर जाने, क्रोध, झगड़ा करने आदि में होता है। वयस्कों के स्वप्न भी इच्छापूर्त्ति के सूचक होते हैं किन्तु उनके अधिकांश स्वप्नों का वास्तविक उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता और उसे उनके स्वप्नों की प्रतिमाओं की व्याख्या करके ही जाना जा सकता है।

प्रत्यय

प्रत्यय (concept) भी प्रतीक (symbol) का एक प्रकार है। प्रत्यय एक ही जाति के पदार्थों में पाई जाने वाली उनकी कोई व्यापक

विशेषता होती है जिसके आधार पर उस जाति के पदार्थों का अन्य जाति के पदार्थों से भेद किया जाता है। यदि दो पदार्थों में बहुत समानता हो तो उनमें भेद कर पाना कठिन होता है। कोयल और कौए में अत्यधिक समानता होने से ही उनमें भेद करना कठिन होता है। पदार्थों के प्रत्यय (concept) द्वारा हम सदृश उत्तेजनाओं के प्रति एक सी प्रतिक्रिया करते हैं। भेड़िए को कुत्ता समझने पर हम उसके प्रति वही प्रतिक्रिया करेंगें जो कुत्ते के प्रति करते हैं।

किसी जाति के पदार्थों का प्रत्यय बना चुकने के बाद उस प्रत्यय का सामान्यीकरण (generalisation) किया जाता है। सामान्यीकरण द्वारा उस जाति के हर पदार्थ में उसके विशिष्ट गुणों को पाने की आशा की जाती है। सामान्यीकरण का साधारण रूप सापेक्षीकरण में मिलता है। दूध का जला छाछ में भी दूध के जला देने वाले गुण का अनुचित सामान्यीकरण कर लेता है और छाछ को दूध की भाँति फूँक फूँककर पीता है।

यदि हम प्रत्ययों (concepts) का सामान्यीकरण न करके भविष्य में किसी जाति के पदार्थों के प्रति वही प्रतिक्रिया न करें जो पहले करते रहे थे तो हम अपने अनुभव से लाभ उठाने से वंचित हो जाएँगे और सारा अनुभव निरर्थक हो जायगा। सामान्यीकरण न करने पर व्यवहार में एकरूपता और अविच्छिन्नता नहीं रह सकती।

किन्तु प्रत्ययों को ध्रुव या अपरिवर्तनीय नहीं समझना चाहिए। अनुभव के विकास के साथ साथ प्रत्यय (concept) बदलते रहते हैं। पहले ज़मीन चपटी समझी जाती थी किन्तु अब गोल समझी जाती है। जब सामान्यीकरण गलत हो जाता है तो प्रत्ययों में परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है।

प्रत्ययों का निर्माण करना सीखने की तीन प्रणालियाँ हैं : आगमन (induction) प्रणाली, निगमन (deduction) प्रणाली और आगमन-निगमन प्रणाली।

आगमन प्रणाली—इस प्रणाली द्वारा व्यक्ति दैनिक अनुभव में देखे हुए पदार्थों के प्रत्यय स्वाभाविक रूप से बनाता है। वह जिन पदार्थों में अत्यधिक सादृश्य पाता है उन्हें एक जाति में रखकर उनका कोई प्रत्यय बना लेता है। वह गाय को देखकर उसका प्रत्यय बना लेता है। फिर उसी गाय के सदृश अन्य पशुओं को देखने पर उन पर 'गाय' प्रत्यय का सामान्यीकरण कर देता है और इस प्रकार उन्हें भी 'गाय' जाति के अन्तर्गत ले आता है।

निगमन प्रणाली—इस प्रणाली द्वारा विभिन्न जातियों के पदार्थों की व्यापक विशेषताएँ व्यक्ति को पहले ही से बता दी जाती हैं। उसे बता दिया जाता है कि मनुष्य में बौद्धिकता होती है। इसके बाद वह जिस पदार्थ में बौद्धिकता पाता है उसे मनुष्य की जाति में रख देता है।

आगमन-निगमन प्रणाली—प्रत्यय (concepts) बनाने की यह प्रणाली सबसे अच्छी है। इस प्रणाली से उपर्युक्त दोनों प्रणालियों के दोष दूर हो जाते हैं। आगमन प्रणाली से हो सकता है कि व्यक्ति कोई प्रत्यय तो बना ले किंतु उसे व्यक्त न कर पाए। निगमन प्रणाली से व्यक्ति प्रत्यय को खूब अच्छी तरह समझ सकता है किंतु हो सकता है कि वह प्रत्यय की वास्तविक सार्थकता न जानता हो। यों तो विद्यार्थी अनेक परिभाषाएँ जानते हैं किंतु वे उन परिभाषाओं की वास्तविक सार्थकता को कम जानते हैं। आगमन-निगमन प्रणाली प्रत्यय-निर्माण के इन दोनों दोषों को दूर करती है।

भाषा

भाषा मौखिक (verbal) और लिखित प्रतीक (symbol) होती है। चिंतन करना, तर्क करना, दूसरों से बातचीत करना आदि प्रतीकात्मक क्रियाएँ भाषा के माध्यम से ही होती हैं। भाषा व्यक्ति का समाज से सम्पर्क स्थापित करने का सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक है।

मनुष्य भाषा को सीखना और उसका उपयोग करना बचपन से ही

शुरू कर देता है। बच्चे का उसके माँ-बाप द्वारा बोले जाने वाले शब्दों से सापेक्षीकरण होता रहता है और वह अनुकरण करके चूक-चेष्टा द्वारा उन शब्दों का सही-सही उच्चारण करना सीखता है।

शब्दों का उच्चारण करना सीख लेने के बाद बच्चा उन्हें उत्तेजनाओं से सम्बन्धित करना सीखता है। बच्चे से जब दूध पीने को कहा जाता है तो वह 'दूध' शब्द को सफेद-सफेद तरल पदार्थ से और 'पीने' शब्द को गले से नीचे उतारने की क्रिया से सम्बधित करता है। फिर वह 'दूध' और 'पीने' शब्दों से एक पदार्थ और उसके प्रति की जाने वाली प्रतिक्रिया का सम्बन्ध जान लेता है।

इसके बाद बच्चा धीरे-धीरे अन्तर्दृष्टि द्वारा यह जान लेता है कि शब्द किसी पदार्थ या क्रिया के सूचक होते हैं। अब जब उसे भूख लगती है तो वह दूध शब्द से एक अनुपस्थित उत्तेजना की ओर संकेत करता है जो उसकी भूख मिटा सकती है। इस स्तर पर बच्चा भाषा को अनुपस्थित पदार्थों के प्रतीक (symbol) की भाँति इस्तेमाल करना सीख जाता है।

फिर धीरे-धीरे वह शब्दों से वाक्य बनाना सीखता है और तब लिखना-पढ़ना। लिखना-पढ़ना दूसरों का संदेश समझने और अपना संदेश दूसरों तक पहुँचाने का सर्वोत्तम प्रतीक है। लिखना एक विशेष प्रकार के सूक्ष्म मांसपेशीय संगठन करने की कला है।

प्रतीकों का व्यावहारिक महत्व

मनोविज्ञान की दृष्टि से प्राणी की प्रतिक्रिया का महत्व वहीं तक होता है जहाँ तक वह प्राणी को परिवेश से संतुलन करने में सहायता देती है। प्रतीकात्मक क्रिया भी प्राणी को परिवेश से संतुलन करने में सहायता देती है। अकेला बच्चा अपने कल्पित साथियों से खेल खेलकर अपना मन भरता है और एक विषम स्थिति से अपना संतुलन करता है। प्रेम-कहानियाँ या साहस से भरे वर्णनों को पढ़कर हम सभी कल्पना द्वारा उन स्थितियों

का आनन्द लेते हैं जिन स्थितियों की वास्तविकता में लोकलाज या ख़तरे के भय से नहीं पड़ा जा सकता। प्रेम कहानियाँ पढ़ना आदि ऐसी स्थितियों से प्रतीकात्मक संतुलन करना है जिनसे हम वास्तविक जीवन में किसी न किसी कारण वंचित रहते हैं। प्रतीकात्मक क्रिया वास्तविकता की स्थानापन्न होती है और एक सीमा तक संतुलन करने का अच्छा साधन है। किन्तु जब वह सीमा के बाहर वास्तविकता का स्थान ले लेती है तो मानसिक संतुलन को बिगाड़ भी देती है। प्रतीकात्मक क्रिया में उचित सीमा के बाहर उलझ जाने पर व्यक्ति का वास्तविकता से बहुत कम सम्बन्ध रह जाता है और वह सनकी या विक्षिप्त बन जाता है।

संतुलन करने में सहायक होने के अतिरिक्त प्रतीकात्मक क्रिया समस्याओं को सुलझाने में भी सहायक बनती है। समस्या प्राणी को असंतुलित कर देने वाली कोई स्थिति होती है। समस्याओं का समाधान संज्ञा-क्रिया के स्तर पर होता है, उदाहरण के लिए चूक-चेष्टा (trial and error) द्वारा समस्या का समाधान करना। संज्ञा-क्रिया के स्तर पर समस्याओं का समाधान करने में प्राणी अपनी मांसपेशीय क्रिया का सहारा लेता है। कुछ समस्याओं का समाधान मानसिक स्तर पर किया जाता है, उदाहरण के लिए सोचना, कल्पना करना, तर्क करना आदि। मानसिक स्तर पर समस्याओं का समाधान करने में प्राणी को प्रतिमाओं, प्रत्ययों (concepts), भाषा आदि प्रतीकों का सहारा लेना पड़ता है।

ललित कलाओं का सृजन और विज्ञानीय आविष्कार भी प्रतीकों द्वारा ही सम्भव होते हैं। किन्तु लोगों की प्रतीकात्मक क्रिया करने की शक्ति में वैयक्तिक भेद होता है। प्रतीकात्मक क्रिया के वैयक्तिक भेद के कारण ही व्यक्ति अपनी बात दूसरों को समझा सकने में प्रायः असफल रहता है क्योंकि सबकी प्रतीकात्मक क्रिया अलग अलग होती है जिससे वे एक ही बात को सोचने के लिए विभिन्न प्रतिमाओं या अन्य प्रतीकों का सहारा लेते हैं।

अब सोचने, तर्क करने और आविष्कार करने आदि विभिन्न प्रतीकात्मक क्रियाओं का अध्ययन कर लेना चाहिए।

सोचना

मनुष्य की मानसिक क्रिया ग्राहकों द्वारा परिवेश की उत्तेजनाओं को ग्रहण करने और उनका संज्ञात्मक संगठन करने तक ही सीमित नहीं होती। वह उत्तेजनाओं का संवेदन, संज्ञा और पुनरावर्तन करने के अतिरिक्त उत्तेजनाओं के विषय में सोचता भी है। सोचने से वह परिवेश से अपना सम्बन्ध समझता है और प्राप्त किए गए अनुभव का विभिन्न स्थितियों की आवश्यकतानुसार विभिन्न तरह से उपयोग करता है।

सोचना एक विशद् मानसिक क्रिया है जिसके अन्तर्गत कल्पना करना, तर्क करना और आविष्कार करना आदि सभी प्रतीकात्मक मानसिक क्रियाएँ आ जाती हैं। आप अपने किसी विगत अनुभव, सैर सपाटे या किसी से मिलने के बारे में 'सोच' सकते हैं। विगत अनुभवों को सोचने पर आपके सामने उन अनुभवों की स्मृति प्रतिमाएँ (memory images) आने लगती हैं। सैर-सपाटे में आप जिन जिन स्थानों पर गए थे, जो जो दृश्य देखे थे, जिन लोगों से मिले थे उनकी स्मृति-प्रतिमाएँ एक एक करके आने लगती हैं और आपकी सोचने की क्रिया में स्मृति-प्रतिमाओं की प्रधानता रहती है। स्मृति-प्रतिमा प्रधान सोचने की क्रिया को कल्पना करना कहा जाता है।

कल्पना भविष्य विषयक भी हो सकती है। आप कल्पना कर सकते हैं कि अगली छुट्टियाँ कहाँ बिताई जायँ और कैसे बिताई जायँ। भविष्य विषयक कल्पना करने में आप भविष्य से अपनी स्मृति-प्रतिमाओं का सम्बन्ध नए ढंग से जोड़ते हैं। कल्पना करने में स्मृति-प्रतिमाओं की ही प्रधानता रहती है, भाषा की उतनी नहीं या बिल्कुल ही नहीं। स्मृति-प्रतिमाएँ अनुभव का पुनरावर्तन मात्र होती हैं, सृजनात्मक नहीं। कल्पना करना

सृजनशील प्रतीकात्मक क्रिया में सहायक बनती है क्योंकि सृजनात्मक क्रिया में स्मृति-प्रतिमाओं के आधार पर कोई नया प्रतीकात्मक संगठन सम्भव हो सकता है। सृजनशील सोचना वह होता है जिससे मानव जाति के हित के लिए किसी नवीन वस्तु या विचार की सृष्टि होती है।

तर्क करना

तर्क करना सोचने का ही एक प्रकार है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ सोचता ही रहता है और यदि उससे पूछा जाय 'क्या सोच रहे हो ?' तो वह उत्तर देगा 'कुछ नहीं यों ही।' किन्तु तर्क करना 'यों ही' सोचना न होकर उद्देश्यमूलक होता है। मनुष्य तर्क तब करता है जब उसके सामने कोई ऐसी समस्या आ जाती है जिसका पहले से ही कोई समाधान न हो। तर्क करने में स्मृति-प्रतिमाओं की उतनी प्रधानता नहीं रहती जितनी भाषा और प्रत्ययों (concepts) की। जब आप युद्ध के बारे में कल्पना करते हैं तो आपके सामने निर्दोष व्यक्तियों के खून, उनकी मुसीबतों, उनके मरने से उनके परिवार पर पड़ने वाली विपत्तियों, तोपों की गरज आदि के दृश्य चित्र आते हैं जिनमें भाषा की प्रधानता नहीं भी हो सकती। किन्तु जब आप युद्ध के विरुद्ध तर्क करते हैं तो आपके सामने 'युद्ध' का प्रत्यय (concept) होता है और आप उस प्रत्यय को भाषा द्वारा दूसरों को बताकर युद्ध का विरोध करते हैं।

तर्क करना चूँकि किसी समस्या को सुलझाना है इसलिए तर्क करने और सीखने में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सीखने में समस्या को संज्ञा-क्रिया के स्तर पर मांसपेशीय क्रियाओं द्वारा सुलझाया जाता है किंतु तर्क करने में मानसिक स्तर पर और प्रतीकों (symbols) की सहायता से। तर्क करने के बाद प्राणी में स्थितियों के अनुकूल प्रतिक्रिया करने के ऐसे संगठन बन जाते हैं जो पहले से नहीं रहते।

सीखने की भाँति तर्क करने में भी पूर्व अनुभव से लाभ उठाया

जाता है। पूर्व अनुभव के आधार पर 'अनुमान' करना तर्क करने की एक नई विशेषता होती है। अनुमान पूर्व अनुभव पर आधारित एक नया ज्ञान होता है। अनुमान के आधार पूर्व अनुभव की या तो संज्ञा हो सकती है या प्रतीक रूप में उसका पुनरावर्तन किंतु अनुमान सदा प्रतीकात्मक होता है। धुएँ को देखकर आग का अनुमान करने में धुएँ की तो संज्ञा होती है किंतु उसके आधार पर आग का जो अनुमान किया जाता है वह प्रतीक रूप ही होता है।

वास्तविक तथ्यों से मेल खाने पर अनुमान सही होता है और मेल न खाने पर गलत। अनुमान के गलत या सही होने का निर्णय करना तर्कशास्त्र (Logic) का विषय है। मनोविज्ञानीय दृष्टि से अनुमान चाहे गलत हो या सही वह फिर भी अनुमान होता है। अनुमान की सत्यता परिवेश के प्रसंग से जानी जाती है। यदि प्राणी को परिवेश का उचित और अच्छा ज्ञान न हो तो उससे अनुमान करने में गलती होती है। बच्चों का अनुमान परिवेश का अच्छा और पूर्ण ज्ञान न होने से ही गलत होता है।

एक सज्जन अपना फाउन्टेनपेन ठीक कराने एक दूकान पर गए। उनके साथ उनका पाँच साल का बच्चा भी था। दुकान पर लिखा था 'बीमार पेनों का अस्पताल।' बच्चे ने कौतूहलवश पूछा कि क्या पेन भी बीमार होते हैं। उत्तर मिला कि टूटे पेन बीमार कहे जाते हैं। इस पर बच्चे ने दुकानदार से कहा 'देखो हमारे पेन को ठीक करने के लिए मीठी दवा देना।' बच्चे का यह कहना उसके अपूर्ण ज्ञान पर आधारित गलत 'अनुमान' का एक अच्छा उदाहरण है।

अनुमान की सत्यता की कसौटी तार्किक अनिवार्यता में होती है। तार्किक अनिवार्यता अनुभव का परिणाम होती है। हम जानते हैं कि कुत्ता बिल्ली से बड़ा होता है और हम 'बड़े होने' का प्रत्यय (concept) बना लेते हैं। बाद में जब हमसे कहा जाता है 'और घोड़ा कुत्ते से बड़ा होता है'

तो हम तत्काल अनुमान कर लेते हैं कि 'इसलिए घोड़ा बिल्ली से बड़ा होता है' और हमारा अनुमान 'बड़े होने' के प्रत्यय की तार्किक अनिवार्यता का परिणाम होता है।

तार्किक अनिवार्यता कार्य-कारण सम्बन्ध पर निर्भर होती है। कार्य-कारण सम्बन्ध का प्रत्यय अनुभव के अबाधित होने पर बनता है। धुएँ और आग को सदा साथ साथ पाया जाता है और चूँकि उनके एक साथ होने के अनुभव का कभी बाध (contradiction) नहीं होता इसलिए उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध समझ लिया जाता है। जो अनुमान कार्य-कारण सम्बन्ध का विरोध करता है उसे असत्य माना जाता है। धुएँ को देखकर अगर पानी होने का अनुमान किया जाय तो वह असत्य होगा क्योंकि धुएँ और पानी में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं होता।

यों तो अनुमान की सत्यता पर तार्किक अनिवार्यता के कारण ही विश्वास किया जाता है किन्तु कुछ विश्वास ऐसे होते हैं जिनकी सत्यता के पीछे तार्किक अनिवार्यता न होकर संचारी भावात्मक कारण होते हैं। धार्मिक पुस्तकों के वाक्यों पर विश्वास करना, बिना सोचे समझे बड़ों की हर बात मान लेना तर्क करने की शक्ति की कमी का ही सूचक है।

तार्किक अनिवार्यता के अभाव और संचारी भावों की प्रधानता से बन गए विश्वासों को हठधर्मिता (delusion) कहा जाता है। अपने को संसार का सबसे पूर्ण विद्वान और सर्वांगीण अनुभव सम्पन्न व्यक्ति समझना, ईश्वर का अवतार समझना, धर्म का संरक्षक समझना आदि हठधर्मिता के कुछ उदाहरण हैं। हमारा समाज तो हठधर्मिता का एक जीता-जागता अजायबघर ही है। जिधर देखिए उधर हल्दी की गाँठ लेकर बन बैठे पंसारी गौरक्षक, वेदरक्षक, धर्मरक्षक, संस्कृति उद्धारक, परलोक सुधारक, संसार को अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाले, सत्य का मार्ग दिखाने वाले घास फूँस की तरह मिल जायँगे।

आविष्कार करना

आविष्कार करना सृजनात्मक सोचना है। सृजनात्मक सोचने का क्षेत्र बहुत बड़ा है। रेडियो, सिनेमा, हवाई जहाज, रेलगाड़ी, नदी पर पुल बनाना आदि आविष्कार सृजनात्मक सोचने के ही मूर्त उदाहरण हैं। किंतु सृजनात्मक सोचने का क्षेत्र मूर्त वस्तुओं तक ही सीमित नहीं होता। शासन-व्यवस्था, शिक्षा सुधार सम्बन्धी योजनाएँ बनाना, सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना आदि अमूर्त बातें भी सृजनात्मक सोचने का परिणाम होती हैं।

मनुष्य का अपने पूर्व अनुभवों को नए रूप से व्यवस्थित करना ही सृजनात्मक सोचना है। तर्क करने में भी पूर्व अनुभवों को नए रूप से व्यवस्थित किया जाता है इसलिये तर्क करना भी सृजनात्मक सोचना होता है। फिर तर्क करने और आविष्कार करने में क्या अन्तर है?

तर्क करने और आविष्कार करने का अन्तर उनके फल में होता है। तर्क करने में नए तथ्यों का अनुमान किया जाता है और उसकी सत्यता वास्तविकता के प्रसंग से जानी जाती है। आविष्कार करने में जिन नए तथ्यों की खोज की जाती है वे वास्तविकता से दूर होते हैं और जब तक वे मूर्त रूप में नहीं आ जाते तब तक उनकी सत्यता वाह्य जगत में न होकर आविष्कारक के मानसिक जगत में ही होती है।

आविष्कार कर सकने की योग्यता बहुत ही कम व्यक्तियों में होती है। आविष्कार करने के लिए प्रतिभा चाहिए और प्रतिभा एक ऐसी चीज़ है जिसे अर्जित नहीं किया जा सकता। आविष्कार करना पूर्व अनुभव को नए ढंग से व्यवस्थित करना होता है इसलिए अनुभव के अभाव में प्रतिभा होते हुए भी आविष्कार नहीं किया जा सकता। अनुभव प्रतिभा को जाग्रत करने में सहायक बनता है।

सृजनात्मक सोचने पर प्रयोग नहीं किया जा सकता किंतु सौभाग्य से अनेक आविष्कारक अपने सृजनात्मक अनुभवों का वर्णन छोड़ गए हैं। उन

वर्णनों में आश्चर्यजनक सादृश्य मिलता है जिससे उनमें सृजनात्मक क्रिया की चार प्रमुख अवस्थाएँ मिलती हैं।

सृजन करने के पहले अनुभवों को एकत्र किया जाता है। अनुभवों को एकत्र करना सृजन की तैयारी की अवस्था होती है। इस तैयारी के बाद विचारक जिस तरह का सृजन करना चाहता है उसके प्रति अपना विन्यास बना लेता है और हर पैंतरे से सोच विचार करता रहता है। फिर एकाएक बिना चेष्टा किए उसके सामने सृजन का नया संगठित रूप उभर आता है और वह एक नवीन प्रेरणा से अनुप्राणित हो जाता है। इसके बाद सृजन के नए रूप की उपादेयता और औचित्य की वास्तविकता के प्रसंग से परीक्षा की जाती है।

आविष्कार करना दैवी प्रतिभा का परिणाम होता है। प्रतिभाशील व्यक्ति के लक्षण बचपन से ही प्रकट होने लगते हैं। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' सृजनात्मक प्रतिभा मानव जाति के गौरव की वस्तु है इसलिए 'होनहार बिरवान' को सींचने और अच्छी खाद देने में कोई कमी रखना मानव जाति के गौरव के प्रति अन्याय करना है।

प्रश्न

१—प्रतीकात्मक क्रिया के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उसकी उपयोगिता समझाइए।

२—प्रतीकों के विभिन्न प्रकारों की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।

३—स्मृति-प्रतिमा, दिवा-स्वप्न और स्वप्न का भेद उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए और अपने किसी स्वप्न की व्याख्या कीजिए।

४—सृजनात्मक सोचना किसे कहते हैं? कल्पना करने और आविष्कार करने के पारस्परिक सम्बन्ध को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।

५—प्रत्ययों का निर्माण कैसे किया जाता है और तर्क करने में उनका क्या स्थान होता है? उदाहरण सहित समझाइए।

६

व्यक्तित्व

पिछले दो सौ पृष्ठों में मनुष्य की जन्मजात क्षमताओं और अर्जित कुशलताओं का अध्ययन करने का प्रयास किया जा चुका है। जन्मजात क्षमताएँ और अर्जित कुशलताएँ शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के विभिन्न प्रकार के संगठनों की विशेषताएँ और उनका परिणाम होती हैं। शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के संगठनों का विश्लेषात्मक अध्ययन कर हम यह देख चुके हैं कि उनके किस तरह के संगठनों की विशेषताओं को संवेदन, अवधान, संज्ञा, सीखना, याद रखना, सोचना आदि नाम दिया जाता है। मनोविज्ञान में मनुष्य को प्रतिक्रियात्मक प्राणी समझ कर उसके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य के व्यवहार को उसकी विभिन्न क्षमताओं का विश्लेषण करके और उनका अलग अलग अध्ययन करके ही नहीं समझा जा सकता क्योंकि उसका व्यवहार उसकी एक-दो क्षमताओं पर निर्भर नहीं होता। मनुष्य का व्यवहार उसकी सारी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं की संगठित इकाई का परिणाम होता है, इसलिए मनुष्य और उसके व्यवहार को अच्छी तरह समझने के लिए उसकी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं की संगठित इकाई का अध्ययन अनिवार्य है।

सामान्यतः व्यक्तियों की जन्मजात क्षमताओं और अर्जित कुशलताओं में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं होता, फिर भी उनकी क्षमताओं और

कुशलताओं की संगठित इकाई उनके व्यवहार में इतना बड़ा अन्तर डाल देती है जिससे वे एक से लगते हुए भी एक से नहीं होते। न मालूम क्या बात हो जाती है कि एक ही मिट्टी और पानी से विभिन्न रंग और गन्ध के फूल पैदा हो जाते हैं, एक ही बीज के पेड़ में हज़ारों पत्तों के हज़ारों रूप बन जाते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के व्यवहार में विभिन्नता उत्पन्न करने वाली उनकी क्षमताओं और कुशलताओं की संगठित इकाई की विशेषता को व्यक्ति का त्व कहा जाता है।

व्यक्तित्व क्या है ?

व्यक्तित्व शब्द बहुत प्रचलित है और उसका उपयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। दूसरे आदमियों पर अपने विचार प्रकट करते हुए लोग अक्सर यह कह देते हैं कि 'आदमी तो भला है किंतु उसका व्यक्तित्व कुछ नहीं है।' वे व्यक्तित्व को कोई ऐसा गुण समझते हैं जो कुछ भाग्यवानों को ही नसीब होता है। जनसाधारण व्यक्तित्व को 'आकर्षक' और 'बहुत बड़ा' भी कह देते हैं क्योंकि वे व्यक्तित्व का अर्थ सुन्दर-स्वस्थ शरीर और अच्छे कपड़े पहनना या धनाढ्य और अच्छे ओहदे पर होना समझते हैं।

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के इन प्रचलित भ्रामक अर्थों को स्वीकार नहीं किया जाता। मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में थोड़ा बहुत अन्तर होता है। व्यक्तियों के व्यवहार में अन्तर क्यों होता है ? जन्मजात क्षमताओं और अर्जित कुशलताओं पर आधारित उनकी गत्यात्मक प्रवृत्तियों के विशेष रूप से संगठित होने के कारण। गत्यात्मक प्रवृत्तियों के विशिष्ट संगठन को ही व्यक्तित्व कहा जाता है। व्यक्तित्व व्यक्ति की नहीं वरन् उसके व्यवहार की विलक्षणता का सूचक होता है। मनोविज्ञान में व्यक्तित्व शब्द विशेषण न होकर क्रियाविशेषण होता है।

गत्यात्मक प्रवृत्तियों का निर्माण और संगठन व्यक्ति की रुचि, क्षम-

ताओं, मूल्यों, आदर्शों, उद्देश्यों आदि के आधार पर होता है किंतु व्यक्तित्व उन सबका योग न होकर उनका विभिन्न रूप से अन्तर्सम्बन्धित होकर और एक व्यवस्थित इकाई का रूप लेकर व्यक्ति के व्यवहार द्वारा अभिव्यक्ति होने लगना ही होता है।

व्यक्तित्व व्यक्ति की सामाजिक अन्तर्क्रिया से निर्मित और विकसित होता है। सामाजिक अन्तर्क्रिया एक ओर तो व्यक्ति के स्वभाव को संशोधित करती है और दूसरी ओर प्रतिक्रिया करने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व से भी निर्धारित होती है। विभिन्न सामाजिक स्थितियों पर उन स्थितियों में भाग लेने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व की छाप पड़ती है। इस प्रकार व्यक्तित्व एक ओर तो पहले की गई अन्तर्क्रियाओं का परिणाम होता है और दूसरी ओर अन्तर्क्रियाओं को निर्धारित भी करता है जिससे व्यक्ति औरों को प्रभावित करने के साथ साथ स्वयं भी प्रभावित होता रहता है।

इस प्रकार व्यक्ति की गत्यात्मक प्रवृत्तियों की व्यवस्थित इकाई स्थायी न होकर विकासशील होती है, इसलिए व्यक्ति के त्व को स्थायी नहीं समझ लेना चाहिए। व्यक्ति का त्व भी विकासशील होता है जिससे व्यक्ति अपने और अपने परिवेश से संतुलन करने के प्रति जो प्रतिक्रियाएँ करता है वे अन्य लोगों की प्रतिक्रियाओं से विलक्षण होती हैं। विकासशील न होने पर व्यक्ति के त्व का परिवेश से सक्रिय सम्बन्ध नहीं रह सकता और जिसके अभाव में व्यक्ति का व्यवहार असंतुलित हो सकता है। व्यक्तित्व व्यक्ति में अन्तर्निहित 'कुछ' न होकर व्यक्ति और परिवेश का अन्तराश्रित और सक्रिय अनन्वय सम्बन्ध है।

व्यक्तित्व के निर्धारक

व्यक्ति की गत्यात्मक प्रवृत्तियों का संगठन ही उसका त्व होता है। गत्यात्मक प्रवृत्तियों का निर्माण और विकास व्यक्ति की मनोभौतिक परिस्थितियों पर निर्भर होता है और उसका त्व उन्हीं से निर्धारित होता है।

व्यक्तित्व की व्याख्या भली भाँति कर सकने के लिए व्यक्ति के मनोभौतिक निर्धारकों को जानना ज़रूरी है। किसी बात का संचालन करने वाले सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान होने से वह बात भी ज्यादा अच्छी तरह समझ में आ सकती है। व्यक्तित्व के निर्धारकों पर विचार करने से न केवल व्यक्तित्व के विकास को वरन् उसके स्वभाव को भी अच्छी तरह जाना जा सकता है।

व्यक्तित्व के निर्माण पर प्रभाव डालने वाली हर शारीरिक मनोविज्ञानीय, आनुवंशिक, सांस्कृतिक, सामाजिक बात व्यक्तित्व की निर्धारक होती है। यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि व्यक्तित्व के अनेक निर्धारकों में क्या अन्तर्सम्बन्ध होता है और व्यक्तित्व के विकास में उनमें से किसकी सापेक्षिक प्रधानता रहती है।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के जन्मजात पक्ष पर आनुवंशिकता (heredity) का प्रभाव शायद अधिक पड़ता है और अर्जित पक्ष पर आनुवंशिकता से अन्य निर्धारकों का। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि आनुवंशिकता और व्यक्ति का जन्मजात पक्ष एक ही चीज़ होती है। जन्मजात पक्ष का वाह्य प्रभावों द्वारा संशोधन होता रहता है जिसका अर्जित पक्ष पर परोक्ष या अपरोक्ष प्रभाव पड़ता है। संचारी भाव जन्मजात होते है किन्तु विकासक्रम में उनमें शिक्षा आदि से बहुत संशोधन हो जाता है। आनुवंशिक पक्ष का वाह्य प्रभावों द्वारा संशोधन नहीं हो सकता।

शारीरिक निर्धारक

शरीर के ग्राहकों, प्रभावकों आदि के विकास और उनके स्वस्थ रूप से क्रिया करने का व्यक्तित्व पर जो प्रभाव पड़ता है वह तो पिछले दो सौ पृष्ठों के विस्तृत वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा। शारीरिक विकास से प्राणी की अव्यक्त क्षमताएँ सक्रिय बनती हैं और उनमें क्रियात्मक परिपक्वता आती

है। शारीरिक विकास और परिपक्वता के अभाव में व्यवहार असंतुलित बन जाता है जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्तित्व में भी असंतुलन हो जाता है। ग्राहकों और प्रभावकों के अतिरिक्त व्यक्तित्व पर शरीर के ग्लैंडों (glands) की क्रिया का भी प्रभाव पड़ता है।

हमारे शरीर में दो प्रकार के ग्लैंड होते हैं: एक्ज़ोक्रीन (exocrine) और इन्डोक्रीन (endocrine)। एक्ज़ोक्रीन ग्लैंड अपनी नलियों (ducts) द्वारा त्वचा की सतह से सम्बन्धित होते हैं और आँसू, पसीने, लार आदि का स्राव करते हैं। आँसू, पसीने, लार आदि के स्राव का रोने, गुस्सा होने और खाने आदि की क्रियाओं में जो महत्व है उससे एक्ज़ोक्रीन ग्लैंडों का व्यवहार पर पड़ने वाला प्रभाव स्पष्ट ही है। इन्डोक्रीन ग्लैडों में नलियाँ नहीं होतीं जिससे वे नलीविहीन (ductless) होते हैं। वे शरीर के अन्दर खून में एक विशेष प्रकार के रासायनिक रस हार्मोन (hormone) का स्राव करते है जो खून में मिलकर शरीर भर के आन्तरिक अंगों की क्रिया में परिवर्तन कर देता है।

शारीरिक विकास और वृद्धि में एक्ज़ोक्रीन ग्लैंडों की अपेक्षा इन्डोक्रीन ग्लैंडों का बड़ा महत्व होता है। एक्ज़ोक्रीन ग्लैंडों की क्रिया के अभाव में व्यवहार उतना असंतुलित नहीं हो पाता जितना इन्डोक्रीन ग्लैंडों की क्रिया के अभाव में हो जाता है। इन्डोक्रीन ग्लैंडों पर व्यक्तित्व के अन्य निर्धा-रकों का प्रभाव भी पड़ता है, इसलिए उन्हें ही व्यक्तित्व का एकमात्र प्रमुख निर्धारक समझ लेना भूल होगी। पिच्युइच्चरी, एड्रीनल, गोनड, थायरॉयड आदि कुछ प्रमुख इन्डोक्रीन ग्लैंड हैं।

पिच्युइच्चरी (pituitary) ग्लैंड शारीरिक वृद्धि तथा विकास और अन्य इन्डोक्रीन ग्लैंडों की क्रियाओं को नियमित करता है। उसकी क्रिया में दोष होने से प्राणी या तो नाटा रह जाता है या बेहद लम्बा हो जाता है। यह ग्लैंड सिर में स्थित होता है। ऐड्रीनल (adrenal) ग्लैंड पेट में

दोनों गुर्दों (kidneys) के ऊपर दोनों ओर स्थित होते हैं और वे ऐड्रीनैलिन (adrenalin) नामक हार्मोन का स्राव करते हैं जिससे खून में शक्कर अधिकता से आ जाती है और खून की ऑक्सीजन (oxygen) ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है। संचारी भावात्मक प्रतिक्रिया में ऐड्रीनल ग्लैंड का महत्व देखा जा चुका है। इस ग्लैंड के दोषपूर्ण होने से न्यूरोनीय उद्दीपन की क्षमता घट जाती है जिससे प्राणी व्यवहार कुशलतापूर्वक नहीं कर पाता।

गोनड (gonads) नामक इन्डोक्रीन ग्लैंडों के हार्मोन के स्राव से स्त्री-पुरुष का भेद और उसके सूचक लक्षण प्रकट होते हैं। यह ग्लैंड स्त्री-पुरुष की जननेन्द्रियों के विकास और परिपक्वता से सम्बन्धित होता है। बालपन से युवावस्था में प्रवेश करने के समय गोनडों की क्रिया का हमारे व्यक्तित्व पर भारी प्रभाव पड़ता है। थायरॉयड (thyroid) ग्लैंड गर्दन के नीचे स्थित होता है। थायरॉयड के हार्मोन के अधिक स्राव से व्यक्ति बेचैन और कम स्राव से सुस्त बनता है।

आनुवंशिक प्रभाव

आनुवंशिकता (heredity) शारीरिक व्यापार है और उसका प्रत्यक्ष प्रभाव व्यक्तित्व के उन्हीं लक्षणों पर पड़ता है जिनका आधार शारीरिक होता है। प्राणी का शरीर अनेक कोषों से निर्मित होता है और प्रत्येक कोष (cell) के बीच में अन्तर्बीज (nucleus) होता है। कोष के अन्तर्बीज में विभिन्न लम्बाई की छड़ें सी रहती हैं जिन्हें क्रोमोज़ोम्स (chromosomes) कहा जाता है। मनुष्य के प्रत्येक कोष में ४८ क्रमोज़ोम्स होते हैं—२४ माँ के और २४ बाप के।

क्रोमोज़ोम्स दो-दो के जोड़े में पाए जाते हैं। स्त्री के क्रोमोज़ोम्स दो-दो के २४ जोड़े में होते हैं किन्तु पुरुष के ४६ क्रोमोज़ोम्स तो २३ जोड़े में और दो अलग अलग होते हैं जिनमें से एक का आकार Y की तरह होता

है। स्त्री के क्रोमोज़ोम्स के एक जोड़े का आकार X की तरह होता है। X और Y क्रोमोज़ोम्स योनि के निर्धारक होते हैं। गर्भाधान के समय माँ के २३+ X और बाप के २३+ X क्रोमोज़ोम्स के मिलने पर बच्चा लड़की और माँ के २३+ X और बाप के २३+Y मिलने पर लड़का बनता है।

व्यक्ति के कद, शारीरिक गठन, आँख और खाल के रंग और चेहरे मोहरे का अपने माँ-बाप के अनुरूप होने का आधार क्रोमोजोम्स की विशेषताओं में होता है। व्यक्ति में उसके माँ-बाप दोनों के क्रोमोजोम्स होने को ही आनुवंशिकता (heredity) कहा जाता है।

मनोविज्ञानीय क्षमताएँ जहाँ तक शारीरिक रचना पर निर्भर होती हैं वहाँ तक उन पर आनुवंशिकता का परोक्ष प्रभाव अवश्य पड़ता है। प्रयोगात्मक खोजों से यह पाया गया है कि संगीत की विशेष योग्यता और मानसिक रोग आदि आनुवंशिकता से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। संगीतज्ञों की अनेक पीढ़ियाँ संगीत के प्रति विशेष रुझान रखते पायी गई हैं।

परिवेश का प्रभाव

हम प्राणी के प्रतिक्रियात्मक पक्ष का अध्ययन उसके परिवेश के प्रसंग में करते रहे हैं। परिवेश का अर्थ होता है प्राणी को परिवेष्ठित करने या घेरने वाला। प्राणी पैदा होने के समय से जीवन के अन्त तक अनेक तरह से 'घिरा' रहता है। माँ के गर्भ में प्राणी अपनी आनुवंशिकता के परिवेश में रहता है और उस समय उस पर माँ के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य और संचारी भावात्मक प्रवृत्तियों का पूरा प्रभाव पड़ता है।

गर्भ से बाहर आने पर प्राणी के सामने वाह्य जगत का परिवेश होता है। वाह्य परिवेश के अनेक पक्ष होते हैं, जैसे पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक इत्यादि। व्यक्तित्व को बनाने-बदलने में वाह्य परिवेश के हर पक्ष की शक्तियों का प्रभाव पड़ता है। वाह्य परिवेश प्राणी के व्यक्तित्व के विकास पर अलग अलग तरह से और विभिन्न मात्रा में प्रभाव डालते हैं।

व्यक्तित्व के निर्माण पर घर के लोगों की मनोवृत्ति, उनकी रुचियों, संचारी भावात्मक स्थिरता, आर्थिक स्थिति, सफाई आदि का भारी प्रभाव पड़ता है। घर से बाहर व्यक्तित्व पर पड़ोसियों, मिलने जुलने वाले लोगों, सामाजिक घटनाओं, क्रियाओं और अनुभवों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। घर और शिक्षालय व्यक्तित्व को ढालने वाले मुख्य साँचे हैं। शिक्षालय में मित्रता, शिक्षा, संयम, सहयोग, प्रतिद्वन्दिता आदि से चरित्र का विकास होता है और व्यक्ति परिवेश की विभिन्नताओं के प्रति तरह तरह से संतुलित व्यवहार करना सीखता रहता है।

घर और शिक्षालय के अतिरिक्त व्यक्ति जिस बिरादरी, संघ, राजनीतिक या धार्मिक सम्प्रदाय का सदस्य होता है या बनता है उसके व्यक्तित्व पर उन संस्थाओं के आदर्शों, मूल्यों और दृष्टिकोणों का भी प्रभाव पड़ता है।

सांस्कृतिक प्रभाव

व्यक्तित्व के निर्माण में सांस्कृतिक प्रभाव का भी बड़ा महत्व होता है। सांस्कृतिक प्रभाव से तात्पर्य रीति-रिवाजों, परम्पराओं, प्रथाओं आदि से है। हर जाति या देश की संस्कृति अलग होती है और उस जाति और देश के लोगों पर उसका प्रभाव पड़ता है। सांस्कृतिक प्रभाव की झलक उस संस्कृति में पले प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में थोड़ी बहुत अवश्य रहती है। सांस्कृतिक शक्तियाँ परिवेश की शक्तियों की भाँति व्यक्ति के अत्यन्त निकट नहीं होतीं किंतु फिर भी वे उसके व्यक्तित्व को निर्धारित कर सकती हैं।

शिक्षा और उद्देश्य का प्रभाव

व्यक्तित्व पर शिक्षा का भी भारी प्रभाव पड़ता है। शिक्षा का क्षेत्र व्यक्ति के पढ़ने, लिखने और विभिन्न प्रकार की कुशलताएँ अर्जित करने तक ही सीमित नहीं होता। शिक्षा में संयम, शिष्टाचार और सामाजिक आदतें बनना भी होता है। संयम, शिष्टाचार और आदतें बच्चा अपने माँ-बाप का अनुकरण करके सीखता है। माँ-बाप बचपन में अपने बच्चे को जिस

ढंग से संयमित करके उसकी जैसी आदतें बना देते हैं वे आगे चलकर बच्चे के त्व के निर्माण और विकास को निर्धारित करती हैं।

व्यक्ति के व्यवहार का उद्देश्य भूख, प्यास आदि शारीरिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता होता है। व्यक्तित्व पर शारीरिक आवश्यकताओं के उचित नियंत्रण और पूर्त्ति का भी प्रभाव पड़ता है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के उद्देश्य के अतिरिक्त व्यक्ति प्यार, संरक्षण, सम्मान और सामाजिक प्रतिष्ठा भी चाहता है जिनकी प्राप्ति के लिए उसे उपयुक्त अवसर मिलने चाहिएँ। जिस जाति, समाज या देश के लोग आत्मोन्नति के उचित अवसरों से वंचित रहते हैं और विविध प्रकार के अभावों में जीवनयापन करते हैं उस जाति, समाज या देश का सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर गिर जाता है क्योंकि वहाँ लोगों का व्यक्तित्व संतुलित नहीं रह पाता। असंतुलित व्यक्तित्व की छाप समाज के हर पहलू और क्रिया पर पड़ती है। उदाहरण के लिए आप अपने और अपने समाज को देख लीजिए।

आत्म-निर्धारण का प्रभाव

व्यक्तित्व के निर्धारकों पर अब तक जो प्रकाश डाला गया है उससे ऐसा प्रतीत हो सकता है कि व्यक्ति अपने आन्तरिक और वाह्य परिवेश का कठपुतला मात्र ही है और वे उसे जिस साँचे में ढाल देते हैं वह वैसा ही बन जाता है। ऐसा समझ लेना भारी भूल है। व्यक्तित्व के निर्माण पर उपर्युक्त निर्धारकों के प्रभाव के अतिरिक्त आत्मनिर्धारण का भी प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति अपने परिवेश के हाथ का खिलौना ही नहीं होता, उसमें अपना निर्माण करने की क्षमता भी होती है। मनुष्य के दो पक्ष होते हैं—वह प्रकृति का कठपुतला भी होता है और निर्माता भी, अपराधी भी और न्याय-कर्त्ता भी, सागर की लहरों पर उछलने वाला काग का टुकड़ा भी और सागर की छाती को चीरकर अपना मार्ग निर्धारित करने वाला जहाज भी।

व्यक्ति में वरण कर सकने की क्षमता होती है और वह अपने वरण

द्वारा अपने लक्ष्य और उसको प्राप्त करने की दिशा में व्यवहार करने का निर्धारण करता है। यह ठीक है कि व्यक्ति आनुवंशिकता, शारीरिक क्षमताओं और विशेषताओं का वरण नहीं कर सकता किंतु वह अपने व्यक्तित्व के उन निर्धारकों का वरण अवश्य कर सकता है जिन पर आत्मनियंत्रण करना सम्भव है। आदतों को बनाने-बिगाड़ने, सायास व्यवहार करने, उचित ढंग से सोचने आदि का आत्म-निर्धारण सम्भव है और किया जा सकता है। आत्म-निर्धारण से चरित्र का निर्माण होता है। ईमानदारी, सच्चाई, वफादारी, जिम्मेदारी आदि चारित्रिक विशेषताएँ वरण और आत्म-संयम का ही परिणाम होती हैं। आत्म-निर्धारण की क्षमता रखने से ही मनुष्य को नैतिक (ethical) प्राणी कहा जाता है क्योंकि उसमें आत्म-निर्धारण द्वारा अपने चरित्र का निर्माण करने की क्षमता होती है जो अन्य प्राणियों में नहीं होती।

व्यक्तित्व व्यक्ति को गत्यात्मक प्रवृत्तियों का गतिशील और परिवर्तनीय संगठन है। यह समझना कि 'मैं जो कुछ हूँ वही हूँ' अपने को धोखे में डालना है। व्यक्तित्व व्यक्ति और परिवेश के हजारों प्रकार के अन्तर्सम्बन्ध और उससे उत्पन्न होने वाली आन्तरिक और बाह्य स्थितियों के प्रति किए गए व्यवहार से प्रतिक्षण और प्रतिदिन निर्मित, परिवर्तित और आत्म-निर्धारित होता रहता है। गत्यात्मक प्रवृत्तियों की संशोधनशीलता के कारण ही व्यक्ति विभिन्न प्रकार की विषम स्थितियों में संतुलित रूप से व्यवहार कर सकने योग्य होता है। व्यक्ति के व्यवहार के संतुलन की क्रिया उसके व्यक्तित्व से सापेक्षीकृत और निर्धारित होती है। संतुलित व्यवहार व्यक्ति के त्व के अच्छी तरह से निर्मित होने पर निर्भर होता है।

व्यक्तित्व जानने के उपाय

हम जिस व्यक्ति के सम्पर्क में आते हैं उससे बातचीत करके और उसके गत जीवन की जानकारी से उसके व्यक्तित्व को समझने की कोशिश करते हैं। व्यक्तित्व व्यक्ति की गत्यात्मक प्रवृत्तियों की संगठित इकाई होता है।

गत्यात्मक प्रवृत्तियाँ हजारों लक्षणों से मिलकर बनती हैं जिससे व्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ भी हजार तरह की होती हैं। प्रतिक्रिया के अध्ययन से व्यक्ति की गत्यात्मक प्रवृत्तियों की दिशा को जाना जा सकता है और उसके आधार पर उसके त्व को निर्मित करने वाले लक्षणों की प्रधानता का पता लगाया जा सकता है। आत्मविश्वास, साहस, कर्तव्य-परायणता, कायरता, दब्बूपन, सच्चाई आदि अनेक ऐसे लक्षण हैं जिनकी प्रधानता विभिन्न लोगों के व्यवहार में कम या अधिक पाई जाती है।

लोगों की प्रतिक्रियाओं में उनके त्व को निर्मित करने वाले लक्षणों की प्रधानता अनेक परीक्षाओं द्वारा जानी जाती है, जैसे (१) व्यवहार (performance) परीक्षा, (२) मौखिक परीक्षा या (३) प्रश्नोत्तर परीक्षा।

व्यवहार-परीक्षा—इस परीक्षा द्वारा दैनिक जीवन की ही कोई स्थिति प्रस्तुत करके उसके प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया देखी जाती है। किंतु परीक्षा करते समय व्यक्ति को यह मालूम न होने पाए कि उसके त्व के किस लक्षण की परीक्षा की जा रही है, नहीं तो वह अपनी प्रतिक्रिया द्वारा प्रत्याशित लक्षण को प्रकट करने का सफल प्रयत्न कर परीक्षा के उद्देश्य को पराजित कर सकता है।

उदाहरण के लिए आप ईमानदारी की परीक्षा करने के लिए बच्चों को जरा कठिन इमला बोलिए और प्रत्येक की गलतियों की सूची बना लीजिए। दूसरे दिन यह बहाना करके कि आप समय की कमी से उनके इमला को जाँच नहीं सके बच्चों से कहिए कि वे अपने इमला की जाँच स्वयं करें और उन्होंने जितनी गलतियाँ की हों उन्हें नीचे लिख दें। आप देखेंगे कि बच्चे अपनी अपनी गलतियाँ सुधार कर कम गलतियाँ दिखाने की चेष्टा करेंगे और जो बच्चा जितनी गलतियाँ सुधारेगा उसकी बेईमानी उसी अनुपात की होगी। यह परीक्षा मैंने अपने विद्यार्थियों पर की और मुझे हर्ष है कि मेरे ८७ प्रतिशत विद्यार्थी ईमानदार निकले।

मौखिक-परीक्षाएँ—हम यह देख चुके हैं कि शब्द वास्तविक उत्तेजनाओं, स्थितियों और समस्याओं के प्रतीक होते हैं। इस आधार पर यह समझना अनुचित नहीं है कि व्यक्ति जो प्रतिक्रिया किसी शाब्दिक प्रतीक के प्रति करेगा वैसी ही उस प्रतीक की उत्तेजना के प्रति भी करेगा। मौखिक परीक्षाओं में व्यक्ति के सामने तीन चार सौ शब्दों की सूची रख दी जाती है और पूछा जाता है कि उसे कौन शब्द सुखद, कौन दुखद और कौन तटस्थ लगते हैं। सुखद, दुखद और तटस्थ प्रतिक्रियाओं के अनुपात की तुलना करके व्यक्ति की गत्यात्मक प्रवृत्तियों की दिशा जानी जा सकती है।

प्रश्नोत्तर-परीक्षा—इस परीक्षा में व्यक्ति के सामने कुछ प्रश्न रख दिए जाते हैं और उससे उनका उत्तर 'हाँ' या 'न' या 'नहीं मालूम' लिखकर देने को कहा जाता है। प्रश्न व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं के अधिकांश क्षेत्रों में प्रकट होने वाले लक्षणों के सम्बन्ध में होते हैं। किंतु प्रश्नोत्तर परीक्षा में बहुत कमियाँ होती हैं। इस परीक्षा की सफलता व्यक्ति के सहयोग पर निर्भर होती है। प्रश्नोत्तर से व्यक्ति के ऊपरी स्वभाव का ही पता चलता है, उसके गहन स्तर का नहीं और व्यक्ति के मौखिक उत्तर और उसके व्यवहार में भेद भी हो सकता है। व्यक्ति कुछ प्रश्नों का सही उत्तर छिपा सकता है, कुछ का उत्तर गलत देता है और कुछ का दे ही नहीं पाता। किंतु इन कठिनाइयों के होने पर भी प्रश्नोत्तर-परीक्षा सामान्यतः विश्वसनीय हो सकती है।

व्यक्तित्व का वर्गीकरण करना

हम सभी व्यक्ति की गत्यात्मक प्रवृत्तियों के अनुसार उन्हें हँसमुख, मुँहफट, लज्जालु, साहसी, सुस्त, कामचोर, डरपोक आदि कहकर उनके व्यक्तित्व के लक्षणों का वर्गीकरण करते रहते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों और मनोविश्लेषकों ने भी गत्यात्मक प्रवृत्तियों की प्रधानता के आधार पर व्यक्तित्व का

वर्गीकरण किया है। मनोविश्लेषक यूंक (Jung) ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण अन्तर्मुखी (introvert) और बहिर्मुखी (extravert) विभागों में किया था जो बहुत प्रचलित रहा है।

अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी त्व—यूंक की परिभाषा के अनुसार अन्तर्मुखी व्यक्ति की प्रवृत्ति आत्म-केन्द्रित होती है और बहिर्मुखी व्यक्ति की प्रवृत्ति वाह्य-केन्द्रित। अन्तर्मुखी व्यक्ति भविष्य के स्वप्नों में रहता है और अपने विचारों तथा आदर्शों को ज्यादा मान्यता देता है। बहिर्मुखी व्यक्ति वर्तमान में रहता है और अपनी सिद्धि और सामाजिक सफलता का आदर करता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति अन्यमनस्क, एकान्त प्रेमी, विचार-प्रधान, परिवर्तन न चाहने वाला, समतुल्य और सुस्थिर होता है। बहिर्मुखी व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति सजग, लोगों से मिलने जुलने वाला, क्रिया-प्रधान, परिवर्तन चाहने वाला, चंचल और अस्थिर होता है।

वर्गीकरण करने की सुविधा के लिए व्यक्तियों के त्व के लक्षणों को जिन दो विरोधी वर्गों में रख दिया जाता है वह उचित नहीं है। परीक्षाओं द्वारा यह देखा गया है कि अधिकांश व्यक्ति अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी वर्ग के बीच में आते हैं। उन्हें उभयमुखी (ambiverts) कहा जाता है। विश्लेषण करके यह भी देखा गया है कि व्यक्ति की अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी प्रवृत्ति उसके त्व के अनेक लक्षणों से मिलकर बनती है और स्वयं त्व को निर्मित करने वाला कोई अलग लक्षण नहीं होती। व्यक्तित्व के वर्गीकरण को एक सीमा के बाहर महत्व देना व्यक्तित्व की संगठित इकाई की उपेक्षा करना होगा।

प्रश्न

१—व्यक्तित्व की प्रचलित परिभाषाओं की समीक्षा करते हुए व्यक्तित्व की मनोविज्ञानीय परिभाषा की व्याख्या कीजिए।

२—व्यक्तित्व पर आनुवंशिकता का क्या प्रभाव पड़ता है ? उदाहरण सहित समझाइए।

३—व्यक्तित्व के शारीरिक निर्धारकों पर प्रकाश डालिए।

४—व्यक्तित्व के शारीरिक और परिवेश के निर्धारकों का पारस्परिक सम्बन्ध बताइए।

५—क्या व्यक्ति अपने परिवेश के हाथ का खिलौना मात्र है ? उदाहरण सहित व्याख्या करके उत्तर दीजिए।

६—व्यक्ति के त्व के निर्माण में आत्म-निर्धारण का क्या महत्व है और उसकी सीमाएँ कहाँ तक हैं ? विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

७—व्यक्ति-त्व को जानने की विभिन्न परीक्षाओं का उल्लेख कीजिए।

८—व्यक्तित्व के वर्गीकरण के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए यूंक द्वारा किए गए वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

प्रासंगिक पुस्तकें

Allport, G. W., *Personality*, 1937.

Andrews, T. G. (Ed), *Methods of Psychology*, 1948.

Crafts, L. W., *Recent Experiments in Psychology*, 1950.

Cronbach, L. J., *Essentials of Psychological Testing*, 1949.

Deese, James, *The Psychology of Learning*, 1952.

Ebbinghaus, H., *Memory*, 1913.

Evans, R. M , *An Introduction to Color*, 1948.

Eyesenck, H. J., *The Scientific Study of Personality*, 1952.

Fulton, J. F., *Physiology of the Nervous System*, 1948.

Garret, H. E., *Great Experiments in Psychology*, 1951.

Geldard, F. A., *The Human Senses*, 1953.

Gibson, J. J., *The Perception of the Visual World*, 1950.

Goldschmidt, R. B., *Understanding Heredity*, 1952.

Guilford, J. P., *General Psychology*, 1948.

Guthrie, E. R., *The Psychology of Learning*, 1952.

Hebb, D. O., *Organisation of Behaviour*, 1949.

Hilgard, E. R., *Theories of Learning*, 1948.

Jaensch, E. R , *Eidetic Imagery*, 1930.

Lashley, K. S., "*Thalamus and Emotion*", *in Psychological Review*, 1938.

Morgan, C. T. and E. Stellar, *Physiological Psychology*, 1950.

Munn, N. L., *Psychology, The Fundamentals of Human Adjustment*, 1951.

Newcomb, T. M., *Social Psychology*, 1952.

Pavlov, I. P., *Lectures on Conditioned Reflexes*, 1929.

Reymert, M. L. (Ed.), *Feelings and Emotions*, 1950.

Ruch, F. L., *Psychology and Life.*, 1953.

Schneiders, A. A., *Introductory Psychology*, 1952.

Tolman, E. C., *Purposive Behaviour in Animals and Men.* 1949.

Valentine, W. L. and D. D. Wickens, *Experimental Foundations of General Psychology*, 1949.

Walker, K., *Human Physiology*, 1951.

Wertheimer, M , *Productive Thinking*, 1945.

Wever. E. G., *Theory of Hearing*, 1949.

Woodworth, R. S. and D. G. Marquis, *Psychology*, 1952.